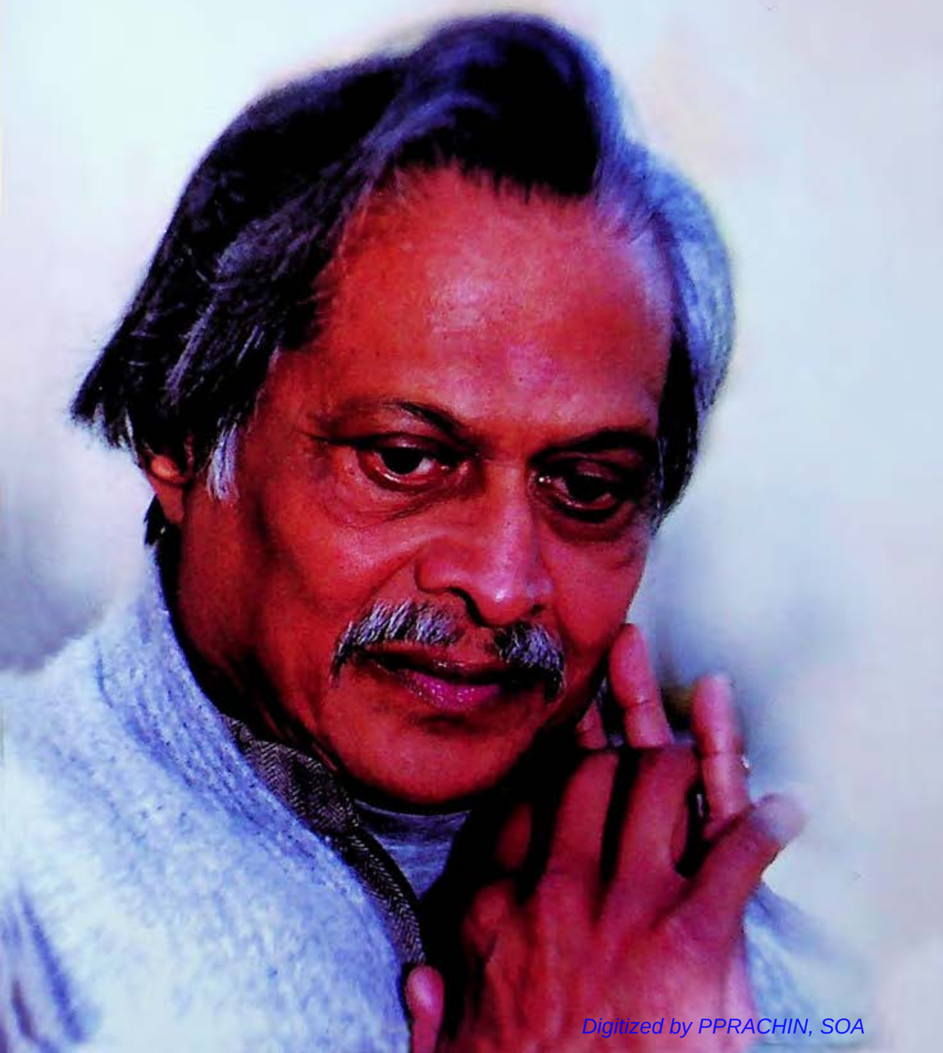
जगन्नाथ प्रसाद दास
की श्रेष्ठ कहानियाँ

संपादक
गुरुचरण बेहेरा
अनुवाद
राजेंद्र प्रसाद मिश्र



जगन्नाथ प्रसाद दास
की श्रेष्ठ कहानियाँ

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

जगन्नाथ प्रसाद दास की श्रेष्ठ कहानियाँ

संपादक

गुरुचरण बेहेरा

अनुवाद

राजेंद्र प्रसाद मिश्र



nbt.india

एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

ISBN 978-93-5491-109-5

पहला संस्करण : 2021 (*शक* 1943)

Jagannath Prasad Dasanka Shrestha Galpa (*Odia Original*)
Jagannath Prasad Das Ki Shrestha Kahaniyan (*Hindi Translation*)

₹ 335.00

निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

नेहरू भवन 5, वसंत कुंज इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-2, वसंत कुंज,

नई दिल्ली–110070 द्वारा प्रकाशित
Website: www.nbtindia.gov.in

अनुक्रम

भूमिका

(एक)

जगन्नाथ प्रसाद दास की पहली कहानी 'शब्दभेद' 1980 में छपने से पहले उन्होंने कई नाटक लिखे थे, कई नाटकों में अभिनय किया था, कवि के रूप में ख्याति अर्जित की थी और चित्रकला पर शोध-कार्य शुरू कर दिया था, जिसकी परिणति थी सन् 1982 में 'पुरी-चित्र' (Puri Paintings) पुस्तक का प्रकाशन। इसलिए उनकी कहानियों में इन समस्त रूपों का आंशिक प्रयोग दिखाई देता है। अर्थात् काव्यगत आवेदन, नाटकीय उत्कंठा, शोधपरक विश्लेषण, शब्दों के जरिए दृश्य-चित्र अंकन, आकर्षण कथन शैली का सम्मिश्रण उनकी कहानियों की विशेषता है। विषय-वस्तु की दृष्टि से उनकी कहानियाँ सत्य और वास्तविकता की आपेक्षिकता और अनिर्दिष्टता पर टिप्पणी हैं।

विषय और रूप-विधान को जबकि अलग करके नहीं देखा जा सकता। वास्तविक अनुभवों में उनका रम जाना, सरकारी प्रशासक के रूप में आम आदमी के दुख, गरीबी के विरुद्ध निरंतर संघर्ष से उनके जुड़ाव ने उनमें अदृश्य होते बहुरूपी सत्य की वास्तविकता की उपलब्धि ला दी थी।

जगन्नाथ प्रसाद दास का जन्म सन् 1936 में हुआ था। पिता श्रीधर दास और माता इंदु देवी के लालन-पालन और परिवार के परिवेश ने उनमें ज्ञान पिपासा और सृजन शक्ति का उद्रेक किया था। कटक के मिशन स्कूल से मैट्रिक, रेवेंशा कॉलेज से अर्थशास्त्र (ऑनर्स) सहित स्नातक और उसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर उनके छात्र जीवन का एक स्थूल विवरण है। उसी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एक साल अध्यापन करने के बाद सन् 1958 में उन्होंने आई.ए.एस की परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रशासक के रूप में उन्हें एक बड़े आह्वान का सामना करना पड़ता है, जब वे लगातार अकाल पीड़ित कालाहांडी जिले के कलेक्टर थे, सन् 1963

से 1966 तक। निचले तबके के इंसान की दुर्दशा और ऊपरी स्तर के लोगों की उनके प्रति उदासीनता का अनुभव उनके लिए बड़ा मर्मांतक था।

अकाल के संबंध में उनके द्वारा प्रस्तुत भयावह तस्वीर, दुखद ब्योरा, उनके समाधान के लिए भेजे गए प्रस्ताव, अनुरोध, आवेदन उच्च प्रशासनिक स्तर पर विशेष हलचल और प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न नहीं करती थीं। फाइल के लालफीते के नीचे सब दबकर रह जाता था। इसके अनुरूप समानांतर चित्र उन्होंने प्रदान किया है अपने 'देश काल पात्र' (1992) में 'न' अंक के अकाल संबंधी रिपोर्ट के प्रति रेवेंशा साहब की निष्ठुर उदासीनता के वर्णन के जरिए। ओड़िशा और दिल्ली में विभिन्न पदों पर रहने के बाद सन् 1984 में आई.ए.एस. की नौकरी से इस्तीफा देकर साहित्य और कला की साधना में तल्लीन हो गए। साहित्य और कला के लिए आई.ए.एस. से इस्तीफा देने वाले एक विरल व्यक्तित्व हैं जगन्नाथ प्रसाद दास।

कविता थी जगन्नाथ प्रसाद दास का प्रथम प्रेम। बचपन से थी कविता लिखने की झोंक। रेवेंशा कॉलेज में पढ़ते समय उनकी कविताएँ डगर, झंकार, आसंताकालि, प्रभाती, प्रजातंत्र और आशा आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। विशिष्ट कथाकार मनोज दास के साथ 'आगामी' पत्रिका के सहसंपादक रहे। उस समय के वरिष्ठ ओड़िआ कवि कालिंदी चरण पाणिग्राही, अनंत पटनायक, बैकुंठनाथ पटनायक और अन्य लोगों के साथ कविता संकलन' में उनकी कविताएँ शामिल की गई थीं। सन् 1960 में उन्होंने दो नाटक लिखे थे। सन् 1971 में उनके द्वारा लिखित नाटक 'सूर्यास्त पूर्वरू' (सूर्यास्त से पहले) बांग्ला भाषा में अनूदित होकर सन् 1972 में मंचित हुआ था।

सन् 1977 में यह नाटक ओड़िया में प्रकाशित हुआ। यहाँ यह उल्लेख किया जाता है कि अपने 'पूर्वराग' नाटक में वे और उनकी पत्नी मीता ने अभिनय किया था। धीरे-धीरे वे रंगमंच के वलय में खिंचे चले आते हैं। अनंत महापात्र जैसे नाटककार के साथ दोस्ती ने उन्हें नाटक और सिनेमा से अधिक जोड़ा। उन्होंने कटक सांस्कृतिक परिषद और कला विकास केंद्र के अध्यक्ष का पद सुशोभित किया। उनके द्वारा लिखित अन्य नाटक हैं, सबाशेष लोक, असंगत नाटक और सुंदरदास। अनेक समीक्षकों की राय में 'सुंदरदास' उनका श्रेष्ठ नाटक है।

मंच कला के साथ-साथ उन्होंने चित्रकला पर भी ध्यान दिया। उनकी चित्रकला की प्रथम प्रदर्शनी सन् 1978 में होती है। आगे चलकर चित्रकला के

इतिहास में शोध में मन लगाते हैं। मंचकला से चित्रकला, चित्रकला से चित्रकला का इतिहास उनकी प्रतिभा की स्वाभाविक सरणी है। पट्टचित्र का गाँव रघुराजपुर उनके शोध की लैबोरेटरी बन जाता है।

सन् 1982 में छपकर आई (Puri Paintings)। उसकी अनेक प्रशंसापूर्ण समीक्षाएं छपीं। ठीक उसके तुरंत बाद 'चित्रपोथी' छपकर आई सन् 1985 में।

काफी दिनों के व्यवधान के बाद उन्होंने कवि जीवन की लीक फिर से पकड़ ली। सन् 1971 में उनका पहला कविता संग्रह 'प्रथम पुरुष' प्रकाशित हुआ। उसका आवरण बनाया था मशहूर फिल्म निर्देशक सत्यजित राय ने। उसके बाद आया, अन्यसबू मृत्यु (1976), जे जाहार निर्जनता (1979) अन्य देश भिन्न समय (1982), यात्रार प्रथम पाद (1988), आह्निक (1990), स्थिरचित्र (1991), सचराचर (1994), स्मृतिर शहर (1995), परिक्रमा (1998), असमय (2004)।

आह्निक को सन् 1991 में केंद्र साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए चुना गया था, किंतु लेखक ने उसे ग्रहण नहीं किया।

सन् 1980 में 'शब्दभेद' के प्रकाशित होने के बाद भवनाथ ओ अन्यमाने (1982), दिनचर्या (1983), आमे जोउमाने (1986), साक्षात्कार (1987), प्रिय विदूषक (1992) , शेष पर्यंत (1995), इच्छापत्र (2000), इंद्रधनु, आखी और कवितार दीर्घजीवन (2009) इस तरह आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। सन् 1998 में उनके कहानी संग्रह, 'प्रिय विदूषक' के लिए उन्हें सम्मानजनक 'सारला पुरस्कार' प्रदान किया गया था। उनकी अनेक कविताएँ और कहानियाँ हिंदी, अंग्रेजी एवं अन्य अनेक भारतीय भाषाओं में अनूदित व प्रकाशित हैं। कहानी और इतिहास के अनुभव के आधार पर उन्होंने रचना की 'देश काल पात्र' (1992) की। इसे ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर औपन्यासिक इतिहास कहा जा सकता है।

(दो)

जगन्नाथ प्रसाद की पहली कहानी 'शब्दभेद' को उनकी सारी कहानियों एवं इस संग्रह की भूमिका या कहानी के फ्रेमवर्क के रूप में लिया जा सकता है। उनकी बाद की कहानियों का भ्रूण इस कहानी में मिल सकता है। 'प्रथम पुरुष' की कथन-शैली में भवनाथ की कहानी कथाकार ने प्रस्तुत की है, स्वयं कथाकार इसका वर्णनकर्ता और एक पात्र भी है। भवनाथ जीता है शब्दों की दुनिया में, रोजाना शब्दों से खेलता है, शब्द के विस्तार, उसकी गहराई और शक्ति का आकलन करता चलता है। उसकी कविता गूढ़ है, ऐसे आरोप लगते हैं, लेकिन

उसकी कविता की एक पंक्ति को लेकर दो राजनीतिक दलों के नेताओं में द्वंद्व पैदा होता है और उस द्वंद्व का शिकार होता है भवनाथ। वह कहता है कि उसके प्रेम की तरह उसकी कविता भी आसानी से समझी नहीं जा सकती। प्रेमिका की शादी हो जाने पर भी वह उससे चिट्ठी के जरिए संबंध रखता है। प्रेमिका भवनाथ को खबर भेजती है कि उसके पति मर गए हैं, भवनाथ आकर उसे लिवा जाए, किंतु जब भवनाथ उसके पास जाता है तो देखता है कि प्रेमिका मांग में सिंदूर भरे गहने पहनकर घर पर है। कुछ दिनों बाद भवनाथ लेखकों को बताता है कि वह फिर से प्रेम करने लगा है। भवनाथ की इस चाहत का ब्योरा यथार्थ है या कल्पना—यह सवाल कहानी के अंत की ओर खिंचा रह जाता है।

यह कहानी जिन कई प्रसंगों को रखती है, वे प्रसंग अलग रूप में, अलग तरीके से उनकी अन्य कहानियों में अनुगुंजित व अभिव्यंजित होते दिखाई देते हैं। एक, शब्द की शक्ति और असफलता, व्याप्ति और सीमितता को ये दर्शाते हैं। दो, कविता जगत को वास्तविक मानकर बाहर की दुनिया का इंसान साहित्यकार को द्वंद्व में खींच ले जाता है। तीन, यथार्थ और कल्पना के बीच सीमा की अनिर्दिष्टता। भवनाथ अपने प्रेम के बारे में जो रसीली कहानी कहता है, वह यथार्थ है या कवि की कल्पना? चार, जिस नारी पात्र की सूचना भवनाथ के विवरण से मिलती है, हो सकता है वह कोई रहस्यमयी नारी हो, जो पुरुष को संदिग्धता और द्वंद्व के बीच लटकाकर अपनी क्षमता कर्तृत्व ज़ाहिर करती है। पाँच, समाज में कवि की स्थिति, कविता और समाज के बीच संबंध इस कहानी की सामाजिक दिशा है। विभिन्न सामाजिक प्रसंगों से जुड़ी उनकी अनेक कहानियों के लिए यह एक मार्गदर्शक है। छह, भवनाथ द्वारा वर्णित प्रेम का विवरण एक कहानी का रूप ले लेता है, पूरी कहानी में एक और दूसरी कहानी, एक उप कहानी है।

कहानी के अंदर कहानी को अधिकहानी या मेटाफिक्शन (Metafiction) कहा जाता है। इस तरह के आत्म-सचेतन, आत्म-सूचना केंद्रित (Self referential) रचनाओं के अनेक उदाहरण इस संग्रह में मिल जाएँगे। देखा जाए तो उनकी सभी कहानियों में आत्मसचेतनता की धारा परिलक्षित होती है। सात, भवनाथ एक श्रेष्ठ पात्र है, उसके जीवन में निहित है श्रेष्ठता, व्यथा और व्यंग्य का मिश्रण। अपनी दुनिया, अपनी राह, अपने अस्तित्व का निर्माण करने वाला भवनाथ एक अस्तित्ववादी पात्र है। 'शब्दभेद' कहानी का जो निचोड़ मैंने निकाला वे सब जगन्नाथ प्रसाद की कहानियों के व्याख्याकरण के सूत्र के रूप में प्रयोग में लाना मेरा उद्देश्य है।

उनकी 'मृत्युबोध' कहानी यथार्थ-अयथार्थ की सीमा से उच्चरित एक कहानी है। आत्महत्या की कोशिश करने के बाद पुनः जीने की कोशिश करते हुए अस्पताल के बेड पर संघर्ष करने वाले एक व्यक्ति का एकक संलाप है। ज़िंदगी और मौत के बीच डोलते व्यक्ति की अभिव्यक्ति है। मृत्यु के बाद एक काल्पनिक इलाके से उस व्यक्ति का बयान, पश्चात् दृष्टि कथन के माध्यम से उसके अतीत के दृश्य चित्र झलक उठते हैं। उसके मृत्यु-दिवस के संबंध में लामा की भविष्यवाणी ने उसके जीवन की सीमा खींच दी है। उसे अतिरिक्त मृत्यु सचेत करती है। फिर से खुद को ज़िंदा रखने का उद्यम इस निर्धारित सीमा के निर्णय को अस्वीकार करने का संकेत है। यह अपनी इच्छा से, अपने अनुसार जीने मरने की स्वतंत्रता अपने पसंद की स्वतंत्रता और दायित्वबोध प्रकट क़रती है। कहानी का अंतिम दृश्यचित्र उसका एक पक्षी में रूपांतर है। वह ऊपर से देखता है, पुरानी परिस्थिति और पात्र बदल जाते हैं, नर्स में देखता है अपनी स्वर्गवासी पत्नी को। चरम स्वतंत्रता का चित्रकल्प है यह दृश्यचित्र। अति यथार्थवाद की चौहद्दी में शंसित घटनाएँ अस्तित्ववादी अनुसंधान की कहानी है।

यथार्थ और स्वप्न के बीच संघटित कहानी है 'सत्य-असत्य'। सत्य चमकीला, अदृश्य, बहुरूपी और विखंडित होता है। हम जिसे सत्य कहते हैं, वह सत्य के सिर्फ अलग-अलग संस्करण हैं। पद्मधर ऐसी ही सत्य-असत्य की दुनिया में जीता दिखाई देता है। उन्होंने अपने 'द ट्रायल' उपन्यास में एक मामूली-सी घटना में रहस्य और विस्मय उद्घाटित किया है। मामूली-सी घटना को लेकर उज्ज्वल कथानक बनाना काफ्का और जेम्स जॉयस की कारीगरी है। ऐसी ही कोशिश जगन्नाथ प्रसाद ने इस कहानी में करने की चेष्टा की है। कचहरी का गंदगीपूर्ण परिवेश, पीले पड़ चुके बंडल के बंडल कागज़ात, दलील दस्तावेज का सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन एक तरह से अरुचि और भय पैदा करता है। काफ्का के 'के' की तरह कचहरी की अफसरशाही के चक्र में पिसता रहता है पद्मधर। अबोध्य दुनिया की विभ्रांति में तिलमिलाता रहता है। लेकिन 'के' की कष्ट वेदना की कारणहीनता, तर्कहीनता, रहस्य की तीव्रता पद्मधर पात्र में नहीं है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में कार्य-कारण, कारण-परिणिति के संबंध पर अब भी विश्वास है, इसकी सूचना जगन्नाथ प्रसाद की रचनाओं में मिलती है। वादी-प्रतिवादी गवाहों की गवाही, वकीलों के सवाल-जवाब, ऊँची आवाज, जज की उदासीनता—ये सब पद्मधर को मूल घटना, मूल मुकदमें से मानों अलग लगते हैं। ये सब असंलग्न, अवास्तविक हैं। सच को झूठ, झूठ को सच में बदल देने की झूठी प्रतिद्वंद्विता, झगड़ा, नाटकीयता

के बीच असली सत्य छुप जाता है। यह अरुचिकर, खीझभरा, भयंकर परिवेश एक दुःस्वप्न का परिवेश है। खिन्न और इच्छारहित पद्मधर अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर जज और वकीलों को अद्भुत उद्भट रूप देता है—जज और वकील सबको कठपुतली की तरह धागे से परिचालित करता है। इसका विरोध करके मधुर कल्पना के बल पर वसुधा के साथ एक रोमांटिक दुनिया बनाता है, किंतु वसुधा का सामना करने का साहस नहीं जुटा पाता। दुःस्वप्न और स्वप्न के बीच डोलते यथार्थ और कल्पना के बीच वह उलझ कर रह जाता है। उसकी पत्नी और वसुधा में कौन सत्य है, कौन असत्य, यह अनिर्णित रह जाता है। मुकदमा और कचहरी के बीच उसका क्या संबंध है, वह समझ नहीं पाता।

'मृत्यबोध' की तरह किसी मृत्यु के बाद के इलाके की कल्पना की है कथाकार ने 'मरा हुआ आदमी' कहानी में। यह कहानी व्यक्ति संबंधों पर एक टिप्पणी है। मृत्यु के बाद के लोक से आदित्य देखता है कि उसके लिए जो शोक प्रकट किया जा रहा है, वह निहायत दिखावटी है, स्वयं को अति निकट जताने की प्रतिस्पर्धा है, कॉलेज की छुट्टी कराके उपभोग करने का एक अपूर्व अवसर है। आंतरिकताहीन, औपचारिक रचनापूर्ण संबंधों पर यह एक टिप्पणीमूलक कहानी है। किंतु मरने से पहले सुजाता की मधुर स्मृति की क्षीण मुस्कान उसके चेहरे पर रह गई है औपचारिकता और हिसाब-किताब से परे। पृथ्वी के ऊपरी इलाके से यह सब देखना आदित्य की अविस्मरणीय रहने की फिजूल कोशिश है।

अनुरूप विषय और रूप को लेकर एक अलग परिप्रेक्ष्य में लिखी गई कहानी है 'नेकनामी'। इसका नायक जीवनभर अपनी नेकनामी कमाने में व्यस्त रहता है। कविताएँ लिखने, छपवाने, अपनी कविताओं की प्रशंसापूर्ण समीक्षा और संदर्भ लिखवाने, अपने साक्षात्कार छपवाने, साहित्य के लिए पुरस्कार सम्मान प्राप्त करने के लिए जुगाड़ लगाने, यहाँ तक कि मरने के बाद अपनी स्मृति बनवाए रखने के लिए एक ट्रस्ट बनाकर पर्याप्त धन की व्यवस्था करके अपने एक विश्वस्त अनुगत शुभाशीष को उसकी जिम्मेवारी सौंपना एक आत्ममोहग्रस्त मानसिक विकार है। ग्रीक पात्र नर्सिसस की तरह अपनी छवि के प्रति आसक्त इस व्यक्ति की परिणति निराशा और निरर्थकता होती है। सर्वोच्च पुरस्कार पाने के लिए सारा तिकड़म भिड़ा चुकने के बावजूद पुरस्कार पाने से पहले उसकी मृत्यु हो जाती है। उसकी अतृप्त आत्मा देखती है कि सब उल्टा-पुल्टा हो गया। वह हालाँकि नास्तिक था, उसकी पत्नी पत्रकारों को बताती हैं कि वे ईश्वर पर विश्वास करते थे, रोज़ाना पूजा-पाठ करते थे। अपनी कविताएँ छपने भेजने से पहले वे उसे सुनाते थे, वह

उनकी प्रेरणा थी। जबकि वह उसकी कविताओं को लेकर पूरी तरह उदासीन थी। अपनी बात को रोचक बनाने के लिए वह कहती कि शायद उनका किसी दूसरी नारी से कुछ दिनों के लिए संबंध था, जो पूर्णतः झूठी थी। कवियों में ऐसी कमजोरी रहना उचित है, ऐसा उसकी पत्नी का खयाल है। कवि की पत्नी के रूप में वह खुद की नेकनामी गढ़ती है, कवि की नहीं। शोक-सभा और पुरस्कार एवं बधाई-सभा में वक्ताओं ने उसके बारे में जो कुछ कहा, उन सबसे उसका कोई संबंध नहीं था। यहाँ तक कि मंच पर लगी उसकी तसवीर से भी उसका कोई सामंजस्य नहीं था। मानों वह किसी दूसरे की शोक-सभा व बधाई-सभा हो। ट्रस्ट से पैसे निकालकर शुभाशीष अपने युवा मित्रों के साथ बैठकर शराब पीता है, शराब के नशे में उसे गालियाँ देता है। अंत में उसकी अप्रकाशित कविताओं को काट-छाँटकर अलग कविताएँ बनाता है। दारुण विडंबना यह है कि जिंदगीभर मेहनत और तिकड़म से बनाई उसकी नेकनामी ढह जाती है।

इसी तरह के आत्ममोहग्रस्त, छवि-सर्वस्व विकार पर व्यंग्य है 'अमरत्व'। आम जनता का पैसा खर्च करके क्षमतासीन लोग अपने नाम-पट्ट, स्मारक और मूर्तिया बनवाते हैं। लेकिन उनकी क्षमता समाप्त हो जाने के बाद वह सब विकृत और ध्वस्त-विध्वस्त हो जाते हैं। उसकी जगह नए स्मारक सिर उठाते हैं वही एक-सी परिणति भोगने के लिए। इसकी अलीकता और अनैतिकता पर एक तेज प्रहार है यह कहानी।

व्यक्ति संबंधों को लेकर लिखी गई है 'फोटोग्राफ' कहानी। सांसारिक जीवन के दबाव से शुष्क और उदास हो गए इंसान में उसके बचपन के यादगार फोटोग्राफ हठात् जान फूँक देते हैं। रिश्तों की जीती जागती हरी-भरी धरती लहलहा उठती है उसके सामने, वह एक भाव-विह्वल इंसान बन जाता है; खोई हुई लीकों को फिर से सहेज लेता है, स्मृतियों के कल्पना लोक में क्षणभर के लिए खुद को भूला देता है।

सामाजिक प्रसंगों को लेकर लिखी गई दृष्टांतमूलक कहानियाँ हैं 'निर्धारित स्थान', 'संप्रदाय', 'तमाशबीन' और 'साहित्यकार'। नौकरी में आरक्षण कानून होने के बावजूद, कमजोर तबके के लिए सरकारी योजनाओं के बावजूद मोची का बेटा हरिराम आवेदन-पत्र भरने, इंटरव्यू देने, दफ्तर दर दफ्तर भटकने के बाद निराश हो जाता है। सारी नौकरियाँ क्षमता, प्रतिष्ठा और अर्थ-बल से जुड़ी हुई हैं। सरकारी मदद,योजनाएँ सब भ्रामक और अवास्तविक हैं। सामाजिक न्याय दिशाहीन है। अंत में हताश हरिराम लौट आता है अपने निर्धारित स्थान

पर, जिस पिअन की कुर्सी पर उसका बाप बैठता रहा साल दर साल और जिस पर वह खुद भी बैठा था शुरू-शुरू में। यह कहानी कथाकार की तीव्र सामाजिक आलोचना की एक सार्थक सृष्टि है।

'संप्रदाय' सांप्रदायिक दंगों को लेकर है। एक पागल और एक मुसलमान चाय दुकानदार महात्मा इस कहानी के दो स्तंभ स्वरूप है। पागल की बेतरतीब दाढ़ी कभी उसे मुसलमान तो कभी हिंदू बाबा और कभी सिख का भ्रम पैदा करती थी। हिंदू मुसलमान या सिख के दंगों में वह आक्रमण का शिकार होता है, क्षत-विक्षत होता है। सभी एक-दूसरे की दुश्मनी उसी पर निकालते थे। सबके अंदर का गुस्सा और हिंसा उसी पर उतरता था। उसी छोटे से कसबे के महात्मा के रूप में परिचित मुस्लिम चायवाले की दुकान टूट जाती है, किंतु महात्मा पर किसी दल के लोग धावा नहीं बोलते। यह थी सभी संप्रदायों में अघोषित समझौता। समस्त सामाजिक क्रोध हिंसा को अपने ऊपर से गुजारकर वह पागल और चाय की दुकान बन जाते हैं, अपने अनजाने ही बड़ी सामाजिक ज़िम्मेदारी निभाते हैं। सभी संप्रदायों के संघर्ष और मिलन के पीठ थे पागल और महात्मा। यह थी पुरानी बात। लेकिन संप्रति राजनीतिक फायदे के लिए राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा संचालित दंगे में पागल और महात्मा दोनों मारे जाते हैं। मानवीय सौहार्द्र-सूत्र ध्वस्त हो जाता है अंत में।

जीवन की जटिलताओं से रु-ब-रु हुए बिना आराम कुर्सी पर बैठकर लिखने वाले साहित्यकारों पर 'साहित्यकार' कहानी एक व्यंग्य है। उनकी दिनचर्या है पुरस्कारों के पीछे भागना, लॉबी करना, खुशामद करना, इसके लिए ठेकेदारी करने वाले लेखक और प्रकाशक के बीच अनैतिक संबंध रहना, क्षमताधारियों के तलवे चाटना। ये पुरस्कार पाने के लिए बेताब लेखक सामाजिक राजनैतिक आपदा के समय कहीं छुप जाते हैं, मुँह नहीं खोलते हैं। प्रतिपक्ष में रसानंद एक सामान्य लेखक है, आपातकाल का विरोध करने पर जेल जाता है, उसके साहित्य में अश्लीलता के आरोप की वजह से पुलिस की यातनाएँ सहता है, प्रतिष्ठित पुरस्कार के लेखक विष्णु शर्मा की पुस्तक के कुछ अश्लील प्रसंगों को रसानंद अपने विरुद्ध चल रहे अश्लीलता के केस में अपने पक्ष में प्रमाण स्वरूप उपयोग करने के लिए विष्णु शर्मा से अनुमति मांगता है। साहित्य में अश्लीलता के प्रति नाक-भौं सिकोड़ने वाले तथाकथित अभिजात साहित्यकार पुरस्कार पाने के लिए खुशामद, षड़यंत्र करने जैसे अधिक घृणित कर्म करते हैं। ऐसे साहित्यिक व्यापार करने वाले साहित्यकारों के प्रति एक व्यंग्यात्मक आह्वान हैं रसानंद।

साहित्यिक साहित्यकार के संबंध में एक और कहानी है 'सब कुछ है' कुछ भी नहीं है', लेकिन इसकी मर्मवाणी भिन्न है। बाहरी क्षमता, सम्मान, ख्याति के अंतराल में जो अभावबोध और शून्यता है, उसकी कहानी है यह। सामाजिक राजनीतिक जंजाल, शोर-शराबे के बीच दो सहपाठी—राजनीतिक मंत्री सुखदा और साहित्यिक तारापद ढूँढ़ रहे हैं कोई एकांत क्षण अपने-अपने मन की बात कहने के लिए। "सुखदा, तुम्हें याद है..." कहकर रुक जाता है, कह नहीं पाता अपनी अंतरंग बात। "वास्तविक सच्चाई यह है कि मेरे पास कुछ भी नहीं है, किंतु नाहक ही सोचती हूँ, मेरे पास सब कुछ है" सुखदा की स्वीकारोक्ति थी। तारापद को भी अहसास है अपने साहित्य की मौलिकता और ऐश्वर्य की अंतिम असारता : "विभिन्न स्रोतों से एकत्र की गई छोटी-छोटी कतरने हैं जो गोंद से जुड़े नवगुंजर बनाते हैं।" सुखदा और तारापद में कोई मौलिक अंतर नहीं है। तारापद भी साहित्य में राजनीति करता है, उसका अभिनंदन-ग्रंथ कैसे छपेगा, विरोधी साहित्यकारों का मुकाबला कैसे किया जाएगा, उसकी साहित्यिक चोरी का पर्दाफाश करने वालों के प्रयास को कैसे ध्वस्त किया जाएगा। नैतिक स्तर पर वह सुखदा से किसी भी तरह उच्चतर नहीं है। इन सारी कृत्रिमताओं के नीचे दब जाती हैं सरल दिनों की सुंदर स्मृतियाँ। पूरी तरह खाली और कंगाल हैं यश-पिपासु इंसान।

क्षमता है कथाकारों का एक विशिष्ट प्रसंग। 'साम्राज्य', 'प्रतिद्वंद्वी', 'अंतिम चेतावनी', और 'भृत्य' कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। पर देखा जाए तो उनकी सारी कहानियों में क्षमता की अंतःफलगू प्रवाहित है। विशिष्ट तत्त्ववित् मिसेल फूको क्षमता की परिभाषा और स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, क्षमता सर्वव्यापी, सर्वस्तरीय एक शक्ति प्रवाह है। क्षमता एक बाह्य उर्द्धायित शक्ति है। व्यक्ति क्षमता का उत्स नहीं है, ना ही क्षमता का अधिकारी है, वह क्षमता का उपयोग भी नहीं करता। हर व्यक्ति क्षमता के वश में है। व्यक्ति के जरिए क्षमता रूप ग्रहण करती है, मूर्त होती है, व्यक्ति तो सिर्फ क्षमता का एक माध्यम है। हर व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति के अधीन होता है, अलग-अलग इलाके में अलग-अलग स्तर पर। कोई भी निरंकुश क्षमता संपन्न नहीं होता : "It is a society of microdominations". हमारा समाज छोटे-छोटे सीमित, खंडित आधिपत्य का समाज है। एक निर्दिष्ट परिसर में अपना प्रभुत्व दिखाने वाला व्यक्ति, किसी दूसरे परिसर में पराधीन है; यहाँ तक कि वह जिस पर प्रभुत्व दिखाता है वह हो

सकता है उसी परिसर का सम्राट। यहाँ तक कि, मालिक अपने अधीनस्थ पर निर्भरशील होने के कारण वह अधीनस्थ के अधीन होता है।

'साम्राज्य' कहानी का कर्त्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, परिश्रमी, कठोर अनुशासन और कड़े मिजाज का रघुपति अपने जिले में वह सम्राट है। आदेश उसका अलंघ्य, अनुज्ञा अप्रतिरोध्य है। लेकिन अपने अक्सर बीमार रहने वाली बेटी के स्वस्थ रहने के लिए अष्ठसाधक के रूप में परिचित अपने निचले कार्यालय के पिअन पशुपति के आगे उसे अनुग्रह प्रार्थी होना पड़ता है। पशुपति के झुके हुए छपरैल घर की एक लंबी कतार में उसे खड़ा रहना पड़ता है अपनी बारी आने पर पशुपति से मिलने के लिए। यहाँ वह देखता है कि एक अन्य राज्य का विस्तार जहाँ वह एक भिक्षार्थी प्रजा है। उसका दंभ, अहंकार कितना तुच्छ है यहाँ यह एक मर्मांतिक विडंबना है। पशुपति का साम्राज्य एक पहेली है, एक इंद्रजाल है जो वास्तविकता से अधिक शक्तिशाली प्रतीत होता है। इस पहेली का सौध मनुष्य की निपट दुर्बलता, शून्यताबोध और अभावबोध पर गढ़ा है। तर्कनिष्ठ प्रशासक का जादू-टोना पर विश्वास करना, मनुष्य की बेबसी का परिचय देने के साथ ही तर्क-वितर्क की सीमाबद्धता पर सवाल उठाता है। वास्तविकता, अवास्तविकता, वाद-विवाद की आपेक्षिकता पर एक दारुण विडंबनापूर्ण अभिव्यक्ति है यह कहानी।

'प्रतिद्वंद्वी' क्षमता की राजनीति का एक और उदाहरण है। दो पुराने मित्र जयसिंह और रंगनाथ पदोन्नति की दौड़ में एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी हैं। संदिग्ध उपाय से जयसिंह के उच्च पदस्थ अधिकारी बन जाने के बाद सच्चे कर्त्तव्यनिष्ठ रंगनाथ को उसके अधीन काम करने में घुटन होती है। उसके प्रति जयसिंह का व्यवहार दिन-प्रतिदिन रुक्ष और उदासीन होता जा रहा है। अपने कर्त्तव्य के प्रति क्रमशः उदासीन होकर रंगनाथ जयसिंह के विरुद्ध गुप्त रूप से प्रमाण, फाइलें, विवरण आदि इकट्ठा करने लग जाता है। आरोपों की फाइल बनाते-बनाते वह रिटायर हो जाता है। एक-दूसरे की कमज़ोरी और भय से उत्पन्न बंधुत्व-वैरता का विरोधाभास है। एक गुप्त अंधी लड़ाई चलती रहती है दोनों के बीच। जयसिंह हिसाबी, कुचक्री और चतुर था, जबकि रंगनाथ सरल, सहज और आवेगपूर्ण। रंगनाथ के रिटायर होने के बाद जयसिंह उसके घर जाकर उससे अनुनय करता है कि वह और पाँच साल तक कंपनी की नौकरी करे। अपनी बीमारी और परिवार की जटिलता बताते हुए उससे सहयोग की भीख मांगता है, यथोचित तनख्वाह देने का वायदा करता है। एक दुखी, असहाय इनसान का यह आचरण उसकी कोई

अन्य रणनीति तो नहीं? यह उसके दिल की भाषा थी, या रंगनाथ को क्षमता चक्र में बाँधे रखने का उसका एक अभिनय? क्या वह सचेत है कि उसने ऊँचा पद प्राप्त किया है अनैतिक उपाय से और रंगनाथ नैतिक स्तर पर उससे बहुत ऊँचा है? यहाँ तक कि रिटायरमेंट के बाद भी वह रंगनाथ को अपना प्रतिद्वंद्वी समझता है? क्या उसकी नैतिक प्रतिष्ठा को धूमिल करने का एक हथियार है? दूसरी दृष्टि से देखें तो क्या जयसिंह के अनैतिक, नियम विरोधी कामों का हिसाब-किताब रखने में अपने ज्ञान और आत्मा को शामिल करके रंगनाथ स्वयं अनैतिकता द्वारा संक्रमित और आक्रांत नहीं हुआ? सत्य और अभिनय के बीच लुकाछिपी है यह कहानी।

'भृत्य' कहानी क्षमता विमर्श की एक अन्य दिशा है। व्यक्ति का अस्तित्व समझाते हुए अस्तित्ववादी दार्शनिक जाँ पाल सार्त्त, Being for itself, Being for others और Being in itself की परिभाषा का उपयोग किया है। दूसरे की इच्छा, पसंद, अपसंद से चलने वाला व्यक्ति दूसरे के द्वारा निर्धारित जीवन जीता है, अर्थात् दूसरे का जीवन जीता है। वह होता है Being for others अपनी अंतः चेतना की अवज्ञा करके एक झूठा जीवन जीता है, अपने अस्तित्व या Being for itself से दूर हो जाता है। वह क्रमशः एक निष्क्रिय, निर्वेद, चेतना-विरहित एक वस्तु Being in itself बन जाता है। 'भृत्य' कहानी का सुधाकर दूसरे के अधीन कार्यरत एक व्यक्तिसत्ता और स्वतंत्रताविहीन जीव है। अपनी पराधीनता को अंतरीण कर लेता है। दासत्व, पराधीनता के अस्तित्व से अलग होते ही उसका अस्तित्व विपन्न हो जाता है। हाक़िम के रिटायर होने के बाद भी वह हाक़िम के घर पर काम करता है, गालियाँ, अपमान और लांछना पहले की तरह सहता है। एक रहस्यमय डोर से बँधा है हाक़िम के साथ। जिस दिन हाक़िम की मौत होती है, उसी दिन अस्पताल से लौटने के बाद सुधाकर को सीने में दर्द महसूस होता है। यह उसके आसन्न विलोपन का संकेत है।

'अंतिम चेतावनी' में क्षमता की लड़ाई की पृष्ठभूमि है राजनीति। सरकार के प्रेस बिल का विरोध करने पर दो भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों को जेल जाना पड़ता है। मुख्यमंत्री जी के अभिसंधिमूलक गुप्त निर्देश के कारण उन्हें कठिन यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। कभी एक-दूसरे के कट्टर विरोधी रहे ये दोनों नेता जेल में क्रमशः एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं। अंत में सरकार प्रस्ताव देती है, आंदोलन वापस लेने का लिखित वादा करने पर उन्हें जेल से छोड़ दिया जाएगा। लेकिन

उसके जवाब में उन्होंने जो मांग-पत्र रखा, वह जेल में उनके रहने, खाने-पीने में लगातार टाँग अड़ाने वाले जेल कर्मचारी का कहीं दूसरी जगह तबादला करने के बारे में था। यह एक अंतिम चेतावनी थी मुख्यमंत्री की रणनीति के विरुद्ध एक प्रति रणनीति थी।

राष्ट्र और नागरिक के संबंध पर आधारित है 'तमाशबीन' कहानी। मार्क्सवादी चिंतक लुई अल्थूज़र ने राष्ट्र-क्षमता के प्रयोग के लिए दो आयुधों का उल्लेख किया है : निष्पेषणमूलक राष्ट्र व्यवस्था (Repressive State Operation), और मतादर्शमूलक राष्ट्र व्यवस्था (Ideological State Operation)। पुलिस, मिलिटरी द्वारा बलप्रयोग और शिक्षा व्यवस्था, प्रचार माध्यम के ज़रिये जनमानस को प्रभावित करना। इस कहानी में ये दोनों उदाहरण हैं—पुलिस क्षमता का बर्बर प्रयोग और प्रत्यक्ष-परोक्ष रिश्वत, पृष्ठपोषकता द्वारा क्षमतासीन के समर्थन और इशारे से अखबारों में रिपोर्ट छपवाकर जनमत को प्रभावित करने की चेष्टा। सरकारी खर्च और आतिथ्य में दंगाग्रस्त इलाके में गए पत्रकारों के दल में संबित एक न्यारा ही पत्रकार है। उस दिन रात को होटल की खिड़की से वह देखता है कि सड़क के उस पार गाँधी जी की मूर्त्ति के नीचे दो पुलिसवाले एक आदमी को बड़ी बेरहमी से पीट रहे हैं और उस आदमी की चीख सुनाई दे रही है। उसके अगले दिन अखबारों में छपता है कि हालात पूरी तरह नियंत्रण में है, शांति बहाल हो गई है। सरकार की वाहवाही होती है। लेकिन उसके अगले दिन संबित अपने विवेक की ताड़ना से पुलिस के विरुद्ध आरोप लगाता है, उसी स्थान पर उन्हीं दो पुलिसवालों के साथ जाता है। पुलिस की लाठियाँ उठती हैं, "इस बार जो चीख सुनाई दी वह खुद उसी की थी"। होटल की सारी खिड़कियाँ बंद हो गईं, सारी लाइटें बुझ गईं। निष्पेषण और उदासीनता के अंधेरे मुल्क में संबित का विरोध था एक क्षीण बाती। गणतंत्र और व्यक्ति स्वातंत्र्य पर एक गंभीर सवाल की अनुगूँज सुनाई देती है इस कहानी में।

जिस चतुर रहस्यमयी नारी का आभास 'शब्दभेद' में मिला था, उसके विविध प्रतिरूप 'पिक्‌निक', 'पहचान', स्पर्श', 'साक्षात्कार', 'जाना अनजाना', 'स्वाती आएगी' और 'मंत्र' कहानियों में मिलते हैं। 'पिक्‌निक' में सुनंदा का संघर्ष है लज्जा, सामाजिक निषेध के विरुद्ध अपने नारीत्व के लिए। अतीत में वह अरविंद को चाहती थी। उसे ढेरों चिट्ठियाँ लिखा करती थी, किंतु उन्हें फाड़ दिया करती थी। उसका एकतरफा प्रेम, उसकी दमित इच्छा, उद्वेग की स्वगतोक्ति थीं

उसकी चिट्ठियाँ। उस दिन पति से अनुमति लिए बिना वह अपनी सहेली समिता और अरविंद के साथ पिक्निक पर चली जाती है। अरविंद का दूरत्वभाव और उदासीनता का अहसास होने पर वह अंदर ही अंदर कसमसाती है। लौटकर आने के बाद अपनी ओर से सफाई देते हुए अपने पति को लिखती है कि अरविंद से उसका कोई रिश्ता नहीं था, पिक्निक में अरविंद से बातचीत नहीं हुई थी, उसकी अनुपस्थिति में पिक्निक जाना उसकी गलती थी। पहले की तरह उसने इस पत्र को भी फाड़ दिया। एकाकीपन से छुटकारा पाने के लिए, रोज़मर्रा की बँधी-बँधाई ज़िंदगी से क्षणिक राहत पाने के लिए अरविंद के साथ वह एक वैकल्पिक दुनिया गढ़ती है और अगले ही क्षण उसे तहस-नहस कर देती है। यह कहानी नारी की कमज़ोरी और कल्पनाशक्ति दोनों को उजागर करती है और नारी की मानसिकता दर्शाती है।

'पहचान' की नारी वास्तविकता का सामना अपने तरीके से करती है, अपनी शर्त पर। डायरेक्टर का "आज तुम फ्री हो?" के संकेत को ठुकरा देती है उर्मिला। उसकी नौकरी का विरोध करने वाले प्रेमी उदयन, बस और बाज़ार में पुरुषों के अश्लील इशारे, दफ्तर में काम करने वाले पुरुष सहकर्मियों द्वारा उसे कमतर आँकने की चेष्टा वह नज़रअंदाज कर जाती है। अंत में अस्त-व्यस्त उर्मिला उदयन को चिट्ठी लिखती है कि वह नौकरी से इस्तीफा दे रही है उससे विवाह करने के लिए। लेकिन जब बातचीत के प्रसंग में उदयन कहता है कि स्त्री को पुरुष से कम तनख़्वाह मिलनी चाहिए, तब वह देखती है कि हर क्षेत्र में पुरुषों का वर्चस्व है। समझ जाती है कि उसके प्रेमी का प्रेम आत्मकेंद्रित है और प्यार भी पुरुष के बड़बोलेपन व अहंकार से मुक्त नहीं है। वह संकल्प करती है, अपनी ज़िंदगी डायरेक्टर या उदयन द्वारा नियंत्रित नहीं होने देगी। अपने शरीर पर अपना मालिकाना ज़ाहिर करने का फैसला करती है। आत्म-स्वातंत्र्य और अपने प्रति अपनी ज़िम्मेवारी को लेकर सचेत हो जाती है। जब अपनी ओर से डायरेक्टर को कहती है, "आज शाम आप फ्री हैं?" वह आत्म-समर्पण नहीं, वह आत्म-प्रतिष्ठा है। अपने शरीर और मन को अपनी इच्छा से उपयोग करने की स्वाधीनता ज़ाहिर करती है। अपने शरीर और मन का जो अधिकार युगों से पुरुषों ने नारियों से छीन रखा था, उसके पुनरुद्धार, उसके परास्त होने की यह एक वज्रवाणी है। डायरेक्टर के प्रति यह आह्वान गहरे आत्म-विश्वास और ऊर्जस्वल व्यक्तित्व का है। देखना बाकी रह जाता है कि डायरेक्टर किस तरह इसका सामना करते हैं। यह आह्वान समस्त पुरुष-समाज के प्रति है।

''स्पर्श' एक गीति-कहानी है। चाहत के आनंद की पराकाष्ठा के उत्तुंग क्षणों का सामना करने वाली अनेक कहानियों में 'स्पर्श' उनकी श्रेष्ठ रचना है। माधवी अद्भुत रूप से रहस्यमयी है। कभी प्रबल आवेग और प्रचंड यौन-पिपासा की कामिनी होती है। अनेक कामरीति की जादूगरनी है। पुरुष को, प्रेमी को ग्रस लेने, सोख लेने, निःशेष डालने की एक पाशविक क्षुधा है। बिस्तर पर ''शांत शिष्ट शीर्णकाय वह लड़की यकायक हाथ-पैर, होंठ, छाती में तब्दील होकर एक उच्छृंखल अवयव बन जाती थी।'' आश्चर्यजनक रूप से हिमशीतल आवेगहीन उदासीन सूखी लकड़ी की एक पुतली, कुछ औपचारिकताओं से सीमित है उसका जवाब और प्रतिक्रियाएँ। प्राप्ति और अप्राप्ति के बीच संतुलित रहता है पुरुष प्रेमी। अद्भुत आत्म-नियंत्रण के बल पर खुद को, देह-मन को बेच देती है, पुरुष द्वारा इस्तेमाल होने नहीं देती। अपने देह-मन को अपने नियंत्रण में रखकर पुरुष को तरसाती है, उसका घमंड और अहंकार तोड़ती है। नारी की विविधता और बहुरूपियापन के मायाजाल में फँसकर पुरुष मकड़ी के जाले में फँसी मक्खी जैसा हो जाता है।

'साक्षात्कार' एक आधि-कहानीगत (Metafictional) कहानी है। जिसमें सत्य और कल्पना की सीमाएँ खो जाती हैं, वास्तविकता और नाटक का भ्रम बना रहता है। शर्बरी को पूरी तरह पाने के लिए, उपभोग करने के लिए और दूसरों के प्रश्नभरी निगाह से बचाने के लिए चंद्रहास शर्बरी के साथ मिलकर साक्षात्कार करने का नाटक करता है, वह नाटक अंत में सच हो जाता है, इसके निशाने पर स्वयं चंद्रहास होता है। कहानी के अंदर कहानी, नाटक के अंदर नाटक, नाटक के बारे में नाटक या मेटाथियेटर के रूप का आद्य प्रवक्ता इटालियन नाटककार लूज पिरांडेलो का Six characters in search of an Author में इस नाटक के पात्र अपनी-अपनी भूमिका में अभिनय करते-करते वास्तविक जीवन के चरित्र में तब्दील हो जाते हैं। साक्षात्कार नाटक में पत्रकार की भूमिका निभा रही शर्बरी धीरे-धीरे अपनी अभिनय कला के वृत्त में खिंची चली आती है और सचमुच की पत्रकार बन जाती है। उसकी इस प्रक्रिया को चंद्रहास रोक नहीं पाता। जो खेल चंद्रहास खेलना चाहता था, अब वह उसके नियंत्रण में नहीं रहा। मायाविनी शर्बरी इस साक्षात्कार के नाटक को आयुध के रूप में उपयोग करके चंद्रहास के यौन अहंकार का दमन करती है। उसे एक असहाय परिस्थिति में धकेलकर वह चली जाती है अपनी व्यक्तिगत स्थिति में और अपनी देह पर नियंत्रण ज़ाहिर करती है। (चंद्रहास और शर्बरी के नाम के मर्मार्थ की व्यंजना इस कहानी में

झंकृत होती है।) चंद्रहास को अहसास होता है अपनी अंतःशून्यता का, शर्बरी को अनुभव होता है अपनी असीम संभावना का। यह साक्षात्कार चंद्रहास और शर्बरी का अपने-अपने अस्तित्व से साक्षात्कार है।

सच और झूठ का भ्रममय जगत है 'जाना अनजाना' का जगत। इसमें अभिव्यक्त है एक नारी का रहस्यमय इलाका—निहायत धुँधला पर शक्तिशाली। सीमा प्रखर बुद्धिमान और असाधारण शक्ति की अधिकारिणी है। दफ्तर में और दफ्तर के बाहर घटित घटनाओं को छुपाने के लिए रमानाथ की सारी कोशिशें सीमा की आँखों में पकड़ जाती हैं। उसकी आँखों में देखकर असली सच जानकर सीमा उसे चकित कर देती है और उससे मुकाबला करके उसे पानी-पानी कर देती है। रमानाथ को लगता है कि सीमा ने उसके पीछे गुप्तचर लगा रखा है, कोई उसके बारे में रोज़ाना सीमा को खबर देता है या फिर सीमा का किसी से गोपनीय रिश्ता है। पूरी दुपहरी सीमा क्या करती है? सीमा की मृत्यु के बाद उसके बक्से में रमानाथ को एक तसवीर मिलती है, जिसमें सीमा और उसकी चार सहेलियाँ एक-दूसरे का हाथ थामे खड़ी हैं और किसी निर्दिष्ट चीज को एकाग्रता से देख रही हैं। अखबार में छपी डायन होने की खबर पढ़कर रमानाथ को लगता है कि सीमा और उसकी सहेलियाँ डायन बनने की प्राथमिक दीक्षा लेने के लिए एक तांत्रिक विन्यास में किसी शक्ति-चिह्न को घेरे बैठी हैं। यह तंत्र-साधना सीमा की पैनी अंतःदृष्टि की प्रतीक है। सीमा की अंतःदृष्टि की चमत्कारिता सिर्फ तंत्र के प्रतीक के ज़रिए उजागर हो सकती है। परंतु क्या रमानाथ की नजर में सीमा एक समानांतर जीवन जी रही थी? क्या उसका पूरा दांपत्य जीवन एक अनजान-परिचित औरत के साथ बीता था? एक डायन के साथ? कौन-सा जाना-पहचाना है, कौन-सा अनजाना? जो जाना-पहचाना है, वह अनजाना है या जो अनजाना है, वह जाना-पहचाना है? सारा अतीत इस वक्त ऐंद्रजालिक है, और यह दुनिया, यह जीवन एक इंद्रजाल।

'स्वाती आएगी' एक नाटकीय उत्कंठा भरी कहानी है। कहानी का केंद्रबिंदु स्वाती है, किंतु इसमें स्वाती की उपस्थिति सामान्य है—कहानी के शुरू में भास्कर के साथ उसकी एकाध बातचीत है। वह कहानी में अधिकतर अनुपस्थित होने पर भी भास्कर के इंतज़ार, उत्कंठा, आवेग, उत्तेजना और अस्थिरता के ज़रिए उसकी उपस्थिति का आभास होता रहता है। स्वाती का स्वागत करने के लिए भास्कर की सारी साज-सज्जा और मानसिक तैयारी के आवेगभरे विवरणों से

भरी है यह कहानी। स्वाती को लेकर सारी योजनाओं और सपनों की नाटकीय उत्कंठा का आरोहण धीरे-धीरे शीर्ष पर पहुँच जाता है। सारी उत्तेजना, उत्कंठा इकट्ठी हो जाती हैं उस शीर्ष बिंदु पर, विस्फोट के चरम क्षणों में। ठीक तभी भास्कर घर पर ताला लगाकर, 'एक ज़रूरी काम से बाहर जा रहा हूँ' लिखकर वह चिट्ठी ताले में खोंसकर बाहर चला जाता है। इस आकस्मिक अवरोहण का क्या कारण था? नाटकीयता के सहसा पतन का तात्पर्य क्या है? क्या उस चरम क्षण के विस्फोट को सहने से डर गया था वह? यह स्वाती की प्रचंड क्षमता का परिचय देता है, जिसके आगे एक पुरुष खुद को बड़ा ही दयनीय महसूस करता है। स्वाती की कल्पित छवि के सम्मुख भास्कर बेबस है, स्वाती की सर्वग्रासी कामना का आभास उसे नामर्द कर देता है। एक अनुपस्थित पात्र की सदेह रहस्यमय उपस्थिति इस कहानी की विशेषता है। सीमा की तरह स्वाती भी एक ज्वालामयी नारी है।

'जाना अनजाना' की तरह कथाकार ने 'मंत्र' कहानी में तंत्र का उपयोग शक्तिशाली प्रतीक के रूप में किया है नारी मानस के सघन रहस्य वृत्त को उजागर करने के लिए। कभी मेधावी छात्रा और लीडर के रूप में प्रख्यात सुहासिनी आज भ्रष्टाचारी पति प्रभाकर से दूर-दूर रहती है, विज़िलेंस केस में फँसे पति के प्रति उदासीन रहती है। जब पाखंडी स्वामी जी को लेकर भ्रष्ट चीफ इंजीनियर, उसका पति प्रभाकर और नगरवासियों में अति उत्साह दिखाई दे रहा था, वह स्वामी जी की परवाह नहीं करती थी। अनेक पुरुष-स्त्री स्वामी जी के छल-कपट का शिकार हो रहे थे, पर उसके पाखंड और यौनलालसा का मुकाबला सुहासिनी अपने तरीके से करती है। आत्म समर्पण न करके स्वामी जी के असली चेहरे की ओर संकेत करते हुए कहती है, "तू एक असली ठग है।" अन्य नारियों की तरह वह उसके चरणों में न बैठकर, बैठती है उसकी बगल में बराबर की ऊँचाई पर। स्वामी जी के झूठे मंत्र का मुकाबला करती है अपने व्यक्तित्व, अंतःदृष्टि और आत्मा के मंत्र से। वह पकड़ में नहीं आती, बल्कि स्वामी जी को अपने नियंत्रण में लाती है। बौद्धिक स्तर पर स्वामी जी उस पर निर्भर करते हैं। वह स्वामी जी के बौद्धिक प्रवचनों की प्रशंसा करती है, उन्हें लिपिबद्ध करके एक पुस्तक बनाने में जुट जाती है। परंतु सवाल यह उठता है कि एक पांखडी-स्वामी इतना सुंदर, सारगर्भित प्रवचन कैसे दे लेता है? इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि स्वामी जी के अनेक नाटकों की तरह वह भी एक नाटक था, वह एक परिपक्व

अभिनेता था। अभिनय और वास्तविकता में फ़र्क नहीं रह जाता आम जनता के लिए, किंतु आलोचक विदुषी सुहासिनी के लिए नहीं। सुहासिनी उन प्रवचनों को लिपिबद्ध संकलित और संपादित करके उन पर अपनी मुहर लगा देती है। अर्थात् वह उस पुस्तक की सह-स्रष्टा बन जाती है। उस उपादान को आत्मसात करके उसे एक नया कलेवर देती है विदुषी, बुद्धिमान, चतुर सुहासिनी। चीफ इंजीनियर की साली के साथ प्रचुर अर्थ और अलंकार सहित एक दिन अचानक गायब हो जाते हैं स्वामी जी। जब पूरे नगरवासी हतप्रभ थे, सुहासिनी में कोई प्रतिक्रिया नहीं थी, प्रताड़ित समाज और प्रताड़क स्वामी जी से काफी ऊँची थी वह बुद्धि, अंतःदृष्टि और नैतिकता के स्तर पर। यही है असली मंत्र।

क़ाफ़्का के दृष्टिकोण और शैली एवं उत्तर आधुनिक आधिकहानी के रूप के सुंदर सम्मिश्रण का एक सफल परीक्षण किया है कथाकार ने 'पात्र-परिचय' कहानी में। कारणहीन, तर्कहीन यंत्रणा का शिकार होता है लेखक बलभद्र। 'सत्य-असत्य' के नायक पद्मधर के चरित्र से और भी तेज और जटिल है बलभद्र का चरित्र। लेखक के दो परिचय; अभिजात, बौद्धिक कहानी, उपन्यास का लेखक–बलभद्र और पैसा कमाने के लिए डिटेक्टिव, हल्के अश्लील उपन्यास, सस्ती राजनीतिक कहानी, रोमांचकारी थ्रिलर के लेखक–कीर्त्तिमुख। 'शब्दभेद' के भवनाथ की तरह अपने उपन्यास के किसी पात्र से सामंजस्य रखने वाले वास्तविक दुनिया के लोगों की आलोचना का शिकार हो जाता है बलभद्र। साहित्य की सीमा लाँघकर वास्तविक दुनिया में साहित्य के संक्रमण और विस्तार की ओर यह संकेत करती है। उसके एक डिटेक्टिव उपन्यास की घटना से सामंजस्य रखने वाली एक सच्ची अपहरण घटना को लेकर पुलिस के शक के घेरे में वह आ जाता है–इस कहानी से प्रेरित होकर कोई यह अपराध कर डालता है या लेखक उस घटना के बारे में जानता होगा या स्वयं उससे जुड़ा हो सकता है। पुलिस का दारोगा, उस घटना के बारे में पूछताछ करने के बाद उसे कौतूहल हो जाती है। वह अपनी ओर से दारोगा से संपर्क रखता है, उस बारे में कोई खबर न मिलने पर अधीर और परेशान हो जाता है। केस की अग्रगति के बारे में अधिक कौतूहल और जिज्ञासा प्रकट करता है। क्रमशः The Trial के 'के' की तरह खुद ही जाँच प्रक्रिया की ओर खिंचा चला जाता है। एक अहेतुक यंत्रणा से पीड़ित रहता है। जाँच वाली घटना उसके उपन्यास का एक विस्तारित हिस्सा बन जाती है, वह ख़ुद ही उसमें एक पात्र बन जाता है। एक काल्पनिक रचना को प्रमाण के रूप में रखकर दरोगा भी इस विस्तारित साहित्य का एक पात्र बन जाता है। कला के इंद्रजाल में सभी

फँस जाते हैं, ठीक उस तरह जैसे 'साक्षात्कार' की शर्बरी और चंद्रहास अपने ही बनाए नाटक में फँस जाते हैं। अंत में लेखक गिरफ्तार हो जाता है। क़ाफ़्का की दुनिया की तरह जगन्नाथ प्रसाद दास की दुनिया बड़ी भयंकर और हास्यकर है। सभी इस नाटक या कहानी के पात्र हैं—'पात्र-परिचय'। सारी दुनिया जो एक रंगमंच है, इसी आधिभौतिक सत्य पर 'पात्र-परिचय' प्रकाश डालता है। एक काल्पनिक सृष्टि की घटना को जाँच के सूत्र के रूप में स्वीकार करना कानून की सीमितता और तर्क की सीमाबद्धता दर्शाता है, कार्य-कारण के संबंधों की संगति पर सवाल खड़े करता है। लेखक के असली-नकली के भीतर भ्रम पैदा करता है, बलभद्र और कीर्त्तिमुख पहचाने नहीं जाते। एक दूसरी दृष्टि से बलभद्र का अभिजात, शिष्ट साहित्य का महल ढह जाता है कीर्त्तिमुख के सस्ते साहित्य के वास्तविक मामूली चित्तवृत्ति के आघात से। वास्तविक दुनिया की काल्पनिकता (fictionality) पर आधारित यह कहानी एक आधि-कहानी है। यहाँ मेरी राय है कि जगन्नाथ प्रसाद की पूर्वोक्त कहानियों में रूप पाने वाले उनके नज़रिए और रूप का सूक्ष्म सम्मिश्रण 'पात्र-परिचय' में घटित हुआ है।

''कविता की लंबी उम्र' लेखक की पूर्व कहानियों की तरह साहित्य और समाज, साहित्य और जीवन के बीच पारस्परिकता, संजोग, आवाजाही की जटिल ग्रंथि को उजागर करने की चेष्टा करती है। यह कहानी एक कवि के अंतिम अध्याय की कहानी है। अपनी कविता की दुनिया में डूबे रहकर कवि सामाजिक दीन-दुनिया से बेखबर रहता है। उसकी नौकरी चली जाती है, पत्नी-पुत्र घर छोड़कर चले जाते हैं। समाज से कटी हुई कविताएँ अपनी शक्ति और सघनता खो देती हैं। पैसों के लिए वह सिनेमा के गीत और संवाद लिखने लग जाता है। घटिया व्यावसायिक साहित्य के चक्कर में पड़ जाता है। वह जो गीत लिखता है, उसे संपादक या फिल्म-निर्माता बदलकर अश्लील बना देते हैं। दबाव में आकर वह अश्लील गीत लिखने लग जाता है। उसका कवित्व बिकाऊ हो जाता है पण्य की तरह। अंत में वह गाँव में रहता है, अधिकतर समय ढाबे में बिताता है, देसी शराब में डूबा रहता है। दूसरों के लिए कैतूहल और आमोद की सामग्री बन जाता है। पूर्व परिकल्पित योजना के अनुसार उसका साक्षात्कार लेते समय उसके शराब पीने, शराब पीते-पीते गिर पड़ने, विरोध करते हुए चीखने—उन सबके फोटो खींच लिए जाते हैं पत्रिका की बिक्री बढ़ाने के लिए। सौदागरी सभ्यता की वस्तु बन जाता है वह। इन सारी यंत्रणाओं और जग-हँसाई के बीच कुसुम की याद उसे आह्लादित करती है। कुसुम को उसकी कविताओं के प्रति

आग्रह नहीं था, लेकिन उसका प्यार था अनासक्त प्यार, वह चाहती है उसके पास आना, उसका ध्यान रखने। लेकिन कवि एकाकी रहना चाहता है, कवि ने जो अपनी अलग दुनिया बनाई है, उसी में अपना बाकी जीवन बिताने की उम्मीद रखकर। 'कविता की चिरंतनता' के बदले 'कविता की लंबी उम्र' शीर्षक का तात्पर्य यहाँ प्रासंगिक लगता है। कविता चिरंतन, कालजयी और कवि स्रष्टा है, भगवान का प्रतिरूप है—ऐसे पारंपरिक दावे को रूपवादी आलोचना (formalism) और उत्तर आधुनिकता नकारती है। कविता कोई सृष्टि नहीं, एक निर्मिति है, एक कारीगरी है, कवि एक कारीगर है। इसलिए समकालीन विमर्श की धारा के अनुसार जगन्नाथ प्रसाद ने कविता की चिरंतनता की बात नहीं की है, दीर्घ जीवन की बात की है। जब कवि जीवन के अंतिम पड़ाव पर अकेला पड़ जाता है तब वह अपनी सृष्टि के कल्पना जगत का सहारा लेता है, कविता के दीर्घ जीवन में कवि का भी जीवन शामिल हो जाता है। कविता के प्रलंबित जीवन में उसका जीवन एक हिस्सा बन जाता है। यह उसके जीने की राह है, दीर्घ-जीवन का स्वाद है।

(तीन)

टी.एस.इलियट की भाषा में कवि अपने समय के सर्वोच्च सचेतन बिंदु में रहता है। सारी घटनाओं, चिंताओं और चेतना के प्रवाह के प्रति उन्मुख रहता है। जगन्नाथ प्रसाद दास सारे अनुभवों और चेतना के केंद्र में रहते हैं। सामाजिक प्रसंग और राजनीतिक समस्याओं के बारे में वे जितने सजग हैं, विचारों की दुनिया में चल रहे आंदोलनों के प्रति भी उतने ही सचेत हैं। उनके अध्ययन और शोध का ज्ञान, अनुभूति में रूपांतरित होकर उनकी कहानियों में शामिल हो जाता है। कहानियाँ उनके ज्ञान का प्रदर्शन नहीं, आंतरिक अनुभूति का रूपायन हैं। समसामयिक सामाजिक प्रसंग आरक्षण; सांप्रदायिक दंगे, राजनैतिक संघर्ष, टूटे व्यक्ति संपर्क, क्षमता का खेल, समाज में नारी का संघर्ष, कवि की स्थिति, मनुष्य की मानसिकता, विश्व में मनुष्य की स्थिति को लेकर लिखी गई उनकी कहानियों की भरमार है। प्रसंग एक-दूसरे से अलग नहीं होते, एक-दूसरे से जुड़े होते हैं, एक-दूसरे की सीमा लांघते हैं। उसी तरह मार्क्सवादी अस्तित्ववादी, वामावादी, उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टिकोण और रूप उनकी कहानी-लेखन के उपादान हैं। उनकी अनेक कहानियाँ अस्तित्ववादी दर्शन, खासकर फ्राँज काफ्का की चित्तवृत्ति

और रूप द्वारा प्रभावित हैं। पूर्व निर्धारित, अर्थ द्वारा निर्मित सत्य और मार्ग का प्रत्याख्यान करके निजस्व और निजस्व मार्ग की तलाश करते हैं उनके पात्र।

नारी का चरित्र-चित्रण करने में जगन्नाथ प्रसाद की कला-कुशलता अद्वितीय है। उनकी नारियाँ बहुविध, परिवर्तनशील, पहुँच से दूर और मासूम हैं, किंतु शक्ति संपन्न हैं, कभी-कभी तो अग्नि कन्या हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कथाकार ने नारी की नास्तिमूलक तसवीर खींची है, उनकी नारी श्रद्धामयी, आत्मसचेत एवं पुरुष आधिपत्य और शोषण की दृढ़ विरोधी है। यथार्थ और कल्पना के बीच बड़ी आसानी से आती-जाती हैं। 'शब्दभेद' की नारी हो सकती है कवि कल्पना या यथार्थ, या दोनों। वह छलनामयी, कौतुकमयी, मायाविनी है, 'पिक्‌निक', 'साक्षात्कार', की नायिका पुरुष के चंगुल से बचने के लिए कल्पनाशक्ति का सहारा लेती है। 'पहचान' की उर्मिला समझती है अपनी देह का मूल्य, अपनी देह पर अपना अधिकारबोध। 'स्पर्श' की माधवी अपनी इच्छा से, अपने आवेग के साथ, पुरुष के कहने या इशारे पर नहीं, वह अपनी देह का उपयोग करती है—कभी उन्मुक्त, कभी स्पर्शकातरताहीन एक बंद शरीर के तौर पर। 'जाना अनजाना' और 'मंत्र' कहानियों में नारी की असाधारण धीशक्ति और अंतर्दृष्टि का विस्तारित चित्रकल्प देखा जा सकता है।

प्रारंभ से मैंने जो तात्त्विक फ्रेमवर्क या चौहद्‌दी आँकी है, उसकी कार्यकारिता इन कहानियों में दिखाने की चेष्टा की है। संक्षेप में कहा जाए तो जगन्नाथ प्रसाद की कहानियाँ यथार्थ अयथार्थ की लुकाछिपी का प्रांगण है। उनका कहानी-संसार यथार्थ-अयथार्थ और स्वप्न-दुःस्वप्न से निर्मित है। इन सबकी सीमा अनिर्णित और अनिर्दिष्ट है। स्वाभाविक यथार्थ से विकृत यथार्थ (grotesqne realism), यथार्थ से अतियथार्थ या स्वप्नदृष्टि, स्वप्न से दुःस्वप्न में जाना और लौट आना अति सहज और स्वाभाविक है। 'सत्य-असत्य' और 'पात्र-परिचय' कहानियाँ स्वप्न और दुःस्वप्न के बीच डोलती हैं। यथार्थ की जाँच प्रक्रिया मानसिक, आध्यात्मिक स्तर पर जाँच और अनुसंधान में परिणत हो जाती है। एक सार्वजनिक अपराधबोध और हर इंसान के भीतर के अपराधबोध को अति कलात्मक रूप से इन कहानियों में प्रकट किया गया है, पुरोभाग में लाया गया है। स्वाभाविकवाद, प्रतीकवाद, अतियथार्थवाद, उत्तर आधुनिक आधिकहानी शैली—ऐसी अनेक शैलियों और रूपों की सफल प्रयोगशाला है जगन्नाथ प्रसाद की कहानियों का समूह। आधुनिकतावाद और उत्तर आधुनिकतावाद उनके कला स्थापत्य की दो दिशाएँ हैं। व्यथा और व्यंग्य से निर्मित

है उनका कहानी जगत। भवनाथ से लेकर बलभद्र तक, सुनंदा से सौदामिनी तक उनके पात्र जाते हैं शून्यताबोध और विषाद से होते हुए अपने-अपने अस्तित्व की तलाश में। उद्भट, दुर्गम इलाकों में वे संघर्षरत हैं एवं उस संघर्ष के ज़रिये अपनी कमज़ोरी और ताकत का मुक़ाबला करते हैं एवं अभावबोध व आत्मिक ऐश्वर्य की उपलब्धि करते हैं। भाषा उनकी तद्भव और देशज शब्दों का मिश्रण है जो मामूली नगण्य घटनाओं को लेकर चमत्कारपूर्ण कथन शैली पैदा करने में पूरी तरह उपयोगी है।

(चार)

जगन्नाथ प्रसाद दास की अनेक कहानियों में से कुछ कहानियाँ चुनना मुश्किल है। इन चुनी हुई कहानियों के अलावा उनकी और भी कई उच्चकोटि की कहानियाँ निश्चित ही छूट गई हैं। उन कहानियों को भी इस संग्रह में शामिल करने की इच्छा होने पर भी संग्रह के सीमित कलेवर को देखते हुए मुझे अपनी इच्छा का संभरण करना पड़ा। इसके अलावा इन कहानियों को चुनते समय मुझे कुछ बातों पर ध्यान देना पड़ा। प्रथमतः, कहानीकार के साहित्यिक जीवन के विभिन्न चरणों को प्रतिनिधित्व देना। इससे उनके कहानी-मानस के क्रमिक विकास की सम्यक धारणा बनेगी। द्वितीय, उनके द्वारा उल्लिखित विविध प्रसंगों को शामिल करना, जो कि उनकी कहानियों के विस्तार की सूचना देगा। तृतीय, उनके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न शैलियों और रूपों के सही उदाहरणों को स्थान देना। इन सारी विविधताओं में कहानी की मुख्यधारा से परिचित करना और जगन्नाथ प्रसाद के सृजन-शील मानस के गतिवृत्त का एक आभास-चित्र प्रदान करना इस संग्रह का लक्ष्य है। उनकी कहानियों के रहस्य, उत्कंठापूर्ण बौद्धिक परिवेश पाठकों को कहानी के वलय में खींच लाते हैं। जीवन के अनेक असमाहित प्रश्नों से सामना कराते हैं। कहानियों के रहस्य खोलने में पाठकों को सजग और सक्रिय करते हैं। वे लोग भाग लेते हैं कहानी के अर्थ निर्माण की प्रक्रिया में। वे बन जाते हैं सह-स्रष्टा। ये सचेत, सक्रिय सह-स्रष्टा ही पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करते हैं इस कहानी संग्रह में।

–गुरुचरण बेहेरा
प्रोफेसर अंग्रेजी (समकालीन साहित्य)
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शब्दभेद

कॉलेज के दिनों से ही हम लोगों ने यह जान लिया था कि एक-न-एक दिन भवनाथ जरूर पगला जाएगा। वह तब भी कविताएँ लिखा करता था और अपने आपको गहरे प्यार में डूबा हुआ महसूस करता था। यह जरूर है कि कॉलेज में पढ़ते वक्त सभी लोग कविताएँ लिखते हैं और अपने को प्यार में डूबा हुआ महसूस करते हैं ; किंतु भवनाथ हर चीज में हम सबों से काफी गंभीर था और ढेरों बातें किया करता था। कॉलेज के पास की चाय की दुकान पर, उसकी बातें सुनते-सुनते उकताकर सबके चले जाने के बाद भी वह दुकान के मालिक को अपनी बातें सुनाया करता था। कॉलेज में उसका कोई जिगरी दोस्त न होने पर भी भवनाथ ने सबसे एक-सा संबंध बना रखा था।

भवनाथ के कविता लिखने की सामर्थ्य पर मुझे कॉलेज के दिनों में ज्यादा आस्था नहीं थी। भवनाथ अद्‌भुत कविताएँ लिखा करता था। उसकी कविताएँ कहीं छपती नहीं थीं, इस पर आश्चर्य होने-जैसी कोई बात भी नहीं थी। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है, जिस दिन हाथ में एक पत्रिका लिए हुए भवनाथ तूफान की तरह चाय की दुकान में हमारे पास आया और अपनी प्रथम प्रकाशित कविता हमें दिखलाने लगा। उस वक्त दुकान में अच्छी-खासी भीड़ थी। हम चार लोग जिस टेबल पर बैठे थे, उसी के करीब एक कुर्सी खींच लाया और उस पर बैठकर भवनाथ ने उस दिन अपनी प्रथम प्रकाशित कविता हम लोगों को सुनाई। कविता का शीर्षक था–"आरोह-अवरोह" और कविता की लंबाई थी सिर्फ छह पंक्तियां :

घास बरगद
चींटी हाथी
मनुष्य ईश्वर
ईश्वर मनुष्य।
हाथी चींटी
बरगद घास।

यदि यह कविता किसी प्रसिद्ध पत्रिका में न छपी होती, तो शायद हम भवनाथ के इस काव्यात्मक प्रयास को मजाक में उड़ा देते—उसकी अन्य सभी बातों की तरह। किंतु उस वक्त वह कॉलेज का एकमात्र प्रकाशित कवि था, इसलिए हम सबको उसकी बातें सुननी पड़ीं। इस छोटी-सी कविता के बहाने वह हमें यह समझाने लगा कि एक कविता लिखने के लिए कितनी साधना करनी पड़ती है। उदाहरण के तौर पर, भवनाथ ने समझाया—इन छह पंक्तियों के पीछे उसे किस तरह छह महीने लगे थे; यह आरोह किस तरह सिर्फ घास से बरगद और चींटी से हाथी ही नहीं, घास से चींटी और चींटी से मनुष्य भी है। इस आरोह के साथ डारविन के नेचुरल सिलेक्शन का सिद्धांत किस तरह अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, यह कहना भी भवनाथ भूला नहीं था। और अंत मे उसने इलियट, पाउंड आदि का उदाहरण देते हुए 'अच्छी कविता क्या है' से संबंधित एक छोटा-सा भाषण भी दिया था।

इस बार उसकी बातों को किसी ने भी हंसी में नहीं उड़ाया; और मैं सोचता हूँ, हम लोगों में से जो भी प्रतिष्ठित कवि होने का सपना देख रहे थे, उनमें से कोई-कोई तो ईर्ष्यावित भी हो गए थे। चाय पीने के बाद हम उठने लगे। इतने में दुर्भाग्यवश हममें से कोई उससे पूछ बैठा—चींटी का च ह्रस्व होगा या दीर्घ? मानो भवनाथ इस प्रश्न के लिए तैयार था। उसने अपने झोले से (कहने की आवश्यकता नहीं कि हम लोगों में भवनाथ ही एकमात्र कवि था, जोकि कवि की तरह कपड़े पहनता था और कंधे पर झोला लटकाता था) एक शब्दकोश निकालकर उसमें दिखा दिया और प्रमाणित कर दिया कि उसके द्वारा लिखी गई वर्तनी ही शुद्ध है। इसके अलावा उसने इस बात की सफाई भी दी कि चींटी के स्थान पर चींटी के अन्य पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग की गुंजाइश होने पर भी, उसने चींटी शब्द का ही प्रयोग क्यों किया है।

इस कविता के प्रकाशित होने के बाद से वह अपने आप को एक प्रतिष्ठित कवि समझने लगा और दाढ़ी बढ़ाने लगा। हालाँकि बहुत दिनों तक उसकी अन्य कोई कविता नहीं छपी, फिर भी वह कॉलेज में कवि के रूप में स्वीकृति पा चुका था। अब वह बात-बात पर थैले से शब्दकोश निकालता था एवं विभिन्न शब्दों के अर्थ और प्रयोग को लेकर तर्क-वितर्क करता था। कोई इस विषय में पूछे तो वह उल्टा तर्क देता था : शब्द ही तो ब्रह्म है! और बाइबिल का कथन उद्धृत करता था : सबसे पहले सिर्फ शब्द ही था, यही शब्द ईश्वर में बदल गया।

फाइनल परीक्षा के बाद जब हम लोगों ने अंतिम बार कॉलेज छोड़ा, तो आपस में एक-दूसरे का पता ले-दे लेने पर भी, ज्यादा दिनों तक कोई

किसी के साथ संपर्क नहीं बनाए रख सका। उसके बाद नौकरी पाकर सब इधर-उधर हो गए। मुझे एक दूसरे शहर में नौकरी मिली। बीच-बीच में पत्र-पत्रिकाओं में मैं भवनाथ की कविताएँ देखा करता था, और उसी से अंदाजा लगा लिया था कि भवनाथ भी कहीं नौकरी वगैरह कर रहा होगा और बीच-बीच में शौक के लिए कविताएँ लिखता होगा। उसकी कविताएँ मेरी समझ से परे थीं। भवनाथ को पहले से जानने के कारण बीच-बीच में मैं यह सोचा करता था कि पाठकों को मूर्ख साबित करने के लिए वह इस तरह की कविताएँ लिखता है।

छुट्टियों में जब मैं घर आया करता था, कुछ पुराने मित्रों से कभी-कभार मुलाकात हो जाया करती थी, और उन्हीं से भवनाथ के बारे में भी थोड़ा-बहुत सुनने को मिल जाता था। उस वक्त भवनाथ एक अखबार के ऑफिस में काम करता था और सभी उसे कवि समझते थे। एक बार कौतूहलवश मैंने उसके ऑफिस में फोन किया, और भवनाथ मेरी आवाज सुनकर खुश हुआ। उसी दिन शाम को हम लोगों ने अपनी उसी पुरानी चाय की दुकान में मिलना तय किया।

जब मैं वहाँ पहुँचा, भवनाथ अभी आया नहीं था। हालाँकि चाय की दुकान ठीक पहले की तरह थी; किंतु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह और भी छोटी और गंदी हो गई है। मेरी यह अनुभूति अपने प्रसारित दृष्टिकोण की वजह से हो रही है कि नहीं—यह सोच ही रहा था कि भवनाथ आ पहुँचा। चाय का आर्डर देकर भवनाथ ने बताया कि वह इसलिए देर से पहुंचा, क्योंकि एक शब्द को लेकर संपादक से उसका झगड़ा हो गया था। यह बात सुनकर मुझे ऐसा लगा, मानो शब्द के तात्पर्य को लेकर वह पुनः एक भाषण देगा। किंतु उस वक्त तक भवनाथ के मन से संपादक के साथ झगड़ेवाली बात शायद गई नहीं थी। वह चुपचाप बैठा रहा। इस बार मैंने उसे अच्छी तरह देखा; वह ठीक पहले की तरह ही था— ठीक वैसा ही कविनुमा और पगलेट-सा।

अपने अन्य पुराने दोस्तों से मिलने पर हमलोग आपस में अपने बच्चों की पढ़ाई, चीजों की कीमत और अपने स्वास्थ्य इत्यादि के बारे में बातचीत करते थे। किंतु मैंने एकमात्र भवनाथ को ही देखा, जो ठीक पहले की ही तरह था। उसमें कोई मानसिक परिवर्तन भी नहीं हुआ था, क्योंकि उसने पुरानी बातों से संपर्क काटा नहीं था।

चाय-दुकान का मालिक—जिसे आठ वर्षों के बाद भी मैंने पहचान लिया था, किंतु वह मुझे नहीं पहचान पाया था—वह भवनाथ के पास आकर उसका

कुशल-क्षेम पूछने लगा। भवनाथ दुःखी-सा सिर हिलाकर बोला—हर रोज उसकी इच्छा होती है यहाँ आने को, किंतु रोजाना देर हो जाती है। उसकी बात सुनकर मैंने सोचा, शायद वह कोई दायित्वपूर्ण काम करता है। जब मैंने उससे उसके ऑफिस के बारे में पूछा, उसने अपने पॉकेट से एक मैग्निफाइंग ग्लास निकालकर मुझे दिखाया। मैं उससे उसकी आँखों के बारे में पूछने जा ही रहा था कि भवनाथ ने उस कांच को अपने पॉकेट में रख लिया और थैले से एक शब्दकोश निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया। अक्षर खूब छोटे-छोटे होने की वजह से मुझे पढ़ने में परेशानी हो रही थी। किंतु मैंने देखा, भवनाथ अनायास ही उन्हें पढ़ गया। इसके बाद उसने मुझे बतलाया कि अखबार ऑफिस में उसका मुख्य काम है प्रूफ देखना। और हर शब्द को अच्छी तरह देखना हो तो सिर्फ दृष्टि ही पर्याप्त नहीं है, हरेक शब्द को अन्य शब्द से अलग करके उसे बारीकी से देखना पड़ता है।

चाय पीने के बाद हम दोनों अपने पुराने कॉलेज के लॉन में जाकर बैठ गए। मैंने अनुभव किया कि मैं अपने आपको इस पुराने परिवेश में ठीक से खपा नहीं पा रहा हूँ ; किंतु भवनाथ पालथी मारकर बड़े आराम से घास पर बैठ गया और मुझसे मेरे बारे में सारी बातें पूछने लगा। अपनी नौकरी की प्रगति और पत्नी तथा परिवार का एक विस्तृत विवरण देने के बाद जब मैंने उससे उसके बारे में पूछा, उसने संक्षेप में उत्तर देते हुए कहा—जिस तरह कॉलेज के दिनों में अकेला रहता था, आज भी अकेला हूँ। जब कभी समय मिलता है, कविताएँ लिखता हूँ। उसने मुझे अपनी कविताओं की कॉपी देखने को दी। अपनी उस पुरानी आरोह-अवरोह कविता के बाद वह अन्य बहुत-सी कविताएँ लिख चुका था। यद्यपि उसके कवित्व के बारे में मेरी धारणा अच्छी नहीं थी; फिर भी मैंने कहा—बड़ी बात है, लिखने का अभ्यास तो बनाए हुए हो! उसने मुझसे उलटकर पूछा—आज कल कविता-फविता पढ़ते हो ना? मैंने कहा—हाँ, यों ही कभी-कभार देख लेता हूँ। भवनाथ ने अपनी कविता की कॉपी मुझसे वापस लेकर फिर से संभालकर थैले में रख ली और दुःख के साथ चू-चू किया। मैं समझ गया कि अब भवनाथ का भाषण शुरू होगा—और वही हुआ।

और थोड़ा अच्छी तरह पालथी मारकर बैठते हुए भवनाथ ने कहा—सिर्फ नजर भर दौड़ा देने से तो पढ़ाई हो नहीं जाती! कविता पढ़ते वक्त हरेक शब्द को सूक्ष्मता से देखना पड़ता है। अपनी बात पर जोर देने के लिए इस बार वह हाथ में लिए हुए मैग्निफाइंग ग्लास को हिलाते हुए बोला—प्रत्येक शब्द को, पूरे वाक्य को पढ़ने पर भी कोई फायदा नहीं। जैसे 'हैमलेट' में हैमलेट

अपनी माँ से कहता है—यू आर योर हजबैंड्स ब्रदर्स वाइफ! खूब सीधी-सी बात है, और प्रत्येक शब्द अति साधारण हैं—तुम अपने पति के भाई की पत्नी हो। किंतु पूर्वापर संगति से ये शब्द किस तरह खतरनाक हो सकते हैं, देखा न तुमने? ये कुछ शब्द अपनी माँ को उसकी आत्मा पहचानने को कह रहे हैं, एवं उसे उसकी निर्बोधता, उसके पाप और उसके जघन्य व्यवहार को लेकर आगाह कर रहे हैं। कुछ देर खामोश रहने के बाद भवनाथ ने कहा—अर्थ ढूंढ़ने के लिए कई बार हमें शब्द के भीतर से होकर बाहर की दुनिया में भी जाना पड़ेगा...

भवनाथ चुप रहा, और इसी बीच मैं उसके दार्शनिक भाषण को हृदयंगम करने की कोशिश करने लगा। अंत में मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि संभव है, शेक्सपियर-जैसे रचनाकार की रचनाओं में शब्द के बाहर उसका अर्थ निहित हो। किंतु मामूली कविता, जैसे भवनाथ की आरोह-अवरोह, उसमें भला गूढ़ अर्थ और क्या होगा?

बहुत दिनों बाद जाकर मुझे यह मालूम हुआ कि मेरी यह धारणा गलत थी। बातचीत के दौरान भवनाथ ने मुझसे कहा था—एक दिन ये शब्द ही आग बनकर सब कुछ स्वाहा कर देंगे। किंतु भवनाथ की कविताओं से चिनगारी फूटकर समाज से अन्याय और अत्याचार रोकने में ईंधन का काम करेगी, इसमें मुझे बहुत संदेह था। जब मैंने यह सुना कि कविता के लिए भवनाथ को जेल जाना पड़ा, मैं समझ गया कि कहीं-न-कहीं कोई गलत फहमी हो गई है। बाद में मुझे पता चला कि भवनाथ को अपनी आरोह-अवरोह कविता के लिए ही जेल जाना पड़ा था, यदि सही कहा जाए तो सिर्फ आधी कविता के लिए। उस वक्त मैं बहुत दूर था, इसलिए पूरी सूचना न पाने पर भी, उस बारे में जो कुछ भी जान पाया था, उसका मर्म इस तरह है—दस-बारह साल पहले कविता लिखते वक्त भवनाथ ने यह सोचा भी नहीं था कि सुदूर भविष्य में हाथी चिह्न लेकर कोई उम्मीदवार चुनाव लड़ेगा और उसके विरोधी दल के उम्मीदवार उसकी आकांक्षाओं की दुष्करता साबित करने के लिए 'आरोह' कविता का हवाला देंगे। इसी वाद-विवाद में भवनाथ का नाम भी आया। हाथी चिह्न के उम्मीदवार ने सोचा कि यदि चुनाव में भवनाथ ने उनका पक्ष लेकर एक इश्तहार निकाल दिया, तो उसका काम आसान हो जाएगा। किंतु भवनाथ ने उनकी एक न सुनी, और अंत में झुंझलाकर उसने खुद हाथी चिह्न के उम्मीदवार को एक कड़ा-सा जवाब लिखते हुए कहा कि उसे जो भी कुछ कहना था, उसने अपनी कविता

में कह दिया है। उस बारे में उसे और कुछ भी नहीं कहना है। भवनाथ का दुर्भाग्य था कि चुनाव में हाथी ही विजयी हुआ और कुछ दिनों बाद आपातकालीन परिस्थितियों की ओट में भवनाथ को जेल जाना पड़ा।

जब मेरी मुलाकात भवनाथ से दुबारा हुई, मैं बदली होकर अपने पुराने शहर में आया था और भवनाथ जेल से छूट चुका था। मेरे सुनने में आया कि चुनाव-मुकदमे में हाथी वाले नेता के हार जाने के कारण ही भवनाथ का जेल से छूटना संभव हुआ था। हाथी के हारने की खुशी में जब विरोधी दल ने भवनाथ की कविता के बाकी आधे 'अवरोह' हिस्से को प्रयोग करना चाहा, तो भवनाथ ने उन्हें भी साफ मना कर दिया। जेल जाने पर उसकी नौकरी चली गई थी। जेल से लौटने पर बड़ी मुश्किल से उसे पुरानी नौकरी दुबारा मिली। जेल से लौटने के बाद भवनाथ काफी प्रसिद्ध हो चुका था। उसकी कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी थीं। कवियों में उसका नाम जरूर गिना जाता था।

मैंने फोन किया तो उसने मुझे कॉलेज की उसी चाय की दुकान पर मिलने को कहा। तब तक मैं अपनी नौकरी में कुछ और ऊँचे ओहदे पर पहुँच चुका था, इसलिए उस चाय की दुकान पर जाने में कुछ संकोच-सा हो रहा था। अंत में मैंने उसे अपने घर आने को कहा। किंतु भवनाथ अपने घर में अकेला है, एवं उसके घर में बातचीत करने में सहूलियत होगी, इसलिए उसने मुझे अपने घर बुलाया। शाम के वक्त, अपनी गाड़ी कुछ दूर खड़ी करके, जब छोटी-छोटी गलियों से होकर मैं पूछता-पाछता उसके घर पहुँचा, वह मेरा इंतजार कर रहा था। उसके छोटे-से कमरे में ढेर सारी किताबें इकट्ठी थीं। खाट के एक हिस्से से किताबें हटाते हुए उसने मेरे बैठने के लिए जगह बनाई। जब मैंने उसके जेल जाने के बारे में पूछा ; उसने मुझे अति सहज भाव से जवाब दिया कि जेल जाने को लेकर उसके मन में किसी भी तरह की कोई ग्लानि नहीं है। बल्कि उसने यह कहा कि जेल में उसे अपनी मानसिक स्थिति को एकाग्र करने का अवसर मिला था, जिसके कारण आज वह सोचता है कि अब और भी अच्छी कविताएँ लिख सकेगा...

मेरे लिए चाय बनाने को वह कोने में रखे स्टोव के पास गया। मैं समझ गया कि वह अपना गुजारा करने में स्वयं संपूर्ण है। मैंने यह भी गौर किया कि भवनाथ कुछ ज्यादा गंभीर हो गया है। उसके चेहरे, हाव-भाव और बातचीत से ऐसा मालूम पड़ता था मानो वह बौद्धिक-स्तर की एक ऊँचाई पर पहुँच चुका है। कॉलेज के दिनों का वह भवनाथ जो परिहास का केंद्र था, इस भवनाथ से

पूर्णतः अलग था; और अब मुझे उसकी 'आरोह-अवरोह' कविता हास्यास्पद नहीं लग रही थी। मानो उसके नए व्यक्तित्व ने उसके समूचे अतीत को भी एक नए रंग में रंग दिया था।

जब चाय का पानी खौलने लगा, मैंने भवनाथ से पूछा—क्या वाकई तुम यह सोचते हो कि शब्दों के माध्यम से क्रांति संभव है? गिलास में चाय डालते हुए उसने कहा—तुम तो साले, स्टाबलिसमेंट के कुत्ते हो, तुम क्या खाक समझोगे! भवनाथ के मुँह से अपनी सरकारी नौकरी पर ऐसा आक्षेप सुनने को मैं प्रस्तुत न था। हाथ में ली हुई किताब गुस्से से फेंकते हुए मैं उठ खड़ा हुआ।

भवनाथ ने चाय का गिलास मेरे करीब रखा और मेरा हाथ पकड़कर खाट पर बिठा दिया। निर्लिप्त भाव से हँसते हुए उसने मुझसे कहा—देखा न तुमने, दो-चार असंलग्न शब्द एक व्यक्ति को किस तरह गुस्सा करवा देते हैं? हालाँकि मुझे सहज होने में काफी समय लगा था, किंतु भवनाथ ने बहुत ही आसानी और सहजता से अपनी बात मुझ तक पहुँचा दी थी। जब वह मुझे शब्दों की क्षमता के बारे में समझाने लगा, तो एक मिनट पहले वाली बात मैं भूल गया और अब भवनाथ के प्रति मेरे मन में श्रद्धा पैदा हो गई थी।

शब्द एक अस्त्र है—भवनाथ ने मुझे समझाया—उसे जो जितनी सफलता के साथ प्रयोग कर सका, वह उतना ही क्षमताशील होगा। 'एलिस इन द वंडरलैंड' में हंप्टी डंप्टी ने क्या कहा था? जब मैं किसी शब्द का प्रयोग करता हूँ, मैं जो चाहता हूँ—शब्द वहीं सूचित करता है, न कुछ अधिक न कम ! किंतु कितने लेखक हैं जो ऐसा कह सकते हैं? मैं एक लड़की को चाहता हूँ, और उसे पत्र लिखकर अपना प्रेम जाहिर करता हूँ। परंतु मेरी लाख कोशिश के बावजूद, मेरी चिट्ठियों से उस लड़की को अब तक यह विश्वास नहीं हो पाया है कि मैं वाकई उससे प्यार करता हूँ। इससे क्या जाहिर होता है? इससे साफ जाहिर है कि शब्दों पर मेरा कोई जोर नहीं चलता...इस बात के बाद मैंने भवनाथ से पूछा—कॉलेज में पढ़ते वक्त तुम जिस लड़की को चाहते थे, उसका क्या हुआ? भवनाथ यकायक गंभीर होते हुए बोला—हाँ, तुम्हें सारी बातें बताऊँगा; पर और किसी दिन। अच्छा किया, पुरानी बात याद दिला दी—वरना आजकल कुछ याद ही नहीं आता! मेरी कविताओं में उसकी अमूर्त छाया ही पड़ती है, अब उसकी याद नहीं आती।...

उस रोज मैं वहाँ से जल्दी लौट आया। पता नहीं, उससे वह बात पूछना ठीक था या नहीं ! ऐसा लगता है, शायद उस दिन भवनाथ ने बिना कुछ खाए-पीए, उनींदे रहकर पुरानी बातों को याद किया होगा; कारण, मेरे आते वक्त तक

वह पूरी तरह अन्यमनस्क हो चुका था। मैंने यह महसूस किया कि आज कल मैं भवनाथ के प्रति अधिक श्रद्धाशील हो चला हूँ। इस बीच मैंने भवनाथ का प्रकाशित कविता-संग्रह भी लाकर पढ़ा। उसमें से उसकी पहले की कुछ कविताएँ तो मेरी समझ में आई, परंतु बाद में लिखी गई कविताएँ समझ से बाहर थीं।

कुछ रोज बाद मैंने उसके घर जाकर, उसकी कविताओं को समझने की कठिनाई के बारे में पूछा। उस दिन उसका मिजाज खूब अच्छा था, उसने यह भी कहा कि यदि तुम्हारे पास समय हो तो दो-चार घंटा बैठो, सब समझा दूँगा। मैं बैठ ही रहा था कि उसने कहा—नहीं, आज कहीं बाहर चलकर बैठते हैं। कमरे में ताला बंद करके, दो-चार अंधेरी गलियों को पार करते हुए अंत में हम दोनों जहाँ पहुँचे, वह एक सुनसान जगह थी, जहाँ एक पुराना तालाब था। वहाँ और कोई नहीं था, बल्कि चारों ओर पेड़ होने की वजह से बाहर का उजाला भी वहाँ नहीं पहुँचता था। टॉर्च की रोशनी में भवनाथ ने तालाब के किनारे एक टूटा सीमेंट का बेंच दिखाया, और उसी पर हम दोनों बैठ गए। टॉर्च बंद कर देने पर फिर से अंधेरा हो गया था। भवनाथ ने कहा— घबराओ मत, कुछ ही देर में चाँद निकल आएगा।

उसके बाद भवनाथ चुप रहा। अपने कार्यव्यस्त जीवन में मेरे लिए यह एक नया अनुभव था। मील भर दूर अपनी कार खड़ी करके, एक कवि के साथ इस तरह यहाँ तालाब के किनारे बैठकर चाँद के उगने की प्रतीक्षा करना, मेरे लिए एक अजीब-सी अनुभूति थी। इस वीराने में बैठकर मैंने भवनाथ की कविताओं के बारे में सोचा। उसकी कविताओं की असंलग्न पंक्तियाँ मेरे दिमाग में घुसने लगीं। मुझे लगा, मानो वे पूर्णतः असंलग्न नहीं हैं; उनके आपस में जुड़े होने में एक गहरा अर्थ निहित है। मैं एक ऐसी स्थिति में था, जहाँ कि घास, बरगद, चींटी और हाथी—सब स्वयं संपूर्ण और सार्थक थे।

खामोशी तोड़ते हुए भवनाथ ने बात शुरू की। अपनी कविता की जटिलता की बात न कहकर अपने पुराने प्यार की बातें कहने लगा—वह लड़की तुम्हें याद है? साइंस पढ़ती थी—भवनाथ ने मुझसे पूछा। इतने सालों बाद मैं उस लड़की को याद नहीं कर पा रहा था; किंतु मैंने अपने मन में कॉलेज के समय का एक चेहरा चुन लिया था, जो शायद उस लड़की का नहीं था। मैं उसी काल्पनिक लड़की के चेहरे के साथ भवनाथ के चेहरे को मिलाते हुए उसकी बातें सुनने लगा। उस वक्त पेड़ के ऊपर चाँद का एक छोटा-सा हिस्सा दिखने लगा था और तालाब का कुछ पानी झिलमिलाने लगा था।

कॉलेज की पढ़ाई के चार वर्षों में हमने एक-दूसरे को इतनी चिट्ठियाँ लिखी थीं, जिसका कोई ओर-छोर नहीं—भवनाथ ने कहा—यहाँ तक कि दिन में दो-दो

चिट्ठियाँ भी लिखी हैं। जब छुट्टियों में वह गाँव चली जाती थी और दो-चार दिनों तक कोई चिट्ठी नहीं आती थी, तो ऐसा लगा करता था मानो मेरी साँस रुक जाएगी और मैं मर जाऊँगा। फाइनल परीक्षा देकर उसके गाँव चले जाने के बाद कुछ दिनों तक चिट्ठी नहीं आई। मेरे लिए उसके गाँव जाकर उसका हाल-चाल पूछना उचित होगा या नहीं– यह बात सोचा ही करता था कि एक रोज उसकी चिट्ठी आई, जिसमें लिखा था कि उसकी शादी तय हो गई है। मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी। मैं खाना-पीना छोड़कर बिस्तर पर पड़े-पड़े सोचने लगा। कभी-कभी तो मन में यह आता था कि वहाँ जाकर शादी रुकवा दूँ... फिर सोचा–उसने मुझे इस बारे में कुछ न लिखकर सिर्फ शादी की सूचना भर दी है; शायद शादी कर लेना ही उसके लिए अच्छा होगा... मैं खामोश रहा, और उसने शादी कर ली।

छह महीने बाद उसकी चिट्ठी आई। उसने लिखा था–वह अब जी नहीं सकेगी; भवनाथ आकर उसे कहीं लिवा जाए! पहले तो उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे। यह जानते हुए भी कि उसकी चिट्ठी किसी दूसरे के हाथ में भी पड़ सकती है, उसने एक सतर्कतापूर्ण चिट्ठी लिखी। उसका जवाब भी कुछ ही दिनों में आ गया। उसके बाद वे दोनों पहले की तरह पत्राचार करने लगे। वह पत्र में हमेशा लिखा करती थी–मुझे आकर लिवा जाओ। पत्र में भवनाथ उसे बहुत समझाया करता था और सोच-समझकर सभी काम करने की नसीहत दिया करता था। किंतु वह लड़की सिर्फ एक ही बात दुहराया करती थी।

अंत में भवनाथ ने यह निश्चित किया कि कुछ भी हो, वह उस लड़की के पास जाएगा। उसने यह बात लड़की को लिखी भी। किंतु इस बार लड़की का पत्र आया कि वह बहुत परेशान है, क्योंकि उसके पति की तबीयत खराब है। भवनाथ ने सोचा–यदि वह व्यक्ति मर जाए तो सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। उसने यह बात लड़की को भी लिख भेजी। उसके कुछ ही दिनों बाद लड़की का पत्र आया कि उसके पति गलत दवा खाकर मर गए। साथ ही उसने यह भी लिखा था कि वह उसे बहुत-सी गुप्त बातें बताना चाहती है; जितनी जल्द हो सके, भवनाथ उससे मिले।

बहुत दिनों तक भवनाथ ने उस पत्र का कोई जवाब नहीं दिया और न ही उस लड़की से मुलाकात करने की कोई कोशिश की। उसे हर रोज इस बात की उम्मीद रहती कि उस लड़की का एक पत्र और आएगा। मगर काफी इंतजार करने के बावजूद जब उसका कोई पत्र नहीं आया, तो भवनाथ निकल पड़ा। वह समझ नहीं पा रहा था कि इतने लंबे अंतराल के बाद उस लड़की के साथ

उसकी मुलाकात किस तरह की होगी। अपरिचित शहर में अज्ञात घर के सामने पहुँचकर उसने एक बच्चे के हाथों उस लड़की को संदेशा भिजवाया। बच्चे ने वापस आकर कहा कि वह भवनाथ से नहीं मिल सकती। हो सकता है, बच्चे ने गलत सूचना दी हो—इस उम्मीद से वह वहीं खड़ा रहा, और अंत में लड़की का नाम लेकर पुकारने लगा। लड़की आई। भवनाथ ने सोचा था कि वह उसे विधवा रूप में देखेगा; किंतु लड़की ने जब दरवाजा खोला तो वह गहनों से सुसज्जित थी और उसने लाल साड़ी पहन रखी थी। भवनाथ ने घर में घुसने के लिए कदम बढ़ाया, परंतु उस लड़की ने उसकी ओर सिर्फ एक बार देखकर जोर से—"नहीं"—कहते हुए तुरंत दरवाजा बंद कर लिया।

इतना कहने के बाद भवनाथ ने चुप्पी साध ली। तब तक चाँद ऊपर आ चुका था। वह निर्जन स्थान चाँदनी में चमचम करने लगा। उस परिवेश के साथ भवनाथ की कहानी ने एक इंद्रजालिक वातावरण बना डाला। मानो उस कहानी के पात्रों के साथ भवनाथ और मुझे याद आ रही लड़की का कोई संबंध न था। मैं तो अपने मन में एक काल्पनिक कहानी की पुनरावृत्ति ही देख रहा था।

उस इंद्रजाल को एकाएक भंग करते हुए भवनाथ ने कहा—तुम मुझसे कविता की जटिलता की बात पूछ रहे थे न? मान लो, मैंने तुमसे अभी जो कहानी कही है, इसी को लें—इसके कथानक के सभी पात्रों को निकाल दिया जाए...

संभवतः और किसी वक्त भवनाथ की यह बात मुझे असंलग्न और अतार्किक लगी होती; किंतु मैंने जान लिया था कि यह बात संभव है; अतएव मैंने भवनाथ, उस लड़की, उसके पति और उसके संसार को उस कहानी से निकाल दिया।

भवनाथ ने कहा—ठीक है; अब उसमें से सारे संवाद, सारी भावुकता को निकाल दिया जाए।

मैं आँखें बंद करके उन सबों को भूल गया। अब क्या बच गया? क्या? केवल थोड़ा दुःख, थोड़ा अंतर्दाह, और कुछ समझे...!

खड़े होते हुए भवनाथ ने कहा—चलो अब चलें! और उस चाँदनी बिखरे निर्जन द्वीप से बाहर आते वक्त भवनाथ ने कहा—अब समझे, कविता क्या है? जो कुछ भी शेष बच गया, वही कविता है!

गाड़ी चलाकर घर लौटते वक्त मैं यह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि जो कहानी भवनाथ ने कही, वह उसकी आप बीती घटना है या मुझे कविता की

जटिलता समझाने के लिए एक उदाहरण मात्र था! खैर, उस रात मैंने भवनाथ का कविता-संग्रह खोलकर पढ़ा एवं यह महसूस किया कि उसकी प्रत्येक कविता का कुछ न कुछ तात्पर्य था और मैं उसकी सभी कविताएँ समझ रहा था।

उसके बाद मैं जब तक अपने शहर में रहा, बीच-बीच में भवनाथ से मिलता रहा। कोई नई कविता लिखने पर भवनाथ सबसे पहले मुझे दिखाता और मैं उसका रसास्वादन करके खुश होता। मेरा तबादला दूसरे शहर में हो जाने पर भी, बीच-बीच में भवनाथ मुझे डाक से चिट्ठियाँ और अपनी नई-नई कविताएँ भेजा करता था।

बीच में एक बार, कई दिनों तक उसकी कोई चिट्ठी न आने पर परेशान होकर मैंने उसे एक चिट्ठी लिखी। चिट्ठी का जवाब बहुत दिनों बाद आया। पत्र के साथ जो कविता आई थी, उसे मैंने पहले पढ़ा। अजीब किस्म की कविता थी—ऐसे कई अक्षर-समूहों के शब्द, जिनका कोई अर्थ नहीं, किसी शब्द का किसी शब्द से कोई संबंध नहीं—सिर्फ सुनने में मधुर कुछ शब्द! और पत्र में भवनाथ ने लिखा था—सुनकर तुम खुश होगे कि मैं फिर प्यार में पड़ गया हूँ। हाल ही में मैंने पढ़ा है कि अमेरिका के वैज्ञानिक, अनुसंधान करने के बाद इस सिद्धांत पर पहुँचे है कि दो लोगों के बीच भावों का आदान-प्रदान सिर्फ सात प्रतिशत शब्दों के माध्यम से, अड़तीस प्रतिशत स्वर के तथा बाकी पचपन प्रतिशत चेहरे की भाव-भंगिमाओं के माध्यम से होता है...यह बात पढ़कर मैं एकाएक समझ नहीं पाया कि यह कैसा प्यार है? क्या उसी पहले वाली लड़की के साथ? या पहले की घटना की तरह यह भी एक संदेह की चीज है? अब भवनाथ की कविताएँ मुझे कहीं नहीं दिखती थीं। उसने मुझे पत्र लिखना भी बंद कर दिया था। इसी बीच किसी ने मुझे बतलाया कि भवनाथ पागल हो गया है।...

किंतु मैं जानता था, भवनाथ स्वस्थ मानसिकता के साथ अपने उसी पुराने कमरे में है, और जब मैं उसके पास पहुँचूँगा तो देखूँगा—उसने अपने शब्दकोश एक ओर सरकाकर रख दिए हैं, और एक टेप-रिकार्डर के सामने बैठकर उसके साथ गंभीर बातचीत में व्यस्त है।

मृत्युबोध

मौत दो तरह की हो सकती है—एक तो अनचाही मौत, जो कि अज्ञानियों की मौत है, जो कुछ लोगों के लिए बार-बार होती है। ज्ञानियों की मौत स्वेच्छाकृत मौत है, जो मात्र एक ही बार होती है। जब साधारण जीवन-यापन, वह किसी भी कारण से क्यों न हो, संभव नहीं हो पाता तो ज्ञानी अपनी इच्छा से मौत का सामना करता है। वह अपनी सारी कामनाओं को मन से निकाल फेंकता है, और स्वयं को संपूर्ण सांसारिक बंधनों से मुक्त कर लेता है। उसके बाद वह खाना-पीना छोड़कर अपने शरीर को विलीन होने के लिए छोड़ देता है। उसकी आत्मा शरीर से अलग हो जाती है। विभिन्न कर्म, जो आत्मा से जुड़े होते हैं, आत्मा उन सभी बंधनों से खुद को मुक्त कर लेती है। यह जैन सूत्र में लिखित सल्लेखना का तत्त्व है।

अतीत में, 13 अगस्त, 1973 को इस सल्लेखना की शपथ सुधर्मी सागर मुनि ने ली थी। पहले उन्होंने खाना छोड़ दिया और 9 सितंबर को अंतिम बार जल-स्पर्श किया। शपथ लेने के 42 दिन बाद 24 सितंबर को उनका देहांत हो गया।

सल्लेखना शपथ में तीन तरह की मौत का उल्लेख किया गया है—भक्त प्रत्याख्यात मौत, इंगित मौत एवं पादपयोगमन मौत। शायद तुम बोर होने लगी हो, नर्स! मेरी ओर देखो, शुरू-शुरू में मैं भी जब यह विषय पढ़ रहा था, मुझे भी ऊब होने लगी थी। किंतु आहिस्ता-आहिस्ता मैं इस विषय में इतना डूब गया कि बार-बार पढ़ने के बावजूद इन बातों से ऊब नहीं हुई। खैर, छोड़ो! अब मैं किसी और के बारे में कहता हूँ या तुम्हीं अपने ब्वायफ्रेंड के बारे में कहो। देखा, तुम्हारे यार का नाम लेते ही तुम्हारे चेहरे की ऊब अचानक किस तरह उड़ गई—ठीक मौत से जिंदगी के परिवर्तन की तरह—है न!

आज मैं ठीक-ठाक हूँ और मेरी मानसिक स्थिति भी पहले से अच्छी है। शायद तुम्हें विश्वास नहीं होता! आज तक मैंने तुमसे इधर-उधर की कितनी ही अंटशंट

बातें कहीं होंगी और शायद तुम सोचती होगी कि मेरा दिमाग कुछ फिर गया है। किंतु मेरा मस्तिष्क पूरी तरह स्वस्थ है और मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं अपनी पुरानी अवस्था में लौट आया हूँ। आज तुम्हें मेरी बात सुननी ही होगी। मैंने क्या सारी बातें तुम्हें पहले बताई हैं? नहीं। आज तुमसे सारी बातें अच्छी तरह फिर से कहूँगा। मेरी कमीज की जेब से वह पर्स दोगी? देखो, मेरे कार्ड में क्या लिखा है—
सनातन पंडित
1938-1980

हाँ, सन् 1980 भी बीत गया; लेकिन मैं अभी तक जीवित हूँ और उस लामा की भविष्यवाणी झूठी निकली। करीब पंद्रह साल पहले बनारस में उस लामा से मेरी मुलाकात हुई थी। तिब्बती लामा, लासा से कौशांबी जाते वक्त रास्ते में बनारस में कुछ दिनों तक ठहरा था वह। एक दिन बनारस घूमते वक्त मैंने उस लामा को एक पेड़ के नीचे बैठे देखा। गर्मी के दिनों में भी वह लामा ऊनी पोशाक पहने था, और उसके करीब उसका एक भारतीय चेला बैठा था। मैं लामा के पास जाकर बैठ गया। लामा कोई भी भारतीय भाषा नहीं समझता था; उसने मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। मैंने कहा, "मैं अपना भविष्य जानना चाहता हूँ।"

लामा के करीब बैठे व्यक्ति ने कहा, "नहीं, वे ज्योतिषी नहीं हैं।"

मुझे इस बात से संतोष नहीं हुआ, क्योंकि लामा अभी भी हँस रहा था। मेरे बार-बार पूछने पर लामा ने अपनी भाषा में, करीब बैठे व्यक्ति से कुछ कहा और उस व्यक्ति ने मुझसे कहा—"17 दिसंबर 1980 ।"

उसके बाद वह लामा एकाएक गंभीर हो गया, और वह व्यक्ति दूसरी ओर मुँह फेरकर बैठ गया। मैं समझ गया कि उनसे और प्रश्न करना निरर्थक है। भविष्य की इस तारीख को हाथ में लिए मैं होटल लौट आया।

वास्तव में कहा जाए तो ज्योतिषी और सामुद्रिक विद्या में मेरा विश्वास उस समय जमा, जब मैंने अपनी दुकान खोली। उससे पहले मैं खूब साहसी था—भूत-प्रेत, भगवान, भाग्य, पुनर्जन्म इत्यादि किसी से नहीं डरता था—यहाँ तक कि मौत से भी नहीं। किसी के मरने पर मेरी आँखों से आँसू नहीं निकलते थे। मैं सोचता था—मौत कुछ नहीं है और मौत के बाद भी कुछ नहीं है। सभी चीजों को मैं निर्लिप्त रूप से स्वीकार कर लेता था। किंतु जब मुझ पर सारे सांसारिक दायित्व का बोझ आ गिरा, तब मैंने भविष्य जानना चाहा।

और भविष्य जानना ही अपनी मौत की तारीख जानना है। कारण, यह जीवन एक परिसमाप्ति की प्रस्तुति मात्र है। ज्ञात हो, अज्ञात हो, मनुष्य इसी प्रस्तुति

में जुटा रहता है। अंतिम कर्ज चुकाना ही मौत है। किंतु तुम कहोगी मौत कब आएगी और किस जगह आएगी, कौन जानता है? बगदाद के बाजार में व्यापारी के शरीर को जिस बुढ़िया ने धक्का दिया, वह खुद मौत थी एवं उसके चेहरे पर विस्मय छाया हुआ था। मौत से बचने के लिए वह व्यापारी घोड़ा दौड़ाता हुआ सामारा चला गया; लेकिन सामारा की सराय में बुढ़िया उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। सामारा में ही उनकी मुलाकात होनी थी।

मेरी इतनी सारी बातें कहने का आशय यह है नर्स कि मनुष्य सिर्फ यहीं असहाय है। वह अपनी मौत की तारीख खुद तय नहीं कर सकता। किंतु मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि मैं 17 दिसंबर 1980, बुधवार को शरीर त्याग दूँगा और इसके लिए मैंने अपने आपको पूरी तरह से तैयार भी कर लिया था; यद्यपि सन् 1980 अभी कई साल बाद आने वाला था। मैं यह जानता था कि जिस शरीर से इस पृथ्वी पर मेरी सबसे ज्यादा घनिष्ठता है, और जिसके साथ मैं इतने दिन गुजार चुका हूँ, उसे एक दिन त्यागना है। मुझे यह भी मालूम था कि इस शरीर को त्यागने पर मैं मुक्त हो जाऊँगा—दुःख, प्रेम, विश्वासघात से; उम्र, दारिद्र्य और दर्द के उत्पीड़न से।

मेरे दवा खाने का वक्त हो गया? अच्छी बात है, दो! इसमें नींद की दवा भी है न? यदि देखा जाए तो नींद भी एक छोटी-मोटी मौत ही है। नींद लुभावनी है; लेकिन मौत उससे भी ज्यादा लुभावनी।

मुझे और कितने दिनों तक यहाँ रहना होगा, नर्स? मैं सोचता हूँ, जल्द ही लौट जाऊँ। लेकिन फिर सोचता हूँ कि मैं तो सब कुछ बंद कर आया हूँ; मुझे फिर से नई जिंदगी शुरू करनी होगी। तुम कह सकती हो कि इसमें घबराने की क्या बात है? अरे, तुम तो जाने लगी। मैंने तो अभी तक तुम्हें सारी बातें बताईं ही नहीं। नहीं, इस बार तुम्हें सारी बातें ठीक-ठीक समझाऊँगा।...

किंतु क्या ये सब बातें अच्छी तरह समझाकर कही जा सकती हैं? क्या मैंने स्वयं अपने आप को समझा है? अथवा क्या प्रत्येक चीजों का अपना एक स्वरूप है? देखो, मेरे नाम को ही ले लो! पंडित भी मेरा खुद का नाम नहीं है। मेरी किताबों की दुकान होने के कारण तथा लोगों को हमेशा अपने अल्प ज्ञान से कुछ-कुछ समझाते रहने की वजह से मुझे यह नाम दिया गया था और मैंने भी इस नाम को स्वीकार लिया था। सब मेरा वास्तविक नाम भूल गए। जैसे दीनानाथ के वास्तविक नाम की जगह हम उन्हें सिर्फ दीना मास्टर के नाम से ही जानते थे।

देखो, तुम जाने को उतावली हो, फिर भी मैं अपनी बात तुम्हें ठीक से कह नहीं पा रहा हूँ। नहीं, इस बार मैं एकदम शुरू से शुरू करता हूँ—अपने जन्म से। लेकिन अपने जन्म की बात क्या कोई जानता है? हर इनसान के लिए उसका जन्म उतना ही विस्मयपूर्ण है, जितनी उसकी मौत। बहरहाल, जब से मैंने होश संभाला, अपने आपको चाचा के पास पाया। आगे चलकर मालूम हुआ कि मेरे माँ-बाप मर जाने के कारण चाचा मेरा पालन-पोषण कर रहे थे। उनके कई बच्चे थे। चाचा छोटी-सी सरकारी नौकरी करते थे और बहुत ही शांत स्वभाव के थे। किंतु चाची खूब गुस्सैल स्वभाव की थीं और हमेशा सबको डाँटती रहती थीं। अब मैं समझ गया हूँ कि अपने कमजोर स्वास्थ्य के कारण ही वे चिड़चिड़े स्वभाव की थीं। बात-बात पर चाची मुझे डांटती थीं और इसीलिए मैं कहूँगा कि मेरा बचपन अशांति में ही बीता था।

कभी-कभी मैं यह सोचा करता था कि मैं उनका अपना बेटा नहीं हूँ, इसलिए वे मुझे इतना डाँटती हैं। किंतु यदि उस समय मैंने और थोड़ा-सा सोचा होता तो समझ जाता कि वे अपने बच्चों को भी उतना ही डाँटती थीं। घर की अशांति की वजह से स्कूल में भी मेरा मन पढ़ाई में ठीक से नहीं लगता था। एक दिन उसी तरह की किसी अप्रिय घटना के बाद मैं चाचा का घर छोड़कर चला आया।

दिन भर इधर-उधर भटकने के बाद, शाम को मैं नगर निगम मार्केट के पास आकर खड़ा था। किसी का सामान भरा ट्रक आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। आस-पास कोई कुली नहीं था। दुकानदार ने आकर इधर-उधर निगाह दौड़ाते हुए कहा, "ऐ लड़के, देख क्या रहा है, ट्रक से सामान उतार!"

बिना कुछ सोचे ही मैं ट्रक से सामान उतारने में जुट गया। सौभाग्य से उस दुकानदार को एक आदमी की जरूरत भी थी। जिस दिन घर से निकला, उसी दिन मुझे नौकरी मिल गई। मैं उसी दुकान में रहने लगा। कुछ रोज बाद चाचा मुझे ढूढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे; किंतु मैंने उन्हें घर लौटने से साफ इनकार कर दिया।

नौकरी शुरू करने के कुछ ही वर्षों बाद, नगर निगम के खुले मैदान में बैठकर मैं अपनी एक निजी बिसातखाने की दुकान लगाने लगा। इस बीच कई बार चाचा आकर घर लौट चलने को कहते रहे, किंतु मैं नहीं गया। आहिस्ता-आहिस्ता मैं अपनी दुकान बड़ी करने में लग गया। इसी बीच मेरा परिचय दीना मास्टर से हुआ। इसी खुले मैदान में ही दीना मास्टर की किताबों की दुकान थी। दीना मास्टर खादी पहनते थे, खूब शांत और भद्र स्वभाव के थे, सबसे अच्छा संबंध रखते थे। कभी किसी को कोई दिक्कत होती तो वह दीना मास्टर के पास जाता था। दीना मास्टर उसकी मदद भी करते थे!

जिस दिन नगर निगम के लोग आकर हम लोगों से पैसा मांगने लगे, हम सब खुले में दुकान लगाने वाले मिलकर दीना मास्टर के पास गए। दीना मास्टर बोले, "नहीं, हम लोग रिश्वत नहीं देंगे।" अंत में नगर निगम वालों ने हम लोगों पर मुकदमा कर दिया। पुलिस आई। दीना मास्टर के कहे अनुसार हमने पुलिस को रोका। लेकिन पुलिस जबरदस्ती हम सबकी दुकान उजाड़ गई; हम लोगों को जेल भेज दिया गया। जेल में हम पूरे अट्ठाईस दिनों तक रहे। वह समय हम लोगों को अखर जाता, यदि दीना मास्टर हमारे साथ न होते।

दीना मास्टर पहले भी आंदोलन के समय जेल जा चुके थे और जेल के अंदर भी मनुष्य किस तरह इज्जत के साथ रहता है, वे इसका उदाहरण थे। यद्यपि हम लोग थोड़ी-थोड़ी-सी बातों में घबरा जाते थे, मगर दीना मास्टर के शांत स्वभाव पर कोई असर नहीं पड़ता था। यद्यपि उन पर उनके परिवार की ढेर सारी जिम्मेदारियाँ थीं, मगर वे तिल भर भी विचलित नहीं थे।

'इस दुनिया के बाहर भी ज्ञान की एक संपूर्ण दुनिया है', यह बात मैंने दीना मास्टर की संगति में आकर जानी। जेल जाते वक्त दीना मास्टर अपनी दुकान से कुछ किताबें थैले में भर लाए थे। उनमें से उन्होंने सबसे पहले मुझे संपूर्ण महाभारत पढ़ने को दी थी। यद्यपि महाभारत की थोड़ी-बहुत बातें मैं पहले से ही जानता था, फिर भी जेल के बंद परिवेश में महाभारत की कहानियों ने मुझे एक नया अनुभव दिया। जहाँ कहीं भी समझने में कोई दिक्कत होती, मैं दीना मास्टर के पास चला जाता था; और वे मुझे खूब अच्छी तरह समझा देते थे। उन्हीं के प्रभाव से मुझमें पढ़ाई के प्रति एक अजीब-सा लगाव पैदा हुआ। उसके बाद मैं सभी चीजें पढ़ने लगा, जो भी किताब हाथ में पड़ गई। कहा जाए तो मुझ जैसे अकेले व्यक्ति के लिए किताबों की दुनिया ही एक पलायनवादी का देश हो गया।

क्या फिर दवा खाने का वक्त हो गया? समय कितनी जल्द बीत जाता है! देखते-देखते सुबह दोपहर होकर हठात् संध्या हो आती है। कल सुबह बारिश हो रही थी। आज देखो, सुबह किस तरह सुनहरी धूप से चमचमा रही है। संभव है इंद्रधनुष भी निकले! फिर कल की सुबह कैसी होगी, कौन कह सकता है?

मैं तुम्हें वचन देता हूँ नर्स, मैं तुम्हारी हर बात मानकर चलूँगा, सही समय पर दवा खाऊँगा! कल सुबह कुछ और स्वस्थ हो गया होऊँगा, जिससे कल की सुबह और भी सुंदर लगे। तुम सिर्फ दो मिनट बैठो नर्स! मैं तुम्हें अपनी दो बातें संक्षेप में बताता हूँ। कहा जाता है कि डरपोक व्यक्ति बारंबार मौत को गले लगाता है। मैं अपने-आप को साहसी मानता हूँ। इसके मायने, क्या मैंने बारंबार जीवन को गले

लगाया था? क्या मेरा जीवन कई छोटे-छोटे जीवनों का योग था। मेरी बिसातखाने की दुकान, मेरा जेल जाना, मेरा विवाह—क्या ये सब मेरे लिए एक-एक स्वतंत्र जीवन थे?...

जेल से लौटने के बाद किताबों की दुकान खोलने की बात तो तुम्हें मैंने बताई थी न? हम सबने अपनी भूल की माफी मांगकर; भविष्य में अच्छा व्यवहार करने का बांड लिखकर जेल से छुट्टी पा ली। सिर्फ दीना मास्टर अंदर रह गए, क्योंकि उन्होंने कागज पर दस्तखत नहीं किया था। पुनः नगर निगम के मैदान में दुकानें लगीं। इस बार नगर निगम ने इन दुकानों को स्वीकृति दे दी। दीना मास्टर के बदले इस बार किताबों की दुकान मेरी थी। व्यापार अच्छा चला। कुछ दिनों तक जेल जाकर हम दीना मास्टर से मुलाकात करते रहे और उनके परिवार के बारे में पूछते रहे। उनकी पत्नी किसी के घर नौकरानी का काम करने लगी थीं और उनके बच्चों का नाम स्कूल से कट गया था। लेकिन दीना मास्टर पहले जैसे ही थे, और मुकदमे की विभिन्न तारीखों के इंतजार में जेल में ही रहते थे। उन पर पुलिस का रास्ता रोकने आदि विभिन्न दफाओं में मुकदमा किया गया था। किंतु वे अटल थे।

धीरे-धीरे दीना मास्टर और उनके परिवार से हम लोगों का संपर्क कम होने लगा।

एक दिन सूचना मिली कि दीना मास्टर की पत्नी शहर छोड़कर अपने गाँव चली गई। बहुत दिनों के बाद वह मुकदमा भी वापस ले लिया गया और दीना मास्टर भी जेल से छूटकर गाँव चले गए। उनसे मेरी मुलाकात नहीं हो सकी। एक बार सोचा था कि उनके गाँव का पता लगाकर उनसे मिल आऊँ; किंतु वह भी नहीं हो पाया। दुकान की व्यस्तता से समय ही नहीं निकाल पाया। बहुत दिनों के बाद किसी ने आकर बताया कि दीना मास्टर की मृत्यु हो गई।

कई बार मुझे दीना मास्टर का खयाल आता रहा। मैंने जीवन में जो कुछ भी पाया है, सब उन्हीं के आशीर्वाद से। वे मुझे एक संकीर्ण जगह से उठाकर एक व्यापक दुनिया में पहुँचा गए थे। सच कहा जाए तो मेरे जीवन पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके मरने की खबर पाकर मुझे कई दिनों तक अजीब-सा लगता रहा, साथ ही इस बात का पछतावा भी होता रहा कि मैं उनके लिए कुछ न कर सका।

दीना मास्टर का मर जाना, मेरे लिए मौत का पहला निकट अनुभव था। मैं उनकी मौत होने को सहज ही स्वीकार नहीं कर पाया था। कई बार मुझे ऐसा लगता था कि एक दिन सुबह अचानक दीना मास्टर मेरी दुकान पर आ पहुँचेंगे, और अपने थैले से कुछ और किताबें निकालकर मुझे देंगे। किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया, दीना मास्टर की याद धुंधली होती चली गई।

इसी बीच मुझे अपनी चाची की मृत्यु की सूचना मिली, और मैं कई वर्षों बाद चाचा के घर गया। चाचा के जिस घर में मैंने अपना बचपन बिताया था, आज वह मेरे लिए पूरी तरह नया था। आज सारे रिश्ते दिखावटी बन गए थे। उनके घर से लौटते वक्त, बीती बातें याद करने पर मुझे लगा कि चाची वाकई मुझे चाहती थीं; उन्हें अपने बच्चों से जितना प्यार था, मुझसे भी उतना ही प्यार था। इस उपलब्धि के बाद मुझे दिली तसल्ली मिली, और मेरे दिल में अपनी किशोरावस्था के प्रति जो आक्रोश था, वह दूर हो गया।

मेरी किताबों की दुकान अच्छी तरह चलने लगी। मैं विभिन्न प्रकार की किताबें लाकर दुकान में रखने लगा। अक्सर स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी दुकान पर आकर नई-नई किताबों को उलट-पलटकर देखने लगे। उनकी परिस्थिति समझकर मैंने किताबें उधार देने की व्यवस्था भी कर दी। इस तरह की व्यवस्था हमारे शहर में बिलकुल नई थी। किताबें उधार देने की वजह से धीरे-धीरे मेरी दुकान खूब प्रसिद्ध हो गई, साथ ही छात्र-छात्राओं का एक अड्डा भी बन गई। मैं स्वयं भी ढेरों किताबें पढ़ने लगा, और किताब खरीदनेवाले लड़के मुझसे किताबों पर चर्चा भी करने लगे। हालाँकि मैंने कॉलेज में पढ़ाई नहीं की थी, फिर भी अपनी कोशिश से विभिन्न विषयों को पढ़ चुका था। इसी बीच सभी लोग मुझे पंडित कहकर बुलाने लगे, और मैंने भी इस नाम को स्वीकार कर लिया।

आज तो तुम्हें हँसना ही होगा नर्स! मुझे देखो, मौत के मुँह से लौटकर भी मैं कितना खुश हूँ। जिस दिन मैंने तुम्हें पहली बार देखा था, मैं जानता था कि तुम्हारा नाम मरियम होगा। और तुम्हारे बिना बताए ही मैं जानता हूँ कि तुम्हारे ब्वॉयफ्रेंड का नाम जोसेफ है। जोसेफ का खत नहीं आया है, इसीलिए तुम उदास हो। किंतु देखो, आज का दिन कितना सुहावना है! तुम्हारी चिट्ठी जरूर आएगी। ऐसा सुहावना दिन व्यर्थ नहीं जा सकता...

आज मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ न? और कितने दिन लगेंगे मुझे लौटकर जाने में? तुम मेरी इतनी सेवा कर चुकी हो, मैं तुम्हारा ऋणी हो चुका हूँ; किंतु जाने से पहले मैं अपनी सारी बातें तुम्हें बताऊँगा। तुम मुझे अपनी शादी का कार्ड

भेजोगी ना? देखना, मैं जहाँ कहीं भी होऊँगा, तुम्हारी शादी में जरूर पहुँचूँगा! मैं जानता हूँ, तुम्हें गुलाब बहुत अच्छा लगता है। मैं तुम्हारे लिए सबसे सुंदर गुलाब लाऊँगा...

मैंने तुम्हें अपनी शादी की बात बतलायी थी न? साल-भर के संक्षिप्त दांपत्य जीवन के बारे में भला क्या कहा जा सकता है! एक दिन सुबह दुकान पर बैठा था, चाचा आ पहुँचे। इन कुछ वर्षों में वे और बुढ़ा गए थे। वे मेरे विवाह का रिश्ता लेकर आए थे। मेरी उम्र काफी हो जाने पर भी, मैंने शादी की बात अब तक नहीं सोची थी।

चाचा की बात मानकर मैंने शादी कर ली। मैं नहीं जानता था कि जिससे मेरी शादी हो रही है, उसकी उम्र मुझसे बहुत कम है और यह वही लड़की है, जो चुपचाप मेरी दुकान से कविता की किताबें उधार ले जाया करती थी।

मैं नहीं जानता था कि वैवाहिक जीवन आदमी को इतनी पूर्णता दे सकता है। मुझे लगा कि मेरा जीवन संपूर्ण हो गया है। मेरा कारोबार तेजी से चलने लगा। मैंने दुकान में नौकर रखा। बड़ा-सा घर किराए पर लेकर रहने लगा। मेरा जीवन सुचरिता के चारों ओर केंद्रित हो गया। अब मुझे जिंदगी से कुछ नहीं चाहिए था, कारण, मुझे सब कुछ मिल गया था।

मगर साल-भर में ही मेरे जीवन के सुख का अध्याय यकायक समाप्त हो गया। मौत से मेरा पहले से कोई घनिष्ठ परिचय नहीं था। चाची मरी थी, तब मुझे कुछ भी नहीं लगा था। किंतु सुचरिता मेरे सामने से धीरे-धीरे चली गई, मेरी ही गोद में सिर रखकर। प्रसव के बाद ही सारी जटिलताएँ शुरू हुईं। नवजात शिशु ही सुचरिता की मौत का कारण हुआ। सुचरिता के बिस्तर के पास बैठकर, उसे धीरे-धीरे मुझे छोड़कर दूर जाते हुए देखते वक्त, मैं सिर्फ एक ही बात सोच रहा था—यह बच्चा भी मर जाए! आखिर वही हुआ। मरघट में सुचरिता का अठारह साल का शरीर, अपनी सुख-शांति, भविष्य, दुनिया की सारी सुंदर सुबहों और शामों को चिता पर रखकर लौटने के कुछ दिनों बाद ही वह बच्चा भी मर गया। सुचरिता से जुड़े मेरे सारे बंधन कट गए।

किंतु बंधन क्या इतनी आसानी से कटते हैं! मेरे जीवन का सब कुछ बदल गया। मैं स्वयं सुचरिता के पास जाना चाहा। अब मैं मरने के अधिकार के बारे में पढ़ने लगा। कैलिफोर्निया के 'हेमूलक्' और लंदन के 'एकजिट' संस्थाओं से पत्राचार किया। अंत में मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि अपनी जान लेने का अधिकार मुझे है, और मैं स्वेच्छा से अपनी मौत अपनाऊँगा।

उसी वक्त मुझे उस तिब्बती लामा की भी बात याद आई—17 दिसंबर। अब मैंने अपना जन्मदिन मनाने के बजाय मृत्यु-दिन मनाना शुरू कर दिया। मेरी उम्र मेरे जन्मदिन की तारीख से कितनी हो गई है, मैं यह नहीं सोचा करता था; मैं सोचा करता था कि मृत्यु की तारीख से मेरी उम्र और कितनी बची है। इसके लिए कोई-कोई तो मेरा मजाक भी उड़ाते थे। किंतु अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद से मैंने सारे सामाजिक बंधनों को काट डाला था और किसी की किसी भी बात पर ध्यान नहीं देता था।

यद्यपि मेरी मृत्यु के कुछ दिन बाकी थे, फिर भी मैं अपने सारे संपर्क काटने लगा। हालाँकि यह केवल एक मानसिक स्थिति मात्र थी। कारण कुछ भी क्यों न हो, मनुष्य को जीना पड़ता है। जीने की जिम्मेदारी से उसकी मुक्ति नहीं है। मुझे अपनी दुकान चलानी पड़ी, और आखिर में कुछ लोगों से संपर्क भी रखना पड़ा। इन दिनों मैं कुछ गंभीर हो गया था। लोगों के साथ कम बातचीत करने लगा था। नतीजा यह हुआ कि मेरे दोस्त कम हो गए।

अब मैं अपना समय मौत के बारे में जानने के लिए लगाने लगा। इसी वक्त मैंने सल्लेखना के बारे में पढ़ा और एकजिट संस्था से प्राप्त लेखों से मौत के बारे में जाना। मैं अपनी मौत किस तरह अपनाऊँगा, इस बारे में मेरी एक निर्दिष्ट धारणा बन चुकी थी। मैं कई बार अपनी वसीयत लिखने की सोचकर भी अंत में लिख नहीं पाया था। मेरे पास जो भी कुछ था, सब दीना मास्टर के परिवार के नाम लिखने की मेरी इच्छा थी; लेकिन काफी कोशिश करने के बावजूद मैं उनका पता-ठिकाना नहीं पा सका। उसके बाद मैंने अपनी संपत्ति के भविष्य के बारे में कभी कुछ नहीं सोचा।

अरे तुम रो रही हो क्या नर्स? पास की कोठरी में वह औरत मर गई, इसलिए? किंतु इंसान असीम शक्ति और सहनशीलता का केंद्र है। उस औरत का पति और उसके बच्चे सभी स्वीकार कर लेंगे, उसकी मौत। दुनिया अंतहीन संभावनाओं से भरी है। जिंदगी फिर से सब को घेर लेगी। तुम्हें विश्वास नहीं होता न? देखो, मैं मौत को छूकर लौट आया हूँ। जब मैंने मरना निश्चित किया—पहले मेरी इच्छा की मौत हो गई, उसके बाद सुख की मौत, उसके बाद भय की मौत, दुःख की मौत। लेकिन मौत को छूकर लौट आने के बाद क्या हुआ, जानती हो? अब मुझमें भय नहीं है, इच्छा नहीं है, दुःख नहीं है। सिर्फ एक अपरिहार्य जीवन-शक्ति है। घटनाओं के प्रवाह में जिंदगी फिर से मग्न हो जाएगी...

मेरी ही बात ले लो! यदि मैं आत्महत्या की कोशिश न करता, तो क्या तुमसे मुलाकात हो पाती? कल मेरे लिए क्या लाओगी? कैसा दिन होगा? यह बात सोचने पर फिलहाल मुझे बहुत कुछ दिखलाई देता है—कई नए चेहरे, कई नई जगहें, कई नई अनुभूतियाँ—जिनका कोई अंत नहीं, विकल्प नहीं। मैं जानता हूँ कि मुझे मरने का जितना अधिकार है; जीने का भी उतना ही अधिकार है। जिंदगी की कोई भी सामयिक अनुभूति मुझसे मेरा यह अधिकार नहीं छीन सकती।

इसीलिए मैंने मौत को अस्वीकार कर दिया। नींद की दवा मेरी गहरी निद्रा को महानिद्रा में बदले, इससे पहले ही मैंने अपना सिद्धांत त्याग दिया। मेरे बेबस हाथ ने मेरे इस निर्णय को मानकर टेलीफोन का रिसीवर उठा लिया। मैं अपने होटल के कमरे से निकलकर अस्पताल की खाट पर सो गया।

अब मेरे हाथ नहीं थे; दोनों हाथ डैनों में बदल गए थे। मैं कमरे की छत के पास मंडरा रहा था। अंधेरा क्रमशः छँट गया और मुझे सब साफ-साफ दिखने लगा—नीचे सोया हुआ व्यक्ति स्वयं मैं था। उसके बाद मैंने सुचरिता को पुनः देखा—वह मेरे इर्द-गिर्द मँडरा रही थी। मैं ऐसे रास्तों से होकर गुजर रहा था, जहाँ और कोई नहीं था। और मैं एकाएक जेलखाने में घुस गया। वहाँ चिता जल रही थी, और चिता में से चाची मेरी ओर देखकर हँस रही थी। अब लोगों की भीड़ में दीना मास्टर नहीं थे; किंतु वह व्यक्ति था, जिसे दीना मास्टर मृत्युदंड से बचाने की कोशिश कर रहे थे। नवजात शिशु मेरी ओर हाथ बढ़ा रहा था। नगर निगम की सभी दुकानें तोड़-ताड़कर पुलिस खड़ी थी। किंतु उनके पीछे नई दुकानें अक्षुण्ण खड़ी थीं। लड़के उड़ते हुए आकर मेरी दुकान से किताबें उठाकर देखते थे और मैं सुचरिता के हाथ में कविता की नई किताब दे रहा था...

सुचरिता फ्रॉक पहने खड़ी थी। सुचरिता मुस्करा रही थी। सुचरिता की माँग में सिंदूर था। सुचरिता सिनेमा हाल में मेरे हाथ पर अपना हाथ रख रही थी। सुचरिता गर्भवती थी। सुचरिता सुनहरी धूप में चमकते इंद्रधनुष पर लेटी थी। सुचरिता अस्पताल के फाटक के पास नर्स की पोशाक पहने खड़ी थी...

जिंदगी भी दो तरह की हो सकती है—एक अनचाही जिंदगी, जो अज्ञानियों की जिंदगी है; ज्ञानियों की जिंदगी स्वेच्छाकृत जिंदगी है। तुम शायद बोर हो रही हो, नर्स! मेरी ओर देखो। अरे, तुम तो मरियम नहीं हो, नई नर्स हो... किंतु मैं तुम्हारा भी नाम जानता हूँ...

सत्य-असत्य

पद्मधर ने हाथ उठाकर दुबारा घड़ी देखी। उसने जिसे आधा घंटा समझा था वास्तव में वह सिर्फ सात मिनट था। मानो समय उसके साथ विश्वासघात करके खूब धीर मंथर गति से चल रहा था। उसने अपने वकील की ओर देखा, किंतु इस बीच वह भी कहीं और चला गया था। उसके सामने कोर्ट की गतिविधियाँ पहले की तरह चल रही थीं और उस गवाह की गवाही अब तक पूरी नहीं हुई थी।

यह पद्मधर की तीसरी तारीख थी। मुकदमें का फैसला पहले से ही मालूम था। उसके वकील ने उससे कहा था कि उसे वह किराए का मकान खाली तो करना ही पड़ेगा, लेकिन वह मुकदमा करके इस घर खाली करने के समय को दो-तीन साल आगे खींच सकता है। पद्मधर यह भी जानता था कि दो-तीन साल से पहले ही उसका इस शहर से तबादला हो गया होगा और फिर उसे इस मकान की जरूरत ही नहीं होगी। यह सब जानने के बावजूद पद्मधर को इस न्याय-निर्णय के विभिन्न चरणों से गुजरना पड़ रहा था।

मुकदमें को कितना अधिक खींचा जा सकता है, उस बारे में उसका वकील सिद्धहस्त था। वकील के कहे अनुसार पद्मधर की भलाई इसी में थी कि मुकदमें में अधिक से अधिक तारीख मिले। उसके लिए वकील बीच-बीच में आकर पद्मधर से कहा करता था: हमें आज एफिडेविट देना होगा या आज तबीयत खराब होने की वजह से हमें नई तारीख के लिए दरख्वास्त देनी होगी। अपनी अस्वस्थता को सही साबित करने के लिए पद्मधर को कॉलेज से छुट्टी भी लेनी पड़ती थी।

मुकदमा दाखिल होने के छह महीने तक कोई तारीख नहीं मिली थी। पद्मधर जानता था कि यह सब उसके वकील की बहादुरी है। वकील बीच-बीच में आकर तरह-तरह के कागजात पर उसके दस्तखत ले जाया करता था। जब तक पद्मधर को कचहरी नहीं जाना पड़ा, वह बेहद खुश था। लेकिन अंत में वह समय आ गया जब उसका वकील मुकदमें की तारीख को और आगे नहीं बढ़ा सका। एक

दिन शाम को वकील के आदमी ने आकर पद्मधर को सूचना दी, कल हमें कोर्ट जाना होगा।

कोर्ट जाने का यह पद्मधर का पहला अनुभव था। सुबह ही खा-पीकर कॉलेज से छुट्टी लेकर वह वकील के घर चला गया और वहाँ से वे लोग कोर्ट चले गए। कोर्ट पहुँचकर वकील ने फिर से तरह-तरह के कागजात पर उसके दस्तखत लिए। जिस हाकिम के कोर्ट में उसका मुकदमा था, उनका कोर्ट ऊपरी मंजिल पर था। सीढ़ियाँ चढ़कर उसे कोर्ट रूम में बिठाकर वकील दूसरे काम से चला गया। हाकिम तब तक नहीं आए थे, किंतु पद्मधर ने देखा कि कोर्ट के काम में कोई अड़चन नहीं आ रही थी। गवाह, पुलिस, मुजरिम, मुहर्रिर, वकील, मुहक्किल सभी व्यस्त हो इधर-उधर आ जा रहे थे और पगड़ी वाला पिअन बीच-बीच में ताक की ताक फाइलें इधर से उधर कर रहा था। तरह-तरह को लोग तरह-तरह के कागजात पर दस्तखत कर रहे थे। पद्मधर को वह एक मेले जैसा लग रहा था, जहाँ अदालत का फैसला सुनने आए लोग अंगूठे का निशान, कोर्ट फीस, स्टांप पेपर, तारीख, वकालतनामा और समन जैसी छोटी-छोटी चीजें खरीदकर चले जाते थे।

पहली तारीख वाले दिन पद्मधर को सब कुछ नया-नया सा लगा था और कचहरी के कार्यकलाप उसे विरक्तिपूर्ण नहीं लगे थे। हाकिम वहाँ नहीं थे। यद्यपि यह बात किसी ने उसे ठीक-ठीक नहीं बताई थी, लोग बातें कर रहे थे कि, हाकिम पहुँच चुके हैं और अपने चेंबर में हैं। यह सुनकर पद्मधर को लग रहा था कि हाकिम हत्या, डकैती जैसे किसी गंभीर मुकदमें के कागजात पढ़ने में अंदर व्यस्त हैं। एक ऐसे हाकिम के पास वह अपने किराये के मकान जैसा एक अति गौण मुकदमा दाखिल करने के कारण मन ही मन दुखित और लज्जित हो रहा था।

इतने में हाँफते हुए उसका वकील आ पहुँचा। उसके मुँह से पान का पीक बह रहा था और पसीने से उसका काला कोट छपका-छपका दिखाई दे रहा था। उसका मुकदमा शुरू होगा सोचकर पद्मधर सतर्क हो बैठ गया। लेकिन वकील ने उसे सूचना दी कि आज हाकिम अब नहीं आएँगे। इतना कहकर वकील क्लर्क के पास जाकर आगामी तारीख पूछने लगा। वहाँ से लौटकर अपने छपके-छपके कोट से अदृश्य धूल झाड़ते हुए उसने पद्मधर के कान में अगली तारीख फुसफुसाकर कह दी और पुनः व्यस्तता दिखाते हुए निकल गया।

कोर्ट के बाहर निकलते समय पद्मधर ने हाकिम का चेंबर कहलाने वाले कमरे में झाँककर देखा। वह एक छोटा-सा कमरा था। अंदर अंधेरा और गंदगी

फैली हुई थी। कमरे के टेबुल पर काफी समय से रखे पीले पड़ चुके कागजों के पुलिंदे, बिना पानी की सुराही, टूटा हुआ गिलास, आधे लेटे होने की हालत में दवात और काफी साल पुराना कैलेंडर इत्यादि अस्तव्यस्त पड़े थे। बगल में रखी मेज में तीन पाये थे और कुछ ईंटें एक के ऊपर एक रखी जाकर चौथे पाये का काम पूरा कर रही थीं। उस गोपनीय कमरे को देखने के बाद हाकिम की क्षमता के बारे में पद्मधर को कुछ संदेह हुआ। किंतु उनके बारे में वकील द्वारा कही गई सर्वोत्तम विशेषणों को याद करके पद्मधर ने अपने मन से वे सारे संदेह दूर कर दिए और यह मान लिया कि इस छोटे कमरे के उस ओर एक सुंदर और मनोरम कमरा है जो कि हाकिम का खास कमरा है।

दूसरी तारीख के दिन पद्मधर बस नहीं पकड़ पाया और देर से कोर्ट पहुँचा। बड़े संकोच के साथ वह वकील को ढूँढ़ने लगा, क्योंकि मुकदमा जीतने-हारने की बजाय उसके देर से पहुँचने के कारण वकील उसे डाँट भी सकता है, उस बारे में पद्मधर अधिक सजग था। लेकिन वकील भी तब तक नहीं पहुँचा था। पद्मधर ने राहत भरी साँस ली और कोर्ट की पिछली बेंच पर बैठकर उस वक्त चल रहे मुकदमें के प्रवाह में खुद को शामिल करने की कोशिश की।

न्यायाधीश अपने आसन पर विराजमान थे। उनके सिर के ऊपर बिजली का पंखा एक अजीब-सी आवाज करते हुए घूम रहा था और प्रतिवादी वकील बड़ी ऊँची आवाज में जिरह कर रहा था। वह मुकदमा काफी रोचक था, ऐसा पद्मधर को लगा, क्योंकि नियमित अंतराल में परगमन, सतीत्व और तलाक जैसे शब्द बोले जा रहे थे एवं उपस्थित दर्शकों में हास्य पैदा कर रहे थे।

कटघरे में एक छोटा लड़का खड़ा था जैसे कि उस माहौल में विशेष हतप्रभ और उदास लग रहा था। न्यायाधीश उसकी ओर क्रोधित न सही, पर गंभीर होकर देखने की वजह से वह लड़का और भी संकुचित हो गया था। प्रतिवादी पक्ष का वकील, पद्मधर का वकील नहीं, एक निपुण धनुर्धर की तरह उस लड़के की ओर बाण छोड़ रहा था। कोई अनुभवी गवाह संभवतः उन बाणों से बचाव कर सकता था, किंतु वह लड़का उनसे बार-बार क्षत-विक्षत हो रहा था। पद्मधर अभी तक इस मुकदमें से जुड़ नहीं पाया था, लेकिन हठात् सामूहिक हँसी के उच्च विस्फोट के बाद वह ध्यान से सुनने लगा। लाइट बंद करने के बाद तुम्हारी माँ और उस आदमी ने क्या किया, वकील ने उस लड़के से पूछा।

विपक्ष का वकील मानो इस प्रश्न की प्रतीक्षा में था। तुरंत खड़े होकर उसने अपनी बात शुरू कर दी : मान्यवर न्यायाधीश, इत्यादि इत्यादि। दर्शकगण एक

रोचक विवरण से वंचित हो हताश होने-से लगे और खिन्नता भरे शोर से कोर्ट गूँज उठा। एक ऐसी विश्रांति का मौका पाकर पद्‌मधर सीढ़ियों से उतरकर बाहर आ गया। सौभाग्य से नीचे उसका वकील खड़ा था। उसने पद्‌मधर को सूचना दी कि उसका मुकदमा देर से शुरू होगा।

समय काटने के लिए पद्‌मधर ने कोर्ट के सामने चलती-फिरती दुकानों के आगे कुछ देर चहलकदमी की। वहाँ जो चीजें बिक रही थीं, वे अद्‌भुत थीं। वैसी चीजें अन्य स्थानों में नहीं बिकतीं। उदाहरण के लिए शिलाजीत, मृतसंजीवनी, कायाकल्प बटी इत्यादि आयु और शक्तिवर्धक दवाइयाँ थीं एक दुकान में, जिसका विक्रेता स्वप्नदोष, ध्वजभंग आदि के बारे में भाषण दे रहा था। उसका एक सफल प्रतिद्वंदी शेर के नाखून, ऊँटनी के दूध, साँडे के तेल, वज्रकपोत के केंचुल और कृकलास तेल इत्यादि दुर्लभ चीजों का गुणगान कर रहा था।

उसके बगल में सामुद्रिक विद्या की दुकान थी जहाँ रेखाओं से भरी एक हथेली के बड़े से चित्र के नीचे एक तोता कतारों में रखे कार्ड्स में से एक कार्ड निकालकर ग्राहकों की तकदीर का फैसला करता था। विषनाशक दवा का विक्रेता अपनी महौषधि की उपयोगिता प्रमाणित करने के लिए एक गृहपालित बिच्छू से खुद को आहत और अधमरा करता था एवं तुरंत संजीवनी के प्रयोग के बाद पुनर्जीवित हो जाता था। दूसरी तरफ एक परोपकारी दुकानदार हीरा, नीला, मोती, माणिक्य, पद्‌मराग, गोमेद इत्यादि बहुमूल्य पत्थर पानी के दाम बेच रहा था। पद्‌मधर को इन चीजों की जरूरत न होने के कारण वह पास ही एक किताब की दुकान में गया जहाँ तरह-तरह की अश्लील और कामोत्तेजक किताबों की ताक के नीचे बहुत-सी पुरानी किताबें इकट्ठी थीं। काफी ढूँढ़ने के बाद उसने अपनी परिस्थिति से मेल खाते शीर्षक वाली एक किताब खरीदी जिसका नाम था 'द ट्रायल' और जिसके लेखक कोई फ्रेंज काफ्का थे।

कोर्ट की पिछली बेंच पर आग्रही दर्शकों के बीच बैठकर पद्‌मधर ने उस किताब को पढ़ने की चेष्टा की, किंतु सफल नहीं हुआ। पहले से चल रहे मुकदमें का प्रवाह अब अधिक चित्ताकर्षक नहीं था एवं दर्शकों में से अधिकांश चले गए थे। वकील, पद्‌मधर का वकील नहीं, अब अपने भोंथरे वाण निस्पृह रूप से चला जा रहा था। इस वक्त कठघरे में एक डाकिया खड़ा था और प्रश्न थे उस औरत को भेजे गए प्रेमपत्रों के बारे में। विपक्ष का वकील डाक विभाग की नियमावली से संबंधित पारिभाषिक प्रश्न पूछ रहा था, जिसने सारे कार्यक्रम को अति नीरस

बना दिया था। किताब बंद करके पद्‌मधर ने फिर से कलाई घड़ी की ओर देखा। वह जिसे आधा घंटा समझ रहा था, वास्तव में वह सिर्फ सात मिनट था।

समय बिताने के लिए अब पद्‌मधर ने अपनी कल्पना का सहारा लिया। उसने हाकिम के टकले सिर पर एक जज के नकली बाल सजा दिए और ऊपर चल रहे पंखे को हटाकर हाथ से खींचने वाला पंखा लगा दिया। कोर्ट के चपरासी को उसने बरकंदाज की पोशाक पहना दी। डाकिया की खाकी पोशाक उतारकर उसने उसके हाथ में खन-खन करता डंडा देकर पुराने समय का रनर बना दिया। वकीलों के चेहरों पर लाल रंग चुपड़कर उसने उन्हें गोरा साहब बना दिया और उन्हें कोर्ट के चारों ओर घुड़सवार सैनिकों के रूप में सजा दिया। अब वह मुकदमा सिपाही विद्रोह के समय की घटना थी और तांत्या टोपे के क़िसी पत्र के बारे में सवाल-जवाब चल रहा था।

पद्‌मधर उससे खास संतुष्ट नहीं हुआ, क्योंकि सिपाही विद्रोह के बारे में उसका ज्ञान अत्यंत सीमित था। उसने उस घटना को अधिक समसामयिक बनाने की चेष्टा की। इसलिए उसने जज के सिर से नकली बाल उतार लिए और बिजली के पंखे का स्विच ऑन कर दिया। कोर्ट के सभी लोगों को उसने उनकी पोशाक लौटा दीं। अब वकील डाकिया से प्रश्न पूछ रहा था : नक्सलबाड़ी से आई वह चिट्‌ठी तुमने किसे दी थी? विपक्ष का वकील मानो इसी प्रश्न के इंतजार में था। हठात् खड़े होकर उसने अपना भाषण शुरू कर दिया : मान्यवर न्यायाधीश, इत्यादि इत्यादि। ठीक उसी वक्त कोर्ट में बम फूटने की आवाज आई। भीषण कोलाहल करते हुए लोगों ने कोर्ट को घेर लिया। हाथों में बंदूक लिए कुछ लोग हाकिम के चेंबर से बाहर निकल आए और चिल्लाकर बोले, हमें इस कानून और न्याय व्यवस्था पर विश्वास नहीं है।

पद्‌मधर ने सारी घटनाओं को और भी अधिक प्रांजल रूप से देखने की चेष्टा की। लेकिन उसकी थकान, खीझ, ऊपर पंखे की आवाज और दोपहर की गर्मी ने मिलकर उसकी आँखें बंद कर दीं। वह अपनी बेंच से टिक गया। अब उसने देखा कि हाकिम एक कठपुतली में तब्दील हो गए हैं। उनके हाथ के धागे ऊपर छत की ओर जाकर अदृश्य हो गए हैं। चाबी भरे खिलौनों की तरह दोनों वकील अभिनय करते जा रहे हैं और कटघरे वाला आदमी नींद में निरर्थक बातें कह रहा हैं। चेंबर से गधे की आवाज आ रही है और छत पर गिद्ध मँडरा रहे हैं। खिड़की से काले बादल घुसकर कोर्ट में छा गए और सारा कुछ अंधकाराछन्न हो गया है।

किसी ने आकर पद्मधर को झकझोरा उसकी नींद खुल गई। उसने देखा कि हाकिम जा चुके हैं और कोर्ट लगभग खाली हो चुका है। उसने अपने वकील को काफी ढूँढ़ा पर वह नहीं मिला। अंत में उस क्लर्क से तीसरी तारीख ली। सीढ़ियों से नीचे उतरते वक्त उसे याद आया कि पत्नी ने उसे नींद की गोली लाने को कहा था। उस बारे में उसने खुद को याद दिलाया और सड़क पर चल पड़ा। बाकी की सारी दुकानें बंद हो जाने पर भी किताब की दुकान अभी तक खुली थी।

पद्मधर ने दुकान में जाकर सुबह खरीदी गई किताब दुकानदार को बेच दी। हिसाब लगाकर देखा कि इस खरीद बिक्री में उसे कोई खास नुकसान नहीं हुआ था।

उसके पास काफी समय होने के कारण उसने बस से न जाकर पैदल ही घर जाना तय किया। उसने उस दिन भी कॉलेज से छुट्टी ली थी। उसकी छुट्टी की अर्जी ठीक समय पर ठीक जगह पहुँची या नहीं उस बारे में चिंतित हो उठा, लेकिन अंत में तय किया कि अब उसकी चिंता करने से कोई लाभ नहीं। कॉलेज से इस तरह एक दिन की छुट्टी लेकर आए होने के कारण उसे बुरा नहीं लग रहा था। कॉलेज का प्रत्येक क्लास उसके लिए खीझभरी अनुभूति थी। उसे ऐसे विषय पढ़ाने होते थे जिन विषयों के प्रति छात्रों में जरा भी रुचि नहीं होती थी। वह क्लास लेते समय छात्र पूर्णतः अन्यमनस्क रहते थे और आपस में बातचीत करने में व्यस्त रहते थे। किंतु पद्मधर यथासाध्य ऊँची आवाज में अपने शिक्षण का कार्य पूरा करता था। उस वक्त उसे ऐसा लगता था मानो उसके और उसके छात्रों के बीच काँच का एक पर्दा हो। कभी-कभी वह जानबूझकर उस काँच को और भी स्थूल एवं अस्वच्छ कर देता था, जिसके कारण छात्रों के चेहरे एवं कोलाहल उससे और भी दूर चले जाते थे।

काँच का एक कोना साफ करके पद्मधर ने छात्राओं की बेंच की ओर देखा। उसने अपने चेहरे की अभिव्यक्ति को और भी कोमल एवं स्वर को मुलायम बनाने की कोशिश की। लेकिन लड़कियाँ उस वक्त एक फिल्मी पत्रिका के पृष्ठ को लेकर किसी गंभीर चर्चा में व्यस्त थीं। अपनी असफलता से निराश होकर पद्मधर ने काँच में एक छेद करके उसमें एक स्थायी खिड़की लगाने की इच्छा से निवृत्त हो गया और फिर से अपने चेहरे एवं आवाज को स्वाभाविक कर लिया।

उसके कॉलेज के दिनों की एकमात्र आनंददायक अनुभूति थी वसुधा। भले ही वसुधा से उसका परिचय अति सामान्य और साधारण था, पद्मधर उस घटना

को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण घटना मानता था। वह घटना यह थी कि कई साल पहले ट्यूटोरियल क्लास खत्म करने के बाद पद्मधर ने देखा कि वसुधा क्लास से बाहर न जाकर क्लास में ही अकेले बैठी हुई है। वसुधा खूबसूरत थी। पद्मधर ने पहले कभी उसे ध्यान से नहीं देखा था। पर क्लास में अकेले बैठी वह लड़की उसे असामान्य और रहस्यमयी लगी। यह उसका पहला अनुभव होने की वजह से वह सोच नहीं पा रहा था कि कैसे बातचीत शुरू करे। उसका संकोच दूर करते हुए उस लड़की ने उसकी ओर एक किताब बढ़ा दी और कहा : क्या आप मुझे यह पैराग्राफ जरा समझा देंगे?

पद्मधर के सिर के भीतर सबकुछ अस्तव्यस्त हो गया। उसका गला सूख गया, पैरों में ताकत नहीं बची और हाथ काँपने लगे। पैराग्राफ के सारे अक्षर जीवंत होकर पन्ने पर मँडराने लगे। चेहरे पर सहसा उभर आए बूँद-बूँद पसीने को हथेली से पोंछते हुए पद्मधर ने जितना कुछ कहा उसका कोई अर्थ नहीं था। किताब के उस कठिन पैराग्राफ की व्याख्या उसे खुद को दुष्कर लगी। उस लड़की का चेहरा कुछ लाज और अत्यधिक आमोद से लाल पड़ गया। पद्मधर के हाथ से किताब लेकर वह क्लास से बाहर चली गई। बस, इतना ही।

इस घटना को पद्मधर ने कई बार मन ही मन दोहराया था। अब वह उस लड़की का नाम और पता जानता था एवं यह जानकारी उसे सोचने में काफी सहायक हो रही थी। उस घटना को फ्लैश बैक में देखते समय पद्मधर उसको बार-बार संपादित कर लेता था और उस मूक चलचित्र में वह अनेक संवाद डालकर उसे सवाक् कर देता था। उदाहरण के लिए, वह वसुधा के उस क्लास रूम में आने को एक नाटकीय प्रवेश का स्वरूप देता था। वसुधा बेहद खूबसूरत लग रही थी और उसका श्रृंगार किसी फिल्मी अभिनेत्री से कम नहीं था। क्लास के भीतर आकर उसने पद्मधर को नमस्कार किया और ठीक उसी के सामने बैठ गई। कहने की जरूरत नहीं कि चित्र में पद्मधर ने अपनी सबसे सुंदर पोशाक पहन रखी थी और उसके चेहरे पर थी एक अद्भुत प्रसन्नता। कभी-कभी पद्मधर की इच्छा होती तो वह अपना क्लास-रूम बिना दुविधा के बदलकर एक पार्क का मनोरम परिवेश भी बना लेता था।

पद्मधर क्रमशः अधिक साहसी हो गया और वसुधा को, जिसे अब वह सिर्फ सुधा कहकर संबोधित करता था, उसे सिनेमा ले जाने से भी नहीं हिचका। सिनेमा हॉल के अंधेरे में अब वह वसुधा के हाथ पर हाथ रख लेता था एवं पर्दे पर अभिनय करने वाले नायक-नायिका को खुद के और वसुधा के रूप में कल्पना

करके उसे बेहद खुशी होती थी। वसुधा से उसका संबंध धीरे-धीरे घनिष्ठ होने लगा। अंत में एक दिन उसने वसुधा को लेकर किसी हिल स्टेशन पर जाना तय किया। उस वक्त वह अपने ट्यूटोरियल क्लासरूम में बैठा था और विभिन्न स्थानों की रमणीयता के बारे में तुलनात्मक विचार करते समय चित्र में देखे पैरिस शहर के बारे में भी भूला नहीं था।

इस वक्त सड़क पर चलते हुए उसने पुनः वसुधा को लेकर भ्रमण पर जाने की बात याद करने की चेष्टा की। लेकिन काफी दिनों पहले ट्यूटोरियल क्लास-रूम में जो विषय अति सरल लगता था, दिन भर कचहरी में गुज़ारने के बाद थककर घर लौटते समय शहर की तंग गलियों में वह बात आसानी से आगे नहीं बढ़ रही थी। बाईं ओर वाली दवाई की दुकान की ओर देखना अस्वीकार करके उसने दूर आकाश में जलती किसी फिल्म के नायक-नायिका के निअन लाइट में लिखे नाम की ओर देखा। उसने खीझकर उस विज्ञापन से दोनों नाम हटाकर उसकी जगह पद्मधर वसुधा लिख दिया। चलते हुए उसने कुछ संतोष के साथ उस निअन विज्ञापन को देखा एवं इस बार उसमें से 'धर' और 'व' मिटा दिया। उसे संशय हुआ कि पदम्-सुधा में कुछ अटपटा-सा लग रहा है। इसलिए उसने पलक झपकते हाइफन हटा दिया।

अब तक उसने अपने घर की सड़क छोड़कर दूसरी दिशा में चलना शुरू कर दिया था, जो कि वसुधा के घर की सड़क थी। उसने खुद को तसल्ली दी कि वास्तव में वह किराये के लिए दूसरा मकान ढूँढ़ने निकला है। उसे किसी सज्जन ने सलाह दी थी कि शाम को बत्ती न जल रहे मकान ही किराये के लिए खाली मकान हो सकते हैं। भले ही उस वक्त समय ज्यादा नहीं हुआ था, पर जाड़े के दिन होने की वजह से अंधेरा हो गया था और घरों में बत्तियाँ जलनी शुरू हो गई थीं। वह पद्मधर के लिए कोई अनजान सड़क नहीं थी, क्योंकि वह कई बार किसी न किसी बहाने उस सड़क से आ-जा चुका था, भले ही कभी वसुधा के घर जाकर उससे मिलने का साहस वह न जुटा पाया हो, लेकिन आज वसुधा के ही घर में अंधेरा था एवं खाली मकान के साथ किसी के मकान की उपलब्धता वाली बात उसे तर्कसंगत नहीं लगी और उसने उस सज्जन की सलाह उसी क्षण ठुकरा दी।

बस अड्डे पहुँचकर वहाँ से घर लौटने वाली बस का इंतज़ार करते समय पद्मधर को नींद की दवा याद आ गई। लेकिन आस-पास दवा की कोई दुकान नहीं थी। इसलिए उसने पान की दुकान से सिर दर्द की दवा खरीद ली और उसे

डिब्बे से बाहर निकालकर सादे कागज में लपेटकर जेब में रख ली। अब तक पद्‌मधर काफी थक चुका था एवं साथ ही एक और दिन बीत जाने पर राहत भरी साँस ले रहा था। घर पहुँचने में अभी और आधा घंटा लगेगा; कल सुबह की क्लास के लिए पंद्रह घंटे, कोर्ट की तीसरी तारीख के लिए सत्ताईस दिन और किराये का मकान छोड़ने के लिए कम से कम दो साल। दूसरी ओर, वह वसुधा का मकान बस से सात मिनट पीछे छोड़ आया था। सिनेमा का पहला शो छोड़ आया था डेढ़ घंटे और सिपाही विद्रोह सौ साल से भी अधिक पीछे।

बाहर ठंड से आकर वह अपने किराये के मकान में घुस गया। यंत्रचालित-सा उसने खा-पी लिया और बस अड्डे से लाया अखबार पढ़ा एवं सोने चला गया। बगल वाली खाट में उसकी पत्नी नींद की दवा खाकर जोकि वास्तव में नींद की दवा नहीं थी, गहरी नींद में सो गई थी। खाट पर लेटकर पद्‌मधर दिन भर की बातें सोचने लगा और सोचते-सोचते फिर से वह उसी पुरानी सड़क से वसुधा के घर के पास पहुँच गया। इस बार उस घर में बत्ती जल रही थी और वसुधा के सिवाय घर में और कोई नहीं था। वसुधा आकर उसके पास बैठ गई एवं पद्‌मधर ने आनंद और तृप्ति से आँखें बंद कर लीं। उस हालत में उसने अपनी पत्नी को ही अपनी बाँहों में देखा। उस अनिच्छा-कृत अनुभूति से बाहर निकल आने के लिए उसने आँखें खोलीं और बत्ती बुझाकर पास बैठी वसुधा को अपनी बाँहों के बंधन में बाँध लिया।

जब पद्‌मधर ने फिर से आँखें खोलीं, देखा कि उसका हाथ गहरी नींद में सोई उसकी पत्नी पर था। इस बार पद्‌मधर ने अति सतर्कता से पुनः आँखें बंद करके वसुधा की ओर हाथ बढ़ाने की चेष्टा की।

निर्धारित स्थान

काफी देर तक इधर-उधर निगाह डालने के बाद, आखिर दूर कोने में पड़ी कुर्सी पर हरिराम जा बैठा। उसकी तरह और भी कई लोग उस कमरे में बैठे, साक्षात्कार के बुलावे का इंतजार कर रहे थे। सभी के चेहरे उद्वेग भरे थे और समय बिताने के लिए सभी आपस में एक-दूसरे के परिचय का आदान-प्रदान करने में व्यस्त थे। सभी अपनी-अपनी सबसे कीमती पोशाक, व्यवहार और आचरण पहनकर आए हुए थे। उस माहौल में हरिराम खुद को अलग-सा महसूस कर रहा था।

हरिराम जानता था कि अपनी लाख कोशिशों के बावजूद वह इनके समकक्ष नहीं हो पाया था। वह काला था और खुद को कुरूप मानता था। उसकी पोशाक, चाल-चलन, उच्चारण, सब मानो किसी छुटपन के परिचायक थे। उसने अपनी नीची जाति की पैदाइश, दरिद्र पिता, अशिक्षित पत्नी और ईर्ष्यालु रिश्तेदारों को मन-ही-मन धिक्कारा और अपने छोटेपन के बोध से खुद को और भी संकुचित कर लिया।

खुद को इतनी हेय दृष्टि से देखने के पीछे हरिराम का कोई तर्क नहीं था, क्योंकि इस समय वह जिस स्तर तक पहुँचा था, वह उसके लिए गर्व की बात थी। वह अपने गाँव और अपनी जाति में सबसे अधिक पढ़ा-लिखा था। उसका बाप मोची था और उसके पूर्वजों में कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं था। हरिराम जानता था कि अपनी अदम्य निष्ठा और मेहनत के बल पर ही वह अपने गाँववालों और रिश्तेदारों से काफी ऊँचा पहुँच सका था। लेकिन इस समय वह हतोत्साह से बोझिल था। उसकी इच्छा हुई कि काश, वह उस युवक की तरह हो पाता जिसने अपनी सभी कमियों को एक-एक गुण में बदल दिया था।

इसी तरह के एक अन्य साक्षात्कार के लिए इंतज़ार करते वक्त वह युवक आ पहुँचा था। गजब की रौनक थी उसके चेहरे पर! हरिराम समेत और भी कई लोगों के आगे खड़े होकर सिगरेट का धुआँ उगलते हुए उसने कहा था– "तुम

लोग खामखाह यहाँ अपना समय जाया कर रहे हो; नौकरी तो मेरी है!" किसी ने पूछा—"मंत्री के आदमी हो क्या?" "मुझमें खुद इतनी योग्यता है कि मुझे किसी सिफारिश की जरूरत नहीं!"—लड़के ने कहा। किसी ने व्यंग्य कसते हुए कहा—"तो फिर तुम हरिजन होगे!" इस कथन से हरिराम के दिल को एकाएक ठेस पहुँची और उसकी धड़कनें तेजी से उठने-गिरने लगीं। लेकिन उस युवक ने बेहिचक कहा—"हाँ, किंतु मैंने दरखास्त में साफ-साफ लिख दिया है कि अपनी नीची जाति के लिए मैं किसी तरह की रियायत नहीं चाहता। मैं अपनी काबिलियत पर ही चुना जाऊँगा!" कुछ देर तक वह चुप रहा। फिर सिगरेट का धुआँ उड़ाता हुआ, सभी की ओर अवहेलना भरी नजरों से देखते हुए हँसा और बोला—"मेरे पिता सफाई का काम करते हैं। 'सफाईवाला' एक भद्र शब्द मात्र है। वास्तविक नाम है मेहतर! मेरी माँ भी मेहतरानी है..."

हरिराम जानता था कि वह कभी भी उस लड़के-जैसा नहीं बन सकता। नीच कुल में जन्म लेने पर गर्व करने की बात तो दरकिनार, यह बात किसी से कहते समय भी वह अपने में सिमट जाता था। उसने सोचा—शहर से दूर गाँव के जाति-पाँतिपूर्ण माहौल में बढ़ना ही उसके संकुचित होने का कारण था। उसे अपने बचपन की बात याद आई। हालाँकि वह बचपन में पढ़ाई में तेज था, फिर भी उसे दूसरे लड़कों से दूर और अलग बैठना पड़ता था। खाने की छुट्टी होने पर सीधे घर लौटकर अपने बाप के काम में हाथ बँटाता था। यद्यपि उसका शिक्षक उसकी पढ़ाई पर खुश रहता था, फिर भी एक हरिजन लड़के को अच्छा पढ़ते देख संतुष्ट नहीं था।

उसके इलाके का सबसे धनी व्यक्ति उस गाँव का खान मालिक था, जिसे सभी सेठ कहते थे। वह किस जाति का था, इस बारे में ठीक-ठाक पता न होने पर भी सभी उसे ऊँची जाति में गिनते थे, और सेठ के लड़कों के ब्राह्मणत्व के दावे का भी कोई विरोध नहीं करता था। हरिराम को बचपन के उस दिन की याद आई जिस दिन अचानक बारिश होने पर स्कूल से दौड़ते हुए घर आते वक्त अनजाने ही वह सेठ के लड़के से टकरा गया और सेठ का लड़का नीचे गिर पड़ा। स्कूल के शिक्षक ने इस बात के लिए उसे पीटा भी था, और जब उसने घर जाकर यह बात अपने बाप से बतलाई, तो उसके बाप ने उसी पर गुस्सा किया। इसके बाद उसका बाप उसे साथ लेकर सेठ के घर जा पहुँचा और वहाँ सबके सामने उसे पीटा। उस वक्त वह खूब रोया था और अपने पिता पर क्रोधित हो उठा था। किंतु आगे चलकर वह समझ गया था कि उसके बाप ने उसकी

भलाई के लिए ही ऐसा किया था। अगर उसका बाप उसकी वह थोड़ी-सी पिटाई न करता तो सेठ के नौकरों से उसे और अधिक मार खानी पड़ती।

हरिराम ने हाईस्कूल भी पास कर लिया। हालाँकि अब वह देश की स्वाधीनता, अस्पृश्यता-निवारण आदि के बारे में कुछ-कुछ जानने लगा था, फिर भी उसे मालूम था कि गाँव में इन बातों के कोई मायने नहीं हैं। उसका बाप अभी तक मोची का काम करता था। उसकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ था। अब तक उसकी जाति के लोग गाँव के बाहर, झुके हुए छप्पर के घरों में दूसरों से अलग रहते थे। जिस दिन उसने मैट्रिक पास किया, उसी दिन उसका बाप उसे साथ लेकर सेठ के घर जा पहुँचा। सेठ अपने घर के बरामदे में खुले बदन बैठा था। हरिराम के बाप ने जमीन पर लेटकर उसे साष्टांग प्रणाम किया। बाप की देखा-देखी सफेद पैंट और कमीज को भूलकर हरिराम ने भी नीचे लेटकर प्रणाम किया। सेठ अपने थुल-थुल शरीर को पंखा झलते हुए, हरिराम के मैट्रिक पास होने की खबर सुनकर खुश हुआ और बोला—"स्साला समय ही पलट गया है! हम लोगों के लड़के पढ़ाई न करके घर में बैठते हैं। इधर मोची के लड़के ने मैट्रिक पास कर लिया"—यह बात सुनकर हरिराम के बाप ने पुनः हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोला—"हुजूर, इस लड़के का कोई इंतजाम कर दें।"

सेठ ने हरिराम को सिर से पैर तक देखा। बाप ने उसे इशारा किया और हरिराम ने जमीन में नजरें गड़ाकर एक बार फिर हाथ जोड़े। सेठ खूब प्रसन्न था। "क्या और पढ़ना चाहते हो?"—उसने पूछा। हरिराम ने सिर हिलाकर हामी भरी। सेठ ने अपने मैनेजर को बुलाकर कहा—"यह मोची का लड़का माइनिंग-स्कूल में पढ़ेगा। इसके बाप को हर माह खर्च दे देना!" हरिराम के बाप ने पुनः जमीन पर लेटकर सेठ को प्रणाम किया, और इस तरह हरिराम ने आगे की पढ़ाई की।

स्कूल-हॉस्टल में हरिराम अकेला 'अछूत' छात्र था। वह समय-समय के अपमान और यातनापूर्ण अनुभवों को भुला देना ही उचित समझता था। जहाँ तक संभव होता, वह दूसरे लड़कों से अलग रहता और अपनी पढ़ाई में मन लगाता। भले ही वह पढ़ने में तेज नहीं था, फिर भी अपनी परीक्षाएँ सही समय पर पास कर लेता था। देखते-ही-देखते उसने माइनिंग-स्कूल की पढ़ाई भी खत्म कर ली। बाप-बेटा फिर सेठ के आगे हाथ जोड़कर जा खड़े हुए। उस वक्त सेठ बीमार था, लेकिन उन्हें देखकर वह खुश हुआ। हरिराम के बाप ने कहा—"आपकी कृपा से यह लड़का आदमी बना है! आप ही के पैसों से इसने पढ़ाई की है। अब इसे किसी काम पर लगा दीजिए। तनखाह भले न मिले, काम तो सीख जाएगा!"

सेठ ने कहा—"मेरे पैसों से इसने पढ़ाई की है, यह बात भूल जाओ। यदि उसे कहीं और नौकरी मिल रही हो तो जाकर करे। जहाँ तक मेरे पास काम करने की बात है तो दैनिक मजदूरी के हिसाब से काम करे। जिस दिन काम होगा, उस दिन की मजदूरी पाएगा, काम न होने पर मज़दूरी नहीं मिलेगी। सोच लो, जैसा तुम्हारा विचार बने..." हरिराम ने अपने बाप की ओर देखा; बाप ने कहा—"नहीं, यह आप ही के पास काम करेगा!"—बाप-बेटे ने उसे पुनः प्रणाम किया। सेठ ने मैनेजर को बुलाकर कहा—"इस मोची के लड़के के लिए बाहर एक कुर्सी डलवा दो।"

इस तरह उसने अपनी नौकरी की शुरुआत की। अछूत होने की वजह से वह अन्य अधिकारियों के साथ नहीं बैठता था। हालाँकि वह दूसरों से अधिक तनखाह पाता था, फिर भी सभी—यहाँ तक कि उसके अधीनस्थ कर्मचारी भी उसे हेय दृष्टि से देखते थे और इस वजह से उसके काम में बाधाएँ भी आती थीं। अब तक हरिराम को यह मालूम हो चुका था कि इतना पढ़-लिखकर भी वह अपनी जाति और परिवार के निम्न सामाजिक स्तर से ऊपर नहीं उठ सका है और अपनी माइनिंग की पढ़ाई और काम के बावजूद वास्तव में वह मोची ही था।

उन हालात से छुटकारा पाने के लिए उसने घर पर ही पढ़ाई की और डिप्लोमा पाने में कामयाब हो गया। इसी बीच उसने एक अनपढ़ लड़की से विवाह कर लिया था। उसके बच्चे भी एक अस्वस्थ और दरिद्रता-ग्रस्त माहौल में पल रहे थे। उसने सोचा था कि गाँव के इस माहौल से निकल जाने पर वह अपने इस घुटनभरे जन्मजात नीच स्तर से छुटकारा पा जाएगा। इसलिए उसने तय किया कि यह रोजाना की मजदूरी छोड़कर शहर जाकर कहीं नौकरी तलाशने की कोशिश करेगा।

लेकिन नौकरी इतनी आसानी से कहाँ मिलनेवाली थी! लगातार साक्षात्कार देने के बाद यह बात उसकी समझ में आ गई कि यह व्यवस्था मात्र एक लोक-दिखावा है; क्योंकि नौकरी किसे देनी है, उस बारे में पहले से ही फैसला हो जाता है। साक्षात्कार के समय उसे कई व्यंग्यात्मक प्रश्नों का सामना करना पड़ता था। उसकी दैनिक मजदूरी की नौकरी के बारे में टीका-टिप्पणियाँ की जाती थीं और आखिर में उसका चुनाव नहीं हो पाता था एवं वह सेठ के दफ्तर में लौट आता था। सेठ अच्छा आदमी था और उसके काम से संतुष्ट भी था। वह व्यंग्य कसते हुए सिर्फ इतना ही कहता था—"क्या फिर लौट आए?" और मैनेजर उसके लिए फिर से एक कुर्सी बाहर डलवा देता था।

इसी तरह कई साल गुज़र गए। हरिराम साक्षात्कारों से बार-बार निराश होकर पुनः बरामदे में पड़ी कुर्सी पर आकर बैठने लगता। उसकी उम्र बढ़ने लगी थी। वह जानता था कि अब साक्षात्कार के लिए भी बुलावा नहीं आएगा। यह उसका आखिरी साक्षात्कार था। घर से निकलते वक्त जाने-अनजाने ही सभी देवी-देवताओं को प्रणाम करके, अपने बाप का आशीर्वाद लेकर वह आया था। यह अंतिम साक्षात्कार उसके लिए एक दूसरी तरह की जिंदगी का आखिरी प्रवेश-द्वार था।

साक्षात्कार का इंतजार करते-करते जब वह पूरी तरह से थक चुका, तो अंदर जाने का बुलावा आया। साक्षात्कार-कक्ष का दरवाजा अंदर की ओर खुलेगा अथवा बाहर की ओर, अक्सर यही बात उसके लिए एक समस्या होती थी। खैर, वह अंदर पांच बुद्धिमान व्यक्तियों के बोर्ड के सामने जा खड़ा हुआ। उसे बैठने को कहने के बाद सवालों के तीर छूटने शुरू हो गए—उसके जन्म, पढ़ाई, बुद्धि और नौकरी की सूची देखने के बाद अंत में वही अनिवार्य सवाल पूछा—"तुम इतने दिनों से दैनिक मजदूरी क्यों कर रहे हो? अच्छी नौकरी क्यों नहीं मिली?" यद्यपि हरिराम को मालूम था कि यह सवाल उससे पूछा जाएगा, पर उसके लिए उस सवाल का जवाब दे पाना आसान नहीं था। उसने कहना शुरू किया, "मेरा जन्म एक बहुत छोटे-से गाँव में हुआ। मैं एक नितांत गरीब हरिजन परिवार में पैदा हुआ हूँ..."

इतना कहने के बाद उसने प्रश्नकर्ता की ओर देखा। वे कागज पर कुछ लिखने में व्यस्त थे। दो व्यक्ति आपस में कुछ बातचीत करने में मशगूल थे। एक अपना पाईप साफ कर रहे थे। उसकी बात सुन रहे एकमात्र सज्जन अनमने-से सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"इतनी भूमिका बांधने की जरूरत नहीं। संक्षिप्त उत्तर दो!"

हरिराम ने उनकी ओर देखा। उस सज्जन के असहृय सवाल और गंभीर चेहरे ने उसे हतोत्साहित कर दिया। उसने खुद को अंदर-ही-अंदर और समेट लिया और बोला—"संक्षेप में कहा जाए..." इसके बाद वह खामोश हो गया। इतनी सारी बातें संक्षेप में कैसे कही जा सकती हैं। सदियों से हो रहे शोषण, कुसंस्कार, अत्याचार, दरिद्रता, ऋग्वेद, ब्रह्मा के चरण, मनु, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गांधी, अस्पृश्यता-कानून, अंबेडकर, मंदिर-प्रवेश, चमरटोला, सनातन हिंदूधर्म, छुआछूत, पंचामृत, जगत् गुरुशंकराचार्य, भंगी कॉलोनी, सद्गति, मुक्तिमंडप, पंडित-सभा, श्री या चांडालिनी, स्थान-संरक्षण, अलग-कुआँ, धर्मांतर, सामूहिक शुद्धि, हरिजन, बेलची?... हरिराम खामोश था, वह समझ चुका था कि उसका

चुनाव नहीं हो रहा है। अब उसका भविष्य निश्चित और निर्धारित था, जिसे वह साक्षात्कार-कक्ष में निर्वाक् बैठा साफ-साफ देख सकता था।

कक्ष का दरवाजा बाहर की ओर खुलता था, जिसे वह अनायास ही खोलकर बाहर चला आया। वहाँ से वह पैदल बस-स्टॉप गया, फिर बस से उतरकर दोपहर की ट्रेन ली। शाम को गाँव की पगडंडी पकड़कर घर पहुँचा। घर में किसी से कोई बातचीत किए बगैर उसने रात बिता दी। सुबह सेठ के दरवाजे पर हाथ बाँधकर जा खड़ा हुआ। सेठ को मरे काफी दिन हो चुके थे। उसका बेटा, जो अब सारा कारोबार संभाले हुए था, सफारी सूट पहनता था और सुसज्जित कमरे में बैठता था। हरिराम ने सकुचाते हुए उसे प्रणाम किया। उसे देखकर सेठ के बेटे ने हँसते हुए कहा—"क्यों, फिर लौट आए?" और मैनेजर को बुलाकर कहा—"इस चमार के लिए बाहर कुर्सी डलवा दो!"

पिक्‌निक

दौरे से लौटकर जयदेव ने घर में पैर रखा ही था कि सुनंदा ने उससे कहा, जानते हो, कल हम लोग पिक्‌निक गए थे। जयदेव दफ्तर के काम को लेकर कुछ चिंतित था। उसने कहा, अच्छा, उसके बाद उसने सुनंदा से उसकी अनुपस्थिति में कहाँ-कहाँ से फोन आया था उस बारे में पूछा। उसकी इतनी बड़ी खबर जयदेव की बिना प्रतिक्रिया के सिर्फ 'अच्छा' में इस तरह व्यर्थ चली गई, यह बात सुनंदा को अच्छी नहीं लगी। इसलिए उसने कुछ देर बाद जयदेव को खाना परोसते समय कहा, झील के पास पिक्‌निक करने के लिए बहुत अच्छी जगह है, हम भी कभी जरूर चलेंगे। दफ्तर का समय हो रहा था। जयदेव ने घड़ी देखी और बोला, ठीक है, अगले रविवार को चल सकते हैं।

सुनंदा ने सोचा था कि उसके पिक्‌निक जाने के बारे में सुनते ही जयदेव उससे कब, कहाँ, कौन-कौन गए थे इत्यादि सवाल पूछकर उसे परेशान कर देगा। लेकिन जयदेव कुछ अलग स्वभाव का था, एक कौतूहलहीन व्यक्ति। सुनंदा को याद आ गया काफी दिनों पहले, उसकी शादी के कुछ ही दिन बाद, उसने जयदेव से अपना खुल न रहा छोटा-सा सूटकेस खोलने के लिए कहा था। उस छोटे सूटकेस में उसकी बहुत-सी छोटी-छोटी व्यक्तिगत चीजें थीं, जैसे उसके अलग-अलग उम्र के फोटो, सहेलियों से लेकर छुपाकर पढ़ने वाली किताबें, किसी का दिया हुआ रुमाल, गुलाबी और नीले कागज पर लिखी चिट्‌ठियाँ इत्यादि। सूटकेस की चाबी खो गई थी, लेकिन कील की मदद से जयदेव ने बड़ी आसानी से सूटकेस खोल दिया। सुनंदा को उम्मीद थी कि जयदेव सूटकेस खोलकर उसके अंदर रखी अनाप-शनाप चीजों के बारे में सवाल करेगा और उनके बारे में विस्तृत विवरण देकर सुनंदा अपना पूरा अतीत जयदेव के सामने खोलकर रख देगी। परंतु ताला खोलने के बाद जयदेव ने ताला निकालने तक की चेष्टा नहीं की। बल्कि जब सुनंदा ने उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए सूटकेस से गुलाबी और नीली चिट्‌ठियाँ निकालने लगी, जयदेव वहाँ से उठकर अपने काम से चला गया।

उस दिन जयदेव के दफ्तर चले जाने के बाद सुनंदा ने वह पुराना बक्सा खोलकर बहुत दिनों से एकत्रित चीजें बाहर निकालकर देखीं। वह देखना चाहती थी कि इन सब चीजों में शायद अरविंद से जुड़ी कोई चीज भी हो। उसने मलिन पड़ चुका रोमांचकारी उपन्यास पढ़ना शुरू कर दिया। कुछ पन्ने पढ़ने के बाद उसे लगा कि जिस किताब को कॉलेज के दिनों में उसने अत्यंत अश्लील किताब समझा था, वास्तव में वह एक फीकी प्रेम कहानी थी। फिर भी उसने उस किताब को अंत तक पढ़ा और अंत में खीझकर उसे फाड़ दिया। उसके बाद उसने अपनी सारी चिट्ठियाँ खोलकर देखीं। उनमें से कुछ चिट्ठियाँ ऐसे दोस्तों की थीं, जिनके बारे में अब उसे बिलकुल याद नहीं था। उन चिट्ठियों में अधिकतर 'तुम्हारी मानसी' से आई थीं और उन सबमें अति संयत भाषा में प्यार के गुप्त वायदे और निवेदन थे।

इस वक्त सुनंदा को जहाँ तक याद आया, उसकी एक सहेली उन दोनों के गोपनीय समझौता के अनुसार 'मानसी' छद्म नाम से उसे चिट्ठियाँ लिखी थीं। अन्य चिट्ठियों में अनेक चिट्ठियाँ नितांत मामूली सौजन्यपूर्ण चिट्ठियाँ भी थीं, जिन्हें सुनंदा ने शायद तब उनसे गहरी दोस्ती की वजह से सहेजकर रख ली थीं। लेकिन अब उन लोगों से उसका कोई संपर्क नहीं था। इसलिए सुनंदा ने उन चिट्ठियों को भी फाड़ दिया। पुराने मित्रों में इस वक्त उसका संपर्क एकमात्र समिता से था, जो कि उसके घर के नज़दीक रहती थी। किंतु उन पुरानी चिट्ठियों में समिता की कोई चिट्ठी नहीं थी।

किताब और चिट्ठियाँ फाड़ने के बाद उसने आधा इस्तेमाल हुए नीले रंग के चिट्ठी लिखने वाले पैड को अलग रख लिया और बक्से में रखी दूसरी चीजों को देखने में मन लगाया। इस वक्त पहचान न पा रही एवं पहचान लेने पर भी उनके प्रति कोई कौतूहल न होने की वजह से कई चेहरों के फोटोग्राफ उसने फाड़ दिए और अपने बाकी के फोटो ले जाकर उन्हें नए एलबम में रख दिया।

मीनाकारी से बने छोटे कृष्ण की तसवीर ले जाकर उसने पूजाघर में रख दिया। और अपने स्कूल के समय के गर्ल-गाइड का बैज उसने खिड़की से बाहर फेंक दिया। इस तरह पूरा बक्सा खाली हो जाने के बाद भी उसमें से अरविंद से जुड़ी कोई चीज नहीं निकली। यह देखकर सुनंदा थोड़ी निराश होने के साथ ही खुश भी हुई।

अरविंद से अपने कॉलेज के दिनों के रिश्ते को सुनंदा ने वर्तमान समय की सुरक्षित दूरी से ठीक से समझने की चेष्टा की। अरविंद उससे दो क्लास—नहीं, एक क्लास, नहीं-नहीं दो क्लास ऊपर था। वह सुदर्शन था और कॉलेज की

पत्रिका में कविताएं लिखा करता था। उससे उसका बहुत कम परिचय था, लेकिन सुनंदा मन ही मन उसे लेकर एक रोमांटिक रिश्ते की कल्पना कर चुकी थी। उनकी मुलाकात बीच-बीच में हो जाती थी। कॉलेज के कॉरीडोर में। उस समय कॉलेज की लड़कियाँ प्रतिरक्षा की दृष्टि से समूह में आवाजाही करती थीं और उस समूह में निकलकर अरविंद के पास जाते समय सुनंदा का चेहरा लाज और पसीने से आच्छन्न हो जाता था। उन लोगों की मुलाकात 'क्या आपने और कविता लिखी' या 'आपकी पढ़ाई कैसी चल रही है' जैसे सौजन्य विनिमय तक ही सीमित थी। एक साल बाद भी उनकी बातचीत की व्यक्तिगत घनिष्ठता, 'आपके भाई से मुलाकात हुई थी' से और आगे नहीं जा पा रही थी। फिर भी सुनंदा को वह छोटी-सी मुलाकात अति आनंद देती थी और उसकी सहेलियों की ईर्ष्या शायद उन आनंद की एक और वजह थी।

विवाह के पंद्रह साल के अनुभव के बाद कॉलेज के दिनों की बातें इस समय सुनंदा को बड़ी अजीब लग रही थीं। एक सामान्य रिश्ते को बढ़ा-चढ़ाकर वह क्यों एक ऐसा रोमांचकारी रूप दिया करती थी और अरविंद व खुद को लेकर चमत्कार सपने देखा करती थी, अब वह उसकी कल्पना नहीं कर पा रही थी। कॉलेज के दिनों में सुनंदा अरविंद को खूब बड़ी-बड़ी चिट्ठियाँ लिखा करती थी और वे चिट्ठियाँ रोमांचित भावनाओं से भरपूर होती थीं। सुनंदा चिट्ठी के प्रारंभ में अरविंद के लिए प्रियतम, हृदयेश्वर आदि प्राचीन संबोधन से लेकर डार्लिंग और स्वीटहार्ट तक का प्रयोग करती थी, जबकि मुलाकात होने पर वे एक-दूसरे को आप कहकर संबोधित करते थे, चिट्ठी में वह अरविंद को तुम लिखा करती थी। उन चिट्ठियों को पूरा लिखने के बाद उन्हें तुरंत फाड़ देती थी, लेकिन उन एक तरफा चिट्ठियों के जरिये वह अरविंद को अपने करीब ला पा रही है, ऐसा उसे लगता था। रात को सोते समय वह काफी देर तक अरविंद के बारे में सोचा करती थी और यह उसकी खुशी का सुंदर माध्यम होता था। ऐसे समय में अरविंद को अपने भावी पति के रूप में कल्पना करके सुनंदा लज्जित और पुलकित हो जाती थी।

जब सुनंदा ने अरविंद को सचमुच की चिट्ठी लिखी, वह अति संक्षिप्त और रोमांचरहित थी। सुनंदा ने लिखा, प्रिय अरविंद बाबू, आपने भैया को जो चिट्ठी लिखी थी वह उन्हें मिलने से पहले ही भैया यहाँ से चले गए थे। मैंने वह चिट्ठी उन्हें उनके नए पते पर भेज दी है। आप नीचे लिखे पते पर उन्हें चिट्ठी भेज सकते हैं। सादर नमस्कार, आपकी सुनंदा। इतना लिखते समय सुनंदा के हाथ काँप रहे थे और वह सोच रही थी कि किसी अलौकिक प्रेरणा के बल पर

अरविंद उसकी चिट्ठी से उसके अंतर्निहित मर्म को समझ जाएँगे एवं उसके लिखे शब्दों को प्रियतम, तुम, आपकी से इत्यादि गोपनीय अर्थ निकाल लेंगे। सुनंदा को उस चिट्ठी का कोई जवाब नहीं मिला था, लेकिन काफी दिनों तक उसने अरविंद की चिट्ठी, जिसे उसने भैया के पास भेजी नहीं थी, अपने पास रखे रही थी, उसे बार-बार देखा, छूकर अरविंद को अपने निकटतर करने की चेष्टा की थी। हालाँकि वह चाहती तो स्वाभाविक रूप से भैया से अरविंद के बारे में पूछ सकती थी, किंतु उस बारे में वह अहेतुक लाज महसूस कर रही थी और अरविंद के बारे में कोई खबर नहीं रख पाई थी।

उस दिन अचानक इतने सालों बाद अरविंद की खबर दी समिता ने। अरविंद समिता के पति का मित्र था और काम से उनके शहर आने पर समिता के घर टिकता था। समिता बीच-बीच में सुनंदा को फोन किया करती थी और उसने अरविंद के आने की सूचना दी थी। जयदेव के काम से शहर से बाहर होने के दौरान अरविंद का इस तरह उनके शहर में आना सुनंदा को एक तरह से अद्भुत और दैवप्रेरित लगा। उसके मन में अरविंद से मिलने की प्रबल इच्छा थी, किंतु वह अपने पति की मौजूदगी में ही अरविंद से मिली होती तो उसे खुशी होती। मानो वह अधिक आग्रही थी जयदेव से अरविंद का परिचय कराने में; लेकिन दूसरे ही दिन अरविंद को लौट जाना था और उनकी मुलाकात संभव नहीं थी। जब समिता ने उससे रविवार को पिक्निक जाने के बारे में कहा, सुनंदा ने पहले मना कर दिया। लेकिन जब समिता ने अरविंद को साथ लेकर सुनंदा के घर आने की बात कही, सुनंदा ने कहा, ठीक है, मैं पिक्निक चलूँगी। वहीं मुलाकात हो जाएगी।

जब रविवार को वे लोग सुनंदा को साथ लेने के लिए उसके घर पहुँचे, सुनंदा की कई सालों बाद अरविंद से मुलाकात हुई। अरविंद जयदेव से अधिक वयस्क दिख रहा था और अब वह चश्मा लगाने लगा था, किंतु उसका चश्मा जयदेव के चश्मे की तरह बाइफोकल चालीसा चश्मा है या नहीं, सुनंदा जान नहीं पाई। अरविंद बैंक में नौकरी करता था। शायद काफी पहले शादी भी कर चुका था और अब कवि जैसा नहीं दिखता था। जयदेव से उसकी कई तरह से तुलना करने के बाद सुनंदा ने हर विषय में जयदेव को अधिक नंबर दिए, किंतु जब अरविंद ने उसे कैसी हो—कैसी हैं नहीं—कहकर पूछा, सुनंदा की धड़कनें कुछ तेज हो गईं। गाड़ी में बैठे होने के दौरान सुनंदा ने अति सावधानी से अरविंद के स्पर्श से अपनी देह को यथासंभव दूर रखा और लेक के पास उतरकर घास पर बैठे होने के समय भी वह इस बात के प्रति सतर्क थी।

हालाँकि सुनंदा को इतनी सतर्कता की कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि अरविंद में उसके प्रति किसी तरह का आग्रह या कौतूहल दिखाई नहीं दे रहा था। अरविंद समिता के पति को अपनी नौकरी के अच्छे-बुरे के बारे में बता रहा था और वे लोग आपस की तनख्वाह, महँगाई भत्ता इत्यादि के विषय में गंभीर चर्चा करने में व्यस्त थे। सुनंदा उनकी बातें सुनकर बोर हो रही थी और उस जगह जयदेव की उपस्थिति चाहती थी। उसने सोचा था, समिता आकर उनके कॉलेज के दिनों का प्रसंग छेड़कर बातचीत का रुख बदल देगी, लेकिन समिता खाने-पीने की चीजें व्यवस्थित करने में जुटी थी। इस तरह वह पिक्निक सुनंदा के लिए बोरियत भरा था और अरविंद के साथ उसकी बातचीत जरा भी भाव-उद्दीपक नहीं थी। सुनंदा को याद आया कि कॉलेज के दिनों में समिता उसके और अरविंद के रिश्ते को लेकर उससे तरह-तरह के मज़ाक किया करती थी। सुनंदा को उम्मीद थी कि समिता उसे कॉलेज की याद दिलाकर लज्जित करेगी। पर शायद समिता उन बातों को भूल चुकी थी या फिर इस वक्त जानबूझकर वह सुनंदा को उन बातों से वंचित कर रही थी जो वह सुनना चाह रही थी।

पिक्निक से लौटकर सुनंदा को घोर निराशा हुई। उसने सोचा था अरविंद से मिलने पर अतीत की रोमांचक कल्पनाओं की एक पुनरावृत्ति होगी और उसके लिए वह जयदेव के समक्ष खुद को अपराधी समझ रही थी। लेकिन वर्तमान की अनुभूति उसके लिए रोमांचरहित ही नहीं, बल्कि अत्यंत गद्यमय थी, जो उसकी पुरानी जिंदगी के भावुक अनुभव की वास्तविकता के प्रति संदेह उत्पन्न कर रही थी। किंतु सुनंदा ने कॉलेज के समय अरविंद को लिखे असंख्य प्रेमपत्रों की बात याद की और मन ही मन जयदेव से क्षमा चाही।

उस दिन जयदेव के दफ्तर से लौटने पर सुनंदा ने फिर से अपनी पिक्निक का प्रसंग छेड़ते हुए उससे बोली, जिस दिन हम पिक्निक पर जा रहे थे उस दिन समिता के पति न जाने क्यों तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे। पिक्निक की बात टालते हुए जयदेव ने पूछा, किसी विषय में कुछ कह रही थी। क्या? सुनंदा ने कुछ खिन्न होकर कहा, कुछ नहीं। उस दिन लेटे हुए किताब पढ़ते समय सुनंदा ने जयदेव से कहा, रविवार को पिक्निक चलने की बात याद है ना? चौबीस तारीख ना? तुम सबको सूचित कर देना। लेकिन रविवार को पिक्निक जाना नहीं हो पाया। दरअसल सुनंदा ने ही इसके लिए कोई चेष्टा नहीं की। क्योंकि इतनी जल्दी दुबारा पिक्निक चलने के लिए समिता को बुलाना उसे बिलकुल तर्कसंगत नहीं लगा।

उसके बाद सुनंदा ने तरह-तरह से जयदेव के आगे पिक्निक में गए होने का प्रसंग छेड़ने की चेष्टा की। जैसे, हम जिस दिन पिक्निक गए थे, उसके बाद से

फिर बारिश नहीं हुई। या झील जाने का रास्ता बहुत खराब है। या समिता खूब अच्छा सैंडविच बनाती है। जयदेव, जो कि अत्यंत सीधे स्वभाव का था, सुनंदा की इंगितपूर्ण बातें समझ नहीं पाता था और ऐसे उत्तर देता था जो सुनंदा के लिए निराशापूर्ण होता था। जैसे अखबार में छपा है मानसून इस बार दस दिन देर से आएगा, या म्युनिसपैलिटी के नए रेस्त्राँ में खाना खाई हो? यहाँ तक कि जिस दिन सुनंदा जिद करके जयदेव को समिता के घर ले गई, वहाँ भी किसी ने बातचीत के दौरान पिक्निक की बात या पिक्निक में उसकी और अरविंद की उपस्थिति के दैवीय संयोग के बारे में नहीं कहा। जब सुनंदा ने समिता से दुबारा पिक्निक जाने की बात कही, उस क्षण समिता के पति ने दफ्तर की कोई गंभीर बात कहकर जयदेव का ध्यान आकर्षित कर लिया।

इस तरह बार-बार असफल होने पर अंत में सुनंदा ने यह तय किया कि वह जयदेव को अपने पिक्निक के बारे में सीधे-सीधे बताएगी। जब जयदेव दफ्तर के लिए निकल रहा था, तब साहस बटोरकर सुनंदा ने उससे कहा कि तुमसे जरूरी बात करनी है, दफ्तर से लौट आइए तो कहूँगी। यदि दफ्तर से लौटकर जयदेव ने उससे उस जरूरी बात के बारे में पूछा होता तो शायद सुनंदा ने उससे सारी बातें बता दी होतीं। लेकिन जयदेव ने उससे कुछ नहीं पूछा और सुनंदा के लिए उस बात को उठाना संभव नहीं हुआ। अब सुनंदा अधिक परेशान रहने लगी और पिक्निक की वह घटना उसके मन में एक बोझ बनी रही। उस दिन जयदेव के दफ्तर चले जाने के बाद उसने अपना मन स्थिर किया और वही पुराना नीले रंग का कागज लेकर जयदेव के लिए चिट्ठी लिखने बैठ गई।

प्रियतम, हृदयेश्वर आदि से शुरू की गई चिट्ठियाँ उसने फाड़ दीं और इस बार उसने सीधा-सादा पत्र लिखा—मैं तुम्हें काफी दिनों से उस दिन के पिक्निक के बारे में बताना चाहते हुए भी नहीं बता पाई। पिक्निक में अरविंद भी था, जिसे मैं कॉलेज के दिनों से जानती हूँ। हालाँकि मेरी सहेलियाँ अरविंद और मुझे लेकर तरह-तरह की बातें करती थीं, विश्वास करो, हम दोनों के बीच वैसा कोई रिश्ता नही था। जबकि तुम्हारी अनुपस्थिति में अरविंद के साथ उस पिक्निक में जाना मेरे लिए उचित नहीं था। आशा है, तुम गलत नहीं समझोगे। उसने उस चिट्ठी को बार-बार पढ़ा और अंत में ले जाकर जयदेव के टेबुल पर रख दिया।

और उस दिन जयदेव के दफ्तर से लौटने से पहले वह वहाँ से वह चिट्ठी उठा लाकर कॉलेज के दिनों में अरविंद को लिखी असंख्य चिट्ठियों की तरह उसे भी फाड़ कर फेंक दिया।

पहचान

सुश्री उर्मिला, उच्च शिक्षित, बद्धिमती और मेहनती थी। लेकिन इन सारे गुणों ने उसे उपयुक्त नौकरी दिलाने में कोई मदद नहीं की। एम.ए.,एम.फिल. करने के बाद कोई और काम न मिलने के कारण वह पीएच.डी. की तैयारी कर रही थी और नौकरी ढूंढ़ रही थी। वह नारी-स्वातंत्र्य और समानता तथा विमेन्स लिब में विश्वास करती थी और उसने तय कर लिया था कि अपनी विद्या-बुद्धि के बल पर नौकरी करके पुरुषों के समकक्ष रहेगी। हालाँकि उसके घर में इसके लिए किसी प्रकार की बंदिश नहीं थी और उसकी शादी कराकर उसके माँ-बाप खुश होते, परंतु वह स्वाधीन रूप से जीवन बिताने के अपने निर्णय पर अटल थी।

अपनी भावी योजनाओं के लिए उर्मिला ने जिस विषय पर गौर नहीं किया था, वह था सामाजिक व्यवस्था। कॉलेज के ऑडिटोरियम में भाषण देते वक्त सारी समस्याएं सीधी-सीधी और साफ-साफ दिखाई देती थीं, हर प्रश्न की दो दिशाएँ थीं और उर्मिला के लिए कोई द्वंद्व नहीं था सटीक रास्ता ढूंढ़ने में। किंतु विमेंस कॉलेज की चारदीवारी, लेडीज स्पेशल बस और साथ पढ़ने वाली सहेलियों से बाहर की दुनिया से उर्मिला पूरी तरह अपरिचित थी। इस नई दुनिया से उर्मिला का पहला परिचय तब हुआ जब वह नौकरी ढूंढ़ने निकली।

आम लोगों की बस उसके कॉलेज जाने वाली लेडीज स्पेशल-सी बिलकुल नहीं थी। उसमें अंदर जाने के लिए कुश्ती-कसरत करनी पड़ती थी और उन बसों के यात्रियों व कर्मचारियों का व्यवहार शालीनता से परे होता था। बसों में लड़कियों के साथ अश्लील आचरण के बारे में उर्मिला ने अखबारों में पढ़ा था, लेकिन इस वक्त उसे पहली बार एहसास हो रहा था। बस में घुसते समय अथवा भीतर भीड़ में कोई-कोई उसकी छाती में हाथ लगा देता था। पहली बार उर्मिला को यह व्यवहार अति घृणित व अपमानजनक लगा था और उसे हैरत हुई थी। पल भर के लिए उसने सोचा था कि चिल्लाकर उस आदमी के गाल पर एक थप्पड़ जड़ देगी। परंतु कुछ सोचने के बाद उसे लगा कि ऐसे किसी घटिया तीसरे दर्जे

के ओछे आदमी के लिए वह अपना समय और श्रम बर्बाद करके कोई नाटकीय हालात पैदा नहीं करेगी। कुछ दिनों तक बस में आवाजाही करने के बाद यह भी समझ गई कि महिलाओं के लिए बस में सफर करना इसी तरह से कटु अनुभव हैं। क्योंकि मौका मिलते ही कुछ लोग महिलाओं की छाती, जाँघ और शरीर से छेड़खानी किया करते थे। उस बात से उर्मिला हैरत, खीझ या अपमानित महसूस नहीं करती थी। सिर्फ उस अभद्र व्यक्ति से मन ही मन कहती, बास्टर्ड।

यह अशालीनता केवल बस तक ही सीमित नहीं थी। रास्ता, घाट, दुकान, बाजार, दफ्तर, रेलवे स्टेशन हर जगह फैले हुए थे ऐसे जारज। मानों एक महिला के लिए इस देश में सम्मानपूर्वक कहीं आना-जाना असंभव है। उर्मिला ने यह स्वीकार कर लिया कि रास्ते में चलते समय नाली के रोमियो अश्लील हरकतें करेंगे, दुकानों पर लोग बिन वजह अंतरंग होने की कोशिश करेंगे और पड़ोसी वयस्क भद्र पुरुष हँसी-मजाक उड़ाना अपना अधिकार समझेंगे। लेकिन उर्मिला हार मानने को तैयार नहीं थी। उसने मन ही मन कहा, वह अपने निश्चय से कदापि विचलित नहीं होगी, और इस पुरुष प्रधान समाज में अपना स्थान बनाकर रहेगी।

नौकरी के लिए किसी की मदद न लेकर अखबारों के विज्ञापन देखकर उसने खुद विभिन्न स्थानों पर आवेदन-पत्र भेजा। नौकरी के लिए उसका पहला इंटरव्यू था किसी एक्सपोर्ट हाउस में। इंटरव्यू-स्थल था कंपनी के डायरेक्टर का निजी मकान, जिसके बाहरी कमरे में उस जैसी और कई लड़कियाँ अपनी बारी आने का इंतजार कर रही थीं। बुलावा सुनकर जब वह अंदर गई, उसने देखा, वह कमरा महज एक सुंदर ड्रांइग-रूम है। सोफे पर तीन सज्जन बैठे थे, जिनकी सूरत हिंदी फिल्मों के खलनायकों से काफी मिलती थी। उस दृश्य को पूरा करने के लिए उनके आगे शराब की बोतल, गिलास और सोडा रखा था और वे लोग हाथ में गिलास लिए हुए आपस में किसी रोचक विचार-विमर्श में व्यस्त थे। उर्मिला के बैठते ही उस दल का सरदार जैसा दिखने वाला व्यक्ति उसकी ओर एक गिलास बढ़ाते हुए बोला, "प्लीज..."

उर्मिला उस परिस्थिति से कुछ विचलित हुई। पास वाले कमरे में और कुछ लड़कियाँ न बैठीं होतीं तो शायद वह आतंकित महसूस करती। खैर, अब उसने तय कर लिया कि वह इस कंपनी में नौकरी करने वाली नहीं है। वह अपना इंटरव्यू किसी तरह जल्द खत्म करना चाहती थी। उसने कहा, "नहीं, मैं नहीं पीती।"

सरदार बोला, "देखिए उर्मिला देवी, हमारा एक्सपोर्ट का बिजनेस है। कभी-कभार हमारे फॉरेन बायर्स आते हैं। इसके अलावा यहाँ सरकारी अफसरों

से भी अक्सर हमारा काम पड़ता है। उन्हें भी तो एंटरटेन करना होगा। हमने जिस पोस्ट के लिए विज्ञापन निकाला है, उसका मुख्य काम है अतिथियों का विशेष ध्यान रखना...।''

उर्मिला ने कहा, ''धन्यवाद। मैं यह काम नहीं कर सकती।'' सरदार ने कहा, ''सोच लीजिए। हमारे यहाँ तनख्वाह अच्छी है। इसके अलावा...।'' उर्मिला बोली, ''नहीं, मुझे नहीं चाहिए नौकरी।'' सरदार गिलास में शराब डालते हुए बोला, ''जैसी आपकी इच्छा। क्या चाय या कॉफी लेंगी?'' उर्मिला ने कहा, ''जी नहीं, धन्यवाद।''

कमरे से बाहर वह अन्य लड़कियों के पास थोड़ी देर बैठ गई। वह जानती थी कि उसके अलावा किसी और को नौकरी की जरूरत कहीं अधिक होगी और किसी न किसी को यह नौकरी मिलेगी ही। उर्मिला ने फिर सोचा, संभवतः वह आदमी ठीक बोल रहा है नौकरी के बारे में। एक्सपोर्ट के कारोबार में निश्चित रूप से लोगों को एंटरटेन करना पड़ता होगा और हॉस्टेस की जरूरत पड़ती होगी। उन तीन लोगों के साथ बैठकर उर्मिला ने इस काम के लिए मन ही मन एक लड़की को चुनने की कल्पना की और वहाँ से बाहर आते समय कोने में बैठी लाल स्वेटर वाली खूबसूरत लड़की को मन ही मन इस नौकरी के लिए चुना।

यह था उर्मिला का पहला पाठ। इस अनुभव से उसने यह सीखा कि ऐसे एक्सपोर्ट हाउस जैसे संदेहास्पद ऑफिसों में दरख्वास्त कभी नहीं भेजेगी, सिर्फ सरकारी और अर्ध-सरकारी दफ्तरों में ही कोशिश करेगी। इसके लिए उसे सरकारी रोजगार कार्यालय में अपना नाम दर्ज कराना पड़ा और तरह-तरह की प्रतियोगी परीक्षाएँ देनी पड़ीं। इन परीक्षाओं को देने के लिए उसने अपनी पीएच.डी. का काम छोड़ दिया और सारा समय नौकरी ढूंढ़ने में लगाया।

इसी तरह लगभग एक वर्ष बीत गया, पर उसे कोई नौकरी नहीं मिली। उसने फिर से छोटे-मोटे दफ्तरों में दरख्वास्त भेजी और अनेक साक्षात्कारों का सामना किया। अनेक साक्षात्कारों में हालाँकि उसने काफी अच्छी तरह जवाब दिया था, लेकिन लड़की होना ही उसके आड़े आता था। उससे ऐसे कई सवाल किए जाते थे। इस नौकरी में काफी टूर करना पड़ेगा। आप जा तो सकेंगी? अथवा हम आपकी ट्रेनिंग में काफी पैसा खर्च करेंगे? आप शादी-वादी के बाद नौकरी छोड़ तो नहीं देंगी? अथवा, इस काम में फील्ड में जाकर घंटों खड़े रहकर काम की निगरानी करनी होगी, कर सकेंगी? उर्मिला कहना चाहती थी, हाँ कर सकती हूँ? बाहर बैठे इंटरव्यू देने आए इन अधमरे युवकों से किसी भी गुण में कम नहीं

हूँ। मैं शादी नहीं करूँगी। नौकरी करूँगी। दूर पर जाऊँगी, धूप में खड़े होकर बीसियों पुरुषों के काम की निगरानी अकेले करूँगी। मुझे नौकरी दो तो सही।

लेकिन उसे नौकरी किसी ने नहीं दी। उसने खीझकर शॉटहैंड और टाइपिंग का कोर्स पूरा किया। क्लास में टाइपराटर के आगे बैठकर काम सीखते समय पास बैठे युवकों को देखकर वह अपने में कोई कमी महसूस नहीं कर पा रही थी। बल्कि उसके साथ मित्रता करने को आतुर युवकों को वह खीझ या क्रोध से नहीं, बल्कि दयनीय नजर से देखा करती थी।

हालाँकि वह नौकरी पाने में समर्थ नहीं हो पाई थी, पर यह साल उर्मिला के लिए अनुभव से भरे हुए थे और उसने दुनिया को पूरी तरह नई एवं व्यावहारिक दृष्टि से देखना शुरू कर दिया। उस नए नजरिये में रोमांचक विद्रोह के भाव अथवा उसके कॉलेज के दिनों के आवश्यक अहंकार नहीं थे। सड़क किनारे के रोमियो की अश्लील टिप्पणियों को अब वह अनसुना कर देती थी और बस की भीड़ में कोई उसके शरीर में हाथ लगाने पर वह शर्म अथवा खीझ प्रकट न करके उन लोगों की ओर सिर्फ गुस्से से देखा करती और वहाँ से हट जाती। इंटरव्यू में कोई कभी व्यक्तिगत सवाल करता तो वह विचलित नहीं होती थी। कई मर्तबा उससे पूछा जाता, शादी के बारे में आप क्या सोचती हैं? शांत उर्मिला जवाब देती, "मैंने तय किया है कि शादी नहीं करूँगी।"

उर्मिला का यह उत्तर महज एक औपचारिक उत्तर था, यह सच नहीं था। वह एक लंबे अरसे से उदयन को चाहती थी और उसी से शादी करने का पक्का इरादा था। लेकिन जब बीच-बीच में उदयन उससे शादी कर लेने के बारे में कहता, उर्मिला उसकी बात टाल जाती। वह कहती, "पहले मेरी नौकरी लग जाए।" उदयन के साथ अपने संबंध में वह समानता पर विश्वास करती थी, इसलिए शादी के बाद वह पति पर बोझ नहीं बनना चाहती थी। उदयन निकट शहर में नौकरी करता था और वहीं रहता था। वे दोनों नियमित पत्राचार करते थे और बीच-बीच में उदयन उसके पास आता भी था। नौकरी ढूंढ़ने के साथ ही उदयन के पत्र का इंतजार करना उर्मिला के रोजमर्रा के कार्यक्रम में शामिल था। वह अपने रोजाना के दिलचस्प अनुभव उदयन को विस्तार से लिखा करती थी। उदयन कभी-कभी खूब परेशान-सा लिखता, "बहुत हो गया तुम्हारा नौकरी ढूंढ़ना। अब सब कुछ छोड़कर यहीं चली आओ।" उर्मिला जवाब देती, "नहीं, पहले मैं कुछ दिन नौकरी कर लूँ। उसके बाद भले ही तुम्हारे पास चली आऊँगी।"

नौकरी पाने में असमर्थ हो इस बार उर्मिला के मन में निराशा उपजी। कभी-कभी लगा वह अपनी सारी कोशिशें छोड़कर उदयन के पास चली जाएगी।

कौन सहे यह बार-बार की अस्वीकृति, रास्ता-घाट की टीका-टिप्पणी और लड़की होने की सार्वजनिक अवमानना? जिस दिन दफ्तर के आगे पाँच घंटे बैठने के बाद उसने जाना कि उसे इंटरव्यू के लिए बुलावा भी नहीं भेजा गया है, उसका मन उदास हो गया और उसने घर लौटकर उदयन को एक चिट्ठी लिखी। लेकिन थोड़ी देर के बाद मन स्थिर होने पर उसने चिट्ठी फाड़ दी और तय किया कि वह अपनी जिंदगी इस तरह उद्देश्यहीन होकर इधर-उधर बिखरने नहीं देगी।

उर्मिला का सौभाग्य था कि घर में किसी ने उसकी गतिविधियों में बाधा नहीं डाली। उसके घर वाले उदयन को जानते थे और उर्मिला तथा उसके संबंधों से अवगत थे। उदयन बीच-बीच में आकर उर्मिला से मिला करता था और उर्मिला ने यह बात किसी से छिपायी नहीं थी। उस बार छुट्टियों में आकर उर्मिला से मुलाकात होने पर उसने पुनः वही बात उठाई और बोला, "अब मैं अकेले नहीं रह सकता। तुम मेरे पास चली आओ।" उर्मिला ने मुस्कराते हुए कहा, "चलो ठीक है, मैं तुम्हारे पास चली आऊँगी और साथ रहूँगी। लेकिन हम शादी तभी करेंगे जब मुझे नौकरी मिल जाएगी।" उदयन ने कहा, "किसने रोका है तुम्हें शादी के बाद नौकरी से? तुम तो कॉलेज के दिनों की डिबेटिंग सोसाइटी के तर्क करने-सी बातें कर रही हो। तुम्हें मालूम ही है, नौकरी पाने के लिए मुझे कितनी परेशानी उठानी पड़ी। इसके अलावा यदि तुम्हें नौकरी मिली भी तो न जाने कहाँ मिलेगी। फिर साथ-साथ कैसे रह सकेंगे? उसके तमाम तर्कों को हँसी में उड़ाते हुए उसका हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर उर्मिला ने कहा, "तुम देखना सब ठीक हो जाएगा। बस जरा धीरज रखो।"

अंत में उर्मिला की साध पूरी हुई और उसे एक अच्छी नौकरी मिल गई। एक सरकारी संस्था में शोध का कार्य। नौकरी ज्वाइन करने जाते समय रास्ते में डाक घर जाकर उसने उदयन को एक छोटी-सी चिट्ठी लिखी, "अब हमारी प्रतीक्षा पूरी हुई।" पहले दिन ऑफिस के सारे कागजात दस्तखत करने के बाद उसने बड़े बाबू से मिलकर अपने बैठने का स्थान तय किया। टेबुल पर इकट्ठी फाइलों को पलटकर देखा। अपने चहुँ ओर बैठे अफसरों को देखकर उनका अध्ययन किया। शाम को बड़े बाबू ने आकर उससे कहा, "आप जाकर डायरेक्टर साहब से मिल आइए।"

डायरेक्टर इस कार्यालय के सर्वोच्च अधिकारी थे। उर्मिला अपना पेन बंद करते हुए उठकर खड़ी हो गई। बड़े बाबू उसे डायरेक्टर के कमरे तक साथ ले गए और बाहर दरवाजे के पास छोड़ते हुए बोले, "डायरेक्टर साहब बहुत अच्छे

आदमी हैं, लेकिन काम में बहुत सख्त हैं।" उर्मिला ने मन ही मन सोचा, चलो अच्छा है। जब वह अंदर गई डायरेक्टर साहब कुछ काम कर रहे थे। उन्होंने कहा, बैठो। उर्मिला ने उस भद्र व्यक्ति के चेहरे की ओर देखा। ऐसे अनेक अफसरों के समक्ष कई इंटरव्यू दे चुकने के कारण वह ऐसे लोगों से वाकिफ थी। डायरेक्टर का चेहरा देखकर उर्मिला ने उनके चरित्र का विश्लेषण करने की कोशिश की। हाँ, अच्छे आदमी है। लेकिन काम में रूखे और कठोर हो सकते हैं। फाइल से सिर उठाकर इस बार उस भद्र व्यक्ति ने उससे कहा, "तुमने शायद आज ही ज्वाइन किया है। तुम्हें यहाँ बहुत काम करना होगा। कॉलेज में क्या पढ़ा था? "इकॉनामिक्स से एम.ए. और एम. फिल्. करने के बाद पीएच.डी. कर रही थी," उर्मिला ने कहा। "स्टाटिस्टिक्स?" "जी, बी.ए. में एम.ए. में भी।" "बहुत अच्छा," "उन्होंने अपनी राय दी, "तुम्हारे काम आएगा।"

उसके बाद डायरेक्टर ने उससे और कोई सवाल नहीं किया। कुछ क्षण इस तरह खामोशी में बीत गए। उन्होंने उससे जाने को भी नहीं कहा और उर्मिला ने सिर ऊपर करके देखा कि वे उसकी ओर घूर रहे हैं। इस बार उनके चेहरे पर एक तरह की शून्य अभिव्यक्ति थी और वे उसकी तरफ एकटक ताक रहे थे। कुछ झेंपते हुए उर्मिला उठ खड़ी हुई। उसने कहा, "तो मैं चलती हूँ।" उसने बाहर जाने को डग बढ़ाया ही था कि उस सज्जन ने कहा, "सुनो!" उर्मिला ने उनकी ओर पलटकर देखा। वे सज्जन उसकी तरफ देखकर जरा झिझकते हुए बोले, "तुम आज शाम फ्री हो?"

ओ, नो, उर्मिला ने मन ही मन कहा। फिर उस पुरुष-प्रधान की पुनरावृत्ति। उसे हेय और व्यक्तित्वहीन करने वाला निमंत्रण। वह तो महज एक असहाय नारी है, यह प्रमाणित करने की कोशिश। नहीं, इस बात को यहीं खत्म कर देना चाहिए। हमेशा के लिए। जरा भी विचलित न होते हुए उर्मिला ने उस सज्जन की आँखों में सीधे देखते हुए कहा, "नहीं, आज शाम मैं फ्री नहीं हूँ। इसके अलावा मैं शाम को किसी का निमंत्रण स्वीकार करके कहीं नहीं जाती।" उसका स्वर बिलकुल दृढ़ और निश्चित था और उस सज्जन का चेहरा कुछ फीका पड़ गया। हतप्रभ हो उन्होंने पुनः फाइल पर सिर झुका लिया। विजय के गर्व से कमरे से बाहर आते हुए उर्मिला ने मन ही मन कहा, बास्टर्ड। डायरेक्टर के कमरे से बाहर अपने टेबुल तक कुछ ही कदमों की दूरी तय करते हुए उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह सरकारी नौकरी करती है, किसी का व्यक्तिगत काम नहीं। वह खुद को अपमानित नहीं होने देगी और अच्छा काम करके यह प्रमाणित कर

देगी कि वह दूसरों के समकक्ष है। अपने टेबुल के पास आकर उसने राहतभरी साँस ली और अपना काम समझने की कोशिश करने लगी।

बस में घर लौटते समय उसने उस दिन आफिस से मिला अपना आइडेंटिटी कार्ड पलटकर देखा। अब उसकी अपनी एक आइडेंटिटी थी, एक अलग पहचान थी। वह महज़ किसी की बेटी या प्रेमिका नहीं थी। वह थी एक सरकारी संस्था की रिसर्च ऑफीसर। अब उसकी अपनी नौकरी थी और वह किसी पर निर्भर न करके खुद पैरों पर खड़ी थी। इस छोटे-से कागज ने उसमें अथाह शांति और तृप्ति भर दिया था। यहाँ तक कि उसने डायरेक्टर के उस तात्कालिक चूक को भी मन ही मन माफ कर दिया था। उसने मन ही मन कहा, मैं अपने इस अस्तित्व को कभी भी हाथ से जाने नहीं दूँगी। न सुरक्षा के लिए, न स्वच्छंदता के लिए। यहां तक कि प्यार के लिए भी नहीं। घर पहुँचकर उसने उदयन को एक लंबी चिट्ठी लिखी और अंत में लिखा, "इस बार जब तुम आना तो अपने उस दोस्त के घर मत टिकना। इस बार किसी होटल में रूम ले लेना। मैं तुमसे वहीं आकर मिलूँगी।"

दूसरे दिन से वह अपने काम में जुट गई और कुछ ही दिनों में वह यह भी जान गई कि अपने काम में वह किसी से कम नहीं है। इस बात ने उसके मन में एक नया आत्मविश्वास भर दिया। उसने उदयन को पत्र लिखा, "मैं अपनी नौकरी से बहुत खुश हूँ। जब आवोगे तब ऑफिस की मज़ेदार बातें बताऊँगी।" महीने भर बाद जब उदयन उससे ऑफिस में आकर मिला, उर्मिला एक लंबा-चौड़ा स्टेटमेंट लिए अपने काम में व्यस्त थी। उदयन को पास वाली कुर्सी में बैठाकर उर्मिला ने कहा, "बस थोड़ा-सा इंतज़ार करो, यह फाइल डायरेक्टर को भिजवाकर बाहर चलते हैं।" उदयन कुछ नाराज़ जान पड़ा, लेकिन उसके पास बैठकर इंतज़ार करने लगा। जब वे दोनों बाहर आए, उर्मिला ने कहा, "तुम्हें हमारा ऑफिस कैसा लगा?" ऑफिस के जिस कमरे में उर्मिला बैठती थी, उसमें और कोई लड़की नहीं थी। इतने पुरुषों के बीच उर्मिला का बैठना उदयन को अच्छा नहीं लगा। फिर भी उसने कहा, "अच्छा है।"

उर्मिला ने कहा, "मैंने तुमसे कहा था ना होटल में रहने के लिए, तुम फिर उसी दोस्त के घर क्यों टिक गए?" उदयन बोला, "मैं इतने रुपए क्यों खर्च करता?" उर्मिला बोली, "तुम भूल रहे हो कि अब हम दोनों कमाने लगे है। अब तुम्हीं बताओ हम कहाँ मिलेंगे?" "क्यों? जहाँ पहले मिला करते थे।" जवाब दिया उदयन ने। "तुम कुछ भी नहीं समझोगे", उर्मिला ने कहा, "मैं तुमसे और तरीके से मिलना चाहती थी। चलो, चाय पीएँ।"

चाय पीते हुए उर्मिला ने उदयन को अपने ऑफिस के बारे में बताया। उदयन ने पूछा, "तुम्हारा बॉस कैसा है?" उर्मिला ने कहा, "अच्छा आदमी है।" इतना कहने के बाद उसने उदयन को अपने पहले दिन का अनुभव भी बताया। सुनने के बाद उदयन ने कहा, "स्साला..." और रुक्ष होते हुए उर्मिला को बोला, "इस आदमी को कैसे अच्छा आदमी कह रही हो?" उर्मिला बोली, "उसी दिन कुछ कह गए थे, लेकिन उसके बाद से वे मुझसे ससम्मान बातें करते हैं। वे मेरे काम से संतुष्ट हैं। ऑफिस में सभी उन्हें चाहते है।" यह सुनकर उदयन अन्यमनस्क-सा हो गया और उर्मिला के अन्य बातें पूछते समय वह संक्षेप में जवाब देने लगा। कुछ देर बाद उदयन ने पूछा, "क्या तुम फाइलें सीधे डायरेक्टर को भेजती हो?" शुरू-शुरू में एक और ऑफीसर के जरिये फाइलें जाती थीं, लेकिन मेरा अच्छा काम देखकर डायरेक्टर ने फाइलें सीधे भेजने का आर्डर दिया।" उर्मिला ने यह बात बड़े गर्व से कही, लेकिन उदयन ने सिर्फ हुँकारी भरी।

पहले शाम को दोनों पार्क में जाकर बैठा करते थे और अंधेरा हो जाने पर भी उदयन उसे वहाँ बैठे रहने को बाध्य करता था। पार्क के अंधेरे में उदयन उसे छूने की कोशिश करता और तब उसे संयत करना उर्मिला के लिए एक समस्या बन जाती। लेकिन आज शाम को चाय पीने के बाद उदयन काम का बहाना बनाकर जाने लगा। उर्मिला ने कहा, "चलो, थोड़ी ही देर के लिए सही, चलकर पार्क में बैठे।" पार्क के परिचित व आत्मीय परिवेश में बैठकर आज वे लोग फिर पीछे लौट गए। उदयन ने कहा, "देखो उर्मिला, और देर न करके चलो जल्दी शादी कर लें।" उर्मिला बोली, "इतनी भी जल्दी क्या है? मैंने तो अभी नौकरी शुरू ही की है। कुछ दिन बीतने दो।" उदयन ने कुछ खीझते हुए कहा, "अब मैं इंतजार नहीं कर सकता।" उर्मिला ने व्यंग्य कसते हुए कहा, "तो फिर जाकर किसी और से कर लो शादी।"

उदयन कुछ गंभीर होते हुए उससे हटकर बैठ गया और उर्मिला के लाख मनाने पर भी उससे हँसी-खुशी बात नहीं की। अंधेरा हो जाने के बावजूद वह उर्मिला से दूर ही बैठा रहा। "तुम्हें हो क्या गया है" कहकर खुद उर्मिला ही उसके करीब जाकर बैठ गई और उसे छूने की कोशिश करने लगी। इतने पर भी उसे न पिघलते देख उर्मिला ने कहा, "चलो, अब चलकर तुम किसी होटल में कमरा ले लो। एकांत में बैठकर बातें करेंगे। उदयन बोला, "यहाँ भी तो एकांत है।" उसे चिढ़ाने के लिए उर्मिला ने कहा, "लेकिन हर बात के लिए नहीं।"

पार्क से निकलते समय उदयन ने पूछा, "कल कहाँ होगी मुलाकात? मैं तो शाम को चला जाऊँगा। उर्मिला ने कहा, "तुम लंच में हमारे ऑफिस चले आना।"

उदयन बोला, "मैं तुम्हारे ऑफिस नहीं आ सकता। बल्कि तुम्हीं छुट्टी ले लो तो बेहतर है।" उर्मिला बोली, "मैंने हाल ही में तो नौकरी ज्वाइन की है। छुट्टी कैसे मांगू? बल्कि तुम्हीं क्यों नहीं ले लेते और एक दिन की छुट्टी।" उदयन बोला, "ऑफिस में मुझे भी जरूरी काम है। हमारे हाक़िम तुम्हारे डायरेक्टर की तरह इतने अच्छे नहीं हैं। बहुत सख्त हैं।" बहरहाल, जाने से पहले उर्मिला ने अगले दिन उसे अपने ऑफिस में आने को राजी कर लिया।

अगले दिन उससे थोड़ी देर मिलकर उदयन चला गया। फिर से ऑफिस के काम में मन लगाते हुए उर्मिला ने सोचा, उदयन बड़ा अद्‌भुत आदमी है। बिना वजह नाराज हो जाता है। चलो, चिट्‌ठी में सारी बातें समझा दूंगी। लेकिन काफी दिनों तक उर्मिला उसे चिट्‌ठी नहीं लिख सकी, क्योंकि उस दौरान ऑफिस का भी काफी काम उसे घर पर लाना पड़ा। जब उसे उदयन को पत्र लिखने का मौका मिला, उसके पास वक्त बहुत कम था इसलिए उसने कई पंक्तियों में चिट्‌ठी लिखी, जिसमें उसने जितनी बातें लिखने की सोची थी, कुछ भी लिखना संभव नहीं हुआ।

अब ऑफिस में उर्मिला का काम बढ़ने लगा। सरकारी दफ्तरों का यह नियम है कि जो अच्छा काम करता है, उस पर अधिक से अधिक काम लाद दिया जाता है। उर्मिला भी इसी नियम का शिकार हो गई। उसे इस बात का कोई क्षोभ नहीं था, क्योंकि वह काम में अपनी निपुणता प्रमाणित करने का अवसर तलाश रही थी। अब किसी गंभीर और जटिल विषय पर विचार-विमर्श करना होता तो डायरेक्टर उसे ही बुलाते और उसकी राय लेते। अब उसे उनके व्यवहार में किसी तरह की असयंमता दिखाई नहीं देती थी। डायरेक्टर उसे ऑफिस के अन्य लोगों की तरह समान नजर से देखते थे एवं उसका नारी होना उनके लिए किसी सुविधा अथवा असुविधा का कारण नहीं था। आफिस में दूसरों के साथ उसके अच्छे संबंध थे। शुरू-शुरू में जिन लोगों ने रोमांचक रूप से आत्मीय होने की कोशिश की थी, अब उन्होंने भी उसे पहचान लिया था और खुद को संयत कर लिया था। वह ऑफिस के सहकर्मियों के साथ हर दृष्टि से समकक्ष थी और वे लोग भी अब उसे केवल नारी के रूप में नहीं देखते थे।

ऑफिस के काम के अलावा उर्मिला को ऑफिस के और जिस काम के प्रति रुचि थी, वह थी ऑफिस के छोटे-छोटे पदों पर कार्यरत महिलाओं का खयाल रखना। उनसे बातचीत करने के बाद जल्दी ही उसकी समझ में आ गया कि ये महिलाएँ अपनी तकदीर के भरोसे जो जहाँ है, वहीं खुश थीं। उनमें अपने व

अपने काम के लिए कोई अभिमान नहीं था और उन्होंने नारी होने संबंधी द्वितीय श्रेणी की नागरिकता को पूरी तरह स्वीकार कर लिया था। उनमें से कोई-कोई अपने काम के लिए दया की भीख मांगती थी तो कोई अपनी नारीत्व की चपल रसिकता की एवज में काम से बचने की कोशिश किया करती थीं। उर्मिला उनके लिए कोई और स्वाभिमान भरा भविष्य नहीं देख पा रही थी। अंत में उर्मिला ने उनकी हिमायती और सहायक होने की इच्छा से खुद को अलग कर लिया था।

अपनी नौकरी को लेकर उसकी सबसे अधिक समस्या थी उदयन के साथ। उदयन उससे बार-बार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में कहा करता था कि वह नौकरी छोड़कर शादी करके अपना घर बसाए। उर्मिला उसे समझाती, "देखो, कितनी मुश्किल से तो नौकरी मिली है। क्या यकायक छोड़ देना ठीक होगा?" उदयन कभी-कभी उससे कहा करता, "शायद तुम्हारी शादी करने की इच्छा नहीं है। मुझे ठीक-ठीक तारीख बता दो, कब शादी करेंगे।" उर्मिला कहा करती, "इतनी बेसब्री क्यों? मैं तो तुमसे कहती हूँ कि बीच-बीच में यहाँ आकर होटल में रहो। या फिर चलो हम लंबी छुट्टी लेकर कहीं चलते हैं। और तीन महीने बाद मुझे लीव ट्रेवल कंसेशन भी मिलेगा।"

कभी-कभी उर्मिला अपने ऑफिस की बात बताते हुए कहती, "जानते हो, मुझसे मेरे डायरेक्टर कह रहे थे कि इस बार फील्ड वर्क के लिए मुझे दौरे पर भेजेंगे। मैं पहले तुम्हारे ही शहर का प्रोग्राम बनाऊँगी।" उदयन ने कहा, "तुम अकेली कैसे जाओगी दौरे पर?" उर्मिला कहती, "तुम परेशान मत होओ, मैं सारा इंतज़ाम कर लूंगी, तुम्हें कुछ सोचने की जरूरत नहीं।" एक दिन उर्मिला ने कहा, "इस वर्ष के कैरेक्टर रोल में मेरे बारे में सबसे अच्छी राय बनी है।" उदयन ने पूछा, "क्यो?" उर्मिला, जिसे अपने काम पर गर्व था, बोली, "क्यों का क्या मतलब? दफ्तर में मैं सबसे अच्छा काम करती हूँ इसलिए।" उदयन बोला, सभी दफ्तरों में लड़कियों को ऐसी ही अच्छी टिप्पणी मिलती है।" उर्मिला बोली, "तुम कुछ भी नहीं जानते। हमारे दफ्तर के सभी लेडी असिस्टेंट की सी.आर. खराब है। उन्हें कोई भी अपने सेक्शन में नहीं लेना चाहता।

अब उर्मिला दफ्तर के कामों में क्रमशः अधिक मग्न रहने लगी और छोटी-छोटी दिक्कतें उसे ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं लगती थीं। इधर-उधर की फूहड़ टिप्पणियों को वह अनसुना करने लगी, क्योंकि वे सब अति तुच्छ थीं, जिन्हें विचार अथवा उद्वेग के योग्य नहीं समझती थी। वह दफ्तर के कामों में जी-जान से जुटी रहती और डायरेक्टर के साथ तर्क करने से झिझकती नहीं थी। डायरेक्टर भी उसे

उसके अच्छे कामों की प्रशंसा करने के साथ ही उसकी गलती के लिए डांटने में भी झिझकते नहीं थे। उनसे उर्मिला का संबंध अब एक अच्छे उच्चस्थ और अधीनस्थ कर्मचारी का था। डायरेक्टर एक सच्चे, कार्यदक्ष और मितभाषी व्यक्ति थे और उर्मिला उन्हें सम्मान की नजर से देखती थी। जब उनके दफ्तर में अधिक वेतन वाला एक बड़ा पद खाली हुआ, डायरेक्टर ने ही उसे सुझाव दिया कि वह उस पद के लिए आवेदन-पत्र भरे, क्योंकि उस पद के लिए उसमें सारी उपयुक्त योग्याताएँ थीं।

उर्मिला ने जब उदयन को अपने आवेदन-पत्र भरने की बात बताई, उदयन ने पूछा, "कितनी तनख्वाह मिलेगी?" उदयन को तनख्वाह बताने के बाद उर्मिला ने कहा, "इतने दिन हो गए मैंने तो तुमसे पूछा तक नहीं कि तुम कितनी तनख्वाह पाते हो। तुम्हें कितनी मिलती है?"

उदयन बोला, "तुमने जिस पद के लिए आवेदन किया है, उससे मैं बहुत कम तनख्वाह पाता हूँ।" थोड़ी देर रुककर पूछा, "क्या तुम मेरी कम तनख्वाह की वजह से मुझसे शादी के लिए तैयार नहीं हो रही हो?"

"तुम कैसे सोच रहे हो यह सब?" उर्मिला बोली, "मैं तो जानती तक नहीं थी तुम कितनी तनख्वाह पाते-वाते हो। ठीक है, हम इसी साल शादी कर लेंगे।"

"यदि तुम्हें वह नई नौकरी मिल गई तो?"

"क्या फर्क पड़ता है उस नौकरी के मिलने न मिलने से?"

उदयन चुप रहा, लेकिन उर्मिला को लगा कि मानो वह यह चाहता है कि उर्मिला वह बड़ी नौकरी न करे। उसने कहा, "क्यों, क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि मुझे वह नौकरी मिल जाने पर हमें सहूलियत होगी?"

उदयन बोला, "मैं नहीं जानता। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि जबसे तुम नौकरी कर रही हो कुछ बदल-सी गई हो।"

"यह तो स्वाभाविक है," उर्मिला बोली, "अब मेरा भी एक अलग परिचय है। अब मैं किसी पर आश्रित या निर्भर नहीं हूँ।"

"क्या तुम यह सोचती हो कि शादी के बाद तुम अपनी आइडेंटीटि खो बैठोगी?"

"नहीं, किंतु नौकरी छोड़ देने पर पुनः किसी पर आश्रित हो जाऊंगी।"

"यदि शादी के बाद नौकरी छोड़नी पड़े?"

उर्मिला ने जवाब दिया, "मैं नौकरी नहीं छोड़ूँगी। चाहे कुछ भी हो।"

उदयन कुछ देर गंभीर रहा और उसके बाद कुछ कहे बगैर उठकर चला गया। उर्मिला ने मन ही मन कहा, "नहीं मैं अपनी पहचान नहीं खोऊंगी।"

उस नए पद के लिए आवेदन भरने के दिन से ही उर्मिला के लिए दफ्तर में अनेक समस्याएँ उपजने लगीं। उस पद के लिए उसके दफ्तर से ही कई अन्य आवेदक भी थे और उन्हें मालूम था कि उर्मिला की योग्यता उनसे अधिक है। इस बारे में वे लोग उस पर बार-बार तरह-तरह के कटाक्ष करते हुए बातें कहने लगे। मसलन, हमने आवेदन किया अवश्य है, पर नौकरी तो आप ही को मिलेगी। आजकल हर जगह महिलाओं का ही पहला अधिकार है। या, डायरेक्टर आपको बहुत चाहते हैं, जरूर यह पद आप ही को दिलाएँगे। इन सब बातों के मूल में जो व्यंग्य था वह यह कि यदि यह नौकरी आपको मिल जाती है तो वह आपके महिला होने की एकमात्र योग्यता के बल पर ही। उसके बाद उन लोगों ने उसे थोड़ा-थोड़ा परेशान करना भी शुरू कर दिया। उसके बारे में इधर-उधर की अफवाहें फैलाने लगे, उसके विरुद्ध डायरेक्टर के कान भरने लगे। उर्मिला समझ गई कि जब तक औरत एक गौण भूमिका में रहेगी, तब तक ठीक है, जब वह पुरुष के समकक्ष होने लगती है या उससे और ऊपर जाने लगती है, यह बात किसी से सही नहीं जाती।

यह सब देखकर उर्मिला खीझ उठी, पर हतोत्साहित नहीं हुई। वह इस पुरुष-प्रधान समाज से और उम्मीद कर भी क्या सकती थी? केवल बीच-बीच में उदयन का व्यवहार उसे परेशान करता रहता था। इस वजह से कभी-कभी उर्मिला उदयन से भी नाराज हो जाती थी। लेकिन अपनी इतने साल की मित्रता को याद करके वह खुद को संभाल लेती थी। फिर सोचती, इस बार मुलाकात होने पर वह उदयन को ठीक से समझा-बुझा देगी। लेकिन अपनी बात पर उर्मिला अडिग थी। कुछ भी हो, वह अपनी स्वतंत्रता, अपनी पहचान नहीं खोएगी।

लेकिन अंततः वह खाली पद उर्मिला को नहीं मिला। डायरेक्टर ने उसे बुलाकर बेहद अफसोस जताया और कहा, "ऐसे पदों के लिए प्रार्थी चुनने में कई तरह के दबाव होते हैं। तुम घबराओ मत। फिर नया पद बनेगा। दफ्तर के सहकर्मियों ने उससे फिर से अच्छा सलूक करना शुरू कर दिया। लेकिन उर्मिला के दिल में एक अफसोस रह गया। जब उसने नौकरी वाली बात उदयन से बताई, उसने देखा कि उसे वह नौकरी न मिलने पर मानो उदयन खुश था। यह बात भी उर्मिला को अच्छी नहीं लगी। उसने घर में बैठे-बैठे काफी सोचा। क्या वह नौकरी छोड़कर, शादी करके, बच्चे पैदा करके गृहिणी बन जाए? या नई नौकरी

के लिए फिर कोशिश करे। क्या उदयन उसे वाकई चाहता है? यदि चाहता है तो वह उसकी इच्छा, आग्रह, उद्देश्य, उच्चाकांक्षा से विमुख क्यों है? वह किससे पूछे ये सब बातें? माँ पिताजी से? या अपने दफ्तर के शुभचिंतक डायरेक्टर से?

वह इस बारे में जितना सोचती, उतना ही गम में डूब जाती। छोटी-छोटी बातें उसे फिर परेशान करने लगीं। बस में कोई उसके बदन से सटता तो वह खीझ उठती और सड़क किनारे अश्लील हरकतें करने वाले लोगों की ओर मुड़कर देखा करती। दफ्तर में वह किसी से सीधे मुंह बात नहीं करती थी और लंच के बाद कोई सहकर्मी उसे चाय पीने बुलाता तो वह साफ-साफ इंकार कर देती। उसकी बदनसीबी थी कि इस बीच काफी दिनों से उदयन का भी कोई पत्र नहीं आया और इससे वह और भी उदास हो गई थी। अब वह डायरेक्टर से भी ठीक से बातें नहीं करती थी और जब वे उससे आदरपूर्वक कुछ कहते, वह बड़े उखड़े हुए ढंग से जवाब देती। इसी तरह की उदासीन घड़ी में उसने दफ्तर में बैठे-बैठे अपना त्याग-पत्र लिखा और फिर उदयन को पत्र में लिखा कि वह नौकरी छोड़ देगी और जिस दिन भी वह चाहेगा उससे शादी कर लेगी।

दोनों पत्र लिखने के बाद उसने काफी राहत महसूस की। मानों उसकी लंबी लड़ाई का सहसा यहीं अंत हो गया। वह दोनों पत्र हाथ में लेकर खड़ी हो गई, चारों ओर निगाह डाली और किसी के प्रति बगैर किसी निश्चित उद्देश्य के मन ही मन बोली, "बास्टर्ड्स"! उसके बाद वह डायरेक्टर के कमरे का दरवाजा धकेलकर अंदर चली गई। उस वक्त अंदर और कोई नहीं था। डायरेक्टर कार्यव्यस्त थे और उसे देखकर बोले, "बैठो, बस एक मिनट, जरा यह फाइल निकाल दूं।" सामने की कुर्सी पर बैठी उर्मिला अपने बारे में सोचने लगी। बहुत हो गया, अब और नहीं। वह पुरानी बातें सोचने लगी : कॉलेज के अपने साहसिक दिन, रास्ते के कटु अनुभव, इंटरव्यू की अनिश्चित घड़ियाँ, सहकर्मियों की ईर्ष्या, उदयन की बेसब्री, अपनी खुद की स्वतंत्र पहचान। नहीं, वह अपनी जिंदगी इस तरह उद्देश्यहीन रूप से इधर-उधर बिखरने नहीं देगी। उसका जो प्राप्य है, उसे वह अपनी मुट्ठी में दबोचे रखेगी। उसकी जो जिंदगी है, उससे वह किसी और को खिलवाड़ नहीं करने देगी, वह खुद नियंत्रित करेगी अपना जीवन, जैसे चाहेगी।

डायरेक्टर ने फाइल बंद करके सिर ऊपर उठाया और उर्मिला की ओर देखकर बोला, "यस–"

उर्मिला ने उसका चिंतित चेहरा सहानुभूतिपूर्वक देखा और उसके चेहरे पर हँसी फूट पड़ी। कुछ खामोश रहकर उनकी आँखों में झाँकते हुए उसने अविचलित स्वर में पूछा, "आज शाम आप फ्री हैं?"

मरा हुआ आदमी

मैत्रेयी कमरे के एक कोने में बैठी शून्य में ताक रही थी। उसके चारों ओर बहुत-सी औरतें उसे घेरकर बैठी थीं। उनमें से कई रूमाल से आँखें पोंछ रही थीं। पर मैत्रेयी की आँखों में आँसू नहीं थे। इस वक्त एकांत में बैठकर वह कुछ सोचना चाहती थीं, किंतु यह संभव नहीं था। पिछली रात से ही बारी-बारी से औरतें उसे घेरे थीं और इस तरह उसे पल भर भी अकेले रहने का अवसर नहीं मिला।

शाम को आदित्य के मरने की खबर पाकर भी वह रोयी नहीं थी। बल्कि जब घर के सारे लोगों ने रोना-धोना शुरू कर दिया, वह निर्वाक् हो गई थी। यकायक उसे ऐसा लगा मानो अपने मरने की विशेष खबर तक आदित्य ने उससे जान-बूझकर छुपाए रखी। उसे यह भी लगा कि मरने से पहले आदित्य ने अपने प्रिय रिश्तेदारों और दुनिया के सभी जाने-अनजाने लोगों को अपना सारा स्नेह बाँट दिया था, सिर्फ उसे छोड़कर। यही बात मैत्रेयी के क्षोभ का कारण थी एवं मृत्यु के शोक की बनिस्बत यही दुःख उसे अधिक टीस रहा था।

मैत्रेयी को आदित्य से बहुत कुछ पूछना था। उसे पूछने का मौका न देकर इस तरह यकायक चल देना मानो आदित्य का उसके प्रति अंतिम विश्वासघात था। सुबह कॉलेज चले जाने के बाद मैत्रेयी ने आदित्य को शाम चार बजे अस्पताल की खाट पर ही देखा था। उस वक्त वह इंटेन्सिव केअर यूनिट में था। उसके पास जाने की इजाजत किसी को नहीं थी। शाम को यह सोचकर मैत्रेयी कुछ देर के लिए घर चली आई कि थोड़ी देर बाद पुनः अस्पताल लौट आएगी। पर उसे दुबारा लौटने की जरूरत नहीं पड़ी। उसके घर पर फोन आ गया कि आदित्य नहीं रहा।

जब वह वहाँ से उठकर बाथरूम की ओर जाने लगी, उसके साथ-साथ दो औरतें भी गईं और दरवाजे के बाहर उसका इंतजार करने लगीं। मुँह धोते-धोते मैत्रेयी उनकी बातें अच्छी तरह सुन रही थी। एक ने कहा, "मैत्रेयी को रोना चाहिए था। यदि वह जी भरकर रो लेती तो उसका मन हल्का हो जाता।" दूसरी ने कहा, "नहीं, यदि वह रोने लगती तो उसकी लड़की को कौन सँभालता?"—मैत्रेयी को

ये बातें हास्यास्पद लगीं। आदित्य के साथ अपने रिश्ते को याद कर वह पुनः आदित्य और खुद से खीझ उठी।

लेकिन रानू के समक्ष ऐसी कोई समस्या नहीं थी स्कूल से लौटने पर उसे पता चला था कि उसके पिता अस्पताल में हैं। इसके बाद शाम को घर पर रोना-धोना सुनकर उसने समझ लिया था कि उसके पिता मर चुके हैं। उस रोज स्कूल में काफी देर तक खेलने के कारण शाम को उसे थकावट महसूस होने लगी। रात का खाना खाकर वह जल्दी ही सो गई। उसके सो जाने के बाद रात को आदित्य का शव घर पर लाया गया था। सुबह घर भर में शोक-संतप्त लोगों के चेहरे देखकर वह भी थोड़ा रोयी थी। उसके बाद चुप हो गई थी। यहाँ तक कि जब एक पड़ोसन उसे पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगी, तब भी वह नहीं रोयी।

सच कहा जाए तो रानू अपने पिता की मृत्यु को अभी तक सही-सही स्वीकार नहीं कर पाई थी। उसे लग रहा था कि पिताजी दौरे पर कहीं गये हुए हैं, दो-चार दिनों में लौट आएँगे। घर भर में फैले आदित्य के कपड़े, जूते-चप्पल, पुस्तकें उसे इस बात से आश्वस्त भी करा रहे थे। हालाँकि वह जानती थी कि यह सच नहीं है, फिर भी अपने मन से वह इस बात को निकाल नहीं पा रही थी कि जिस तरह उसके पिता समय-असमय घर लौट आते हैं, उसी तरह इस बार भी लौट आएँगे। कालिंगबेल सुनकर वह समझ जाएगी कि उसके पिता ही बुला रहे हैं। एक बार जोर से और उसके तुरंत बाद दो बार धीरे-धीरे कॉलिंगबेल बजेगी और रानू को पुकारते हुए पापा अंदर आएँगे। यदि वे दौरे पर कहीं बाहर गये होंगे तो कोई न कोई चीज, चाहे वह कोई नई किताब ही अथवा कमरा सजाने की कोई चीज, उसके लिए जरूर लाएँगे। आज यदि सारा घर कुछ अस्त-व्यस्त न होता तो रानू रोज की तरह खा-पीकर अपना बस्ता लेकर अब तक स्कूल चली गई होती।

रानू के मामा ने, जिनका आदित्य से मामूली संबंध था, इस समय घर की सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली थी। उन पर दुख की थोड़ी भी छाया नहीं थी। परंतु इस तरह बगैर किसी नोटिस के अचानक इतनी बड़ी जिम्मेवारी उन पर आ पड़ी थी, इसलिए कुछ चिंतित अवश्य दिख रहे थे। वे उम्र में आदित्य से बड़े थे और कई बार उसे तरह-तरह से समझाते रहते थे। लेकिन आदित्य स्वतंत्र स्वभाव का था इसलिए उनका उपदेश मानने को तैयार नहीं था। इसी वजह से आदित्य से उनका रिश्ता उतना अच्छा नहीं था।

मामा इस समय कॉलेज के एकाउटेंट से आदित्य के फंड वगैरह के बारे में बातचीत कर रहे थे। एकाउटेंट से आदित्य की खूब पटती थी, इसलिए उसकी

मृत्यु से वह अत्यंत दुःखी था। लेकिन जिस बात को लेकर वह बेहद परेशान था, वह थी आदित्य का उससे एडवांस लेना। उसे अब किस तरह एडजस्ट किया जाएगा यही उसकी परेशानी का कारण था। फिर भी उसने आदित्य के परिवार को कितना पेंशन, भविष्य निधि वगैरह मिलेगा उस बारे से एक मोटा-मोटी हिसाब बतला दिया था, पर इससे मामा को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "इन दिनों शायद कोई नया इंश्योरेन्स भी तो हुआ है, उसके कितने रुपये मिलेंगे?" एकाउटेंट ने कहा, "आदित्य बाबू ने वह नहीं लिया था।" मामा ने जिन्होंने इस बारे में आदित्य से कभी भी कोई चर्चा नहीं की थी, कहा, "बार-बार मैंने उससे कहा था कि इंश्योरेंस करवा लो, पर वह मेरी क्यों सुनता!" पिछली तारीख डालकर आदित्य के बदले कोई दस्तखत करे तो क्या काम चल सकता है, उन्होंने पूछा। लेकिन एकाउंटेंट ने ऐसे असंगत प्रस्ताव पर कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

मामा कुछ झुंझलाते हुए वहाँ से उठकर अंदर चले गए और अंदर खड़े लोगों से पूछने लगे, "कब तक भानू के आने की उम्मीद है?" आदित्य का लड़का बंबई में पढ़ता था। शाम को ही उसे टेलीग्राम भेजा जा चुका है। उसमें लिखा गया है कि उसके पिता सीरियस हैं। लेकिन सभी सोचते थे कि वह इस खबर का तात्पर्य समझ जाएगा तथा इधर-उधर से पैसे इकट्ठे करके प्लेन से आ पहुँचेगा। लेकिन प्लेन पहुँचने में अभी और चार घंटे बाकी थे। मामा काफी अनुभवी थे। वे जानते थे कि भानू के आने की उम्मीद बहुत कम है। उन्होंने कहा, "वह आए न आए, दो बजे श्मशान चलने की तैयारी होनी चाहिए।" पास ही खड़े एक सज्जन, जिन्हें शायद वहाँ कोई नहीं पहचानता था, बोले, "हाँ, इंतजार करने में कोई फायदा नहीं। उस बार माइनिंग के मिश्र जी का निधन हुआ था; घर पर उनके बेटे का इंतज़ार होता रहा। एयर लाइंस की हड़ताल के कारण वह दो दिन बाद पहुँच पाया था। लाख जतन करने के बावजूद बर्फ में रखी डेड बॉडी सड़ गई थी। बेटा आकर नाराज हुआ। यहाँ तक कि उसने बाल कटवाने से भी मना कर दिया।" मामा को यह बात अच्छी नहीं लगी। उस सज्जन की बातों की अवहेलना करते हुए उन्होंने कहा, "कुछ भी हो, बड़े बेटे के बगैर भला काम कैसे चलेगा? इंतजार तो करना ही होगा।"

इस बीच मामा की बगैर जानकारी के आदित्य के एक भद्र पड़ोसी मैत्रेयी से पैसे लेकर अर्थी बनवाने की तैयारी में लगे थे। उन्हें इन सभी चीजों की पूरी जानकारी थी। विवाह, जनेऊ आदि अवसरों पर सबको उनकी आवश्यकता होती थी। आज उन्होंने दफ्तर से छुट्टी ले ली थी एवं इस बीच बाँस मंगवाकर उसकी

कटाई-छटाई करवाने में तल्लीन थे। कमरे से कुछ दूर खड़े होकर वे चिल्ला रहे थे : "किसने कहा बाँस के इतने छोटे-छोटे टुकड़े करने को?" रस्सी आई या नहीं? "बाजार कौन गया है?" इत्यादि। बीच में कोई उनके पास आकर पूछने लगा, "क्यों साहब, श्मशान के काम के लिए और कुछ चाहिए क्या? उन सज्जन ने झल्ला कर कहा, "जरूरत पड़ने पर कोई दिखाई नहीं देता, जब काम हो रहा है तो सभी पूछने चले आ रहे हैं। नहीं, सारा काम मैं खुद देख रहा हूँ। किसी और को दिमाग चलाने की जरूरत नहीं।"

इधर-उधर बँटे दलों में जो दल सबसे अधिक मुखर था, वह आदित्य के सहकर्मियों का था। उनमें से एक ने कहा कि यदि आदित्य की पदोन्नति सही समय पर हो जाती तो उसे न चिंताएँ घेरती और न ही दिल की बीमारी होती। इसी क्रम में एक दूसरा व्यक्ति कॉलेज और विश्वविद्यालयों के कार्यकर्ताओं के जातिवादी मनोभाव, भाई-भतीजावाद आदि बातें उठाने लगे। बातचीत का रुख अब आदित्य से हटकर विश्वविद्यालय के कुप्रबंधन की ओर हो गया था। इस समय वे विचाराधीन विवादास्पद विश्वविद्यालय कानून संशोधन बिल के अच्छे-बुरे की समीक्षा करने में जुटे थे। बात कहीं पुनः आदित्य के सही समय पर पदोन्नति तक न पहुँच जाए इस भय से उसके बदले जिस व्यक्ति की पदोन्नति हुई थी वह वहाँ से खिसककर दूसरे दल की ओर बढ़ गया।

वहाँ आदित्य के एक विधायक मित्र प्रादेशिक राजनीति की छोटी-छोटी विषमताओं के बारे में समझा रहे थे। वे स्कूल और कॉलेज में आदित्य के सहपाठी थे। दोनों ने अलग-अलग जीवन प्रणाली अपना ली थी, फिर भी बीच-बीच में वे एक दूसरे से मिलते रहते थे। मुसीबत में आदित्य अपने इसी मित्र की मदद लेता था। मैत्रेयी से सिर्फ एक बार मुलाकात करने के बाद आदित्य के ये मित्र बाहर चले आए थे और अब उनकी बातचीत का आदित्य की मृत्यु से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं था। जो लोग उनके पास खड़े होकर उनकी बातें सुन रहे थे अब वे भी आदित्य को भूलकर राजनीति की गंभीर समस्याओं में गोते लगा रहे थे।

वहाँ उपस्थित लोगों में जो सबके आकर्षण का केंद्र था, वह था आदित्य का वही छात्र जो क्लास-रूम में आदित्य के गिरने के समय से लेकर अस्पताल में भर्ती होने तक उसके साथ था। अब तक वह वहाँ इकट्ठे तीन अलग-अलग दलों को आदित्य के आखिरी समय का एक धारावाहिक विवरण दे चुका था और अब एक अन्य दल के लोगों से बता रहा था, "मुश्किल से पाँच ही मिनट क्लास में पढ़ाए होंगे कि अचानक सर चुप हो गए। हमने सोचा...। अब उसने

अनर्गल रूप से वर्णन करना शुरू कर दिया था। इससे पहले के वर्णनों में जो छिटपुट घटनाएँ छूट गई थी, उनका भी विस्तार से उल्लेख किया। वहाँ उपस्थित एक डॉक्टर ने जब उससे अस्पताल के इलाज के बारे में प्रश्न किया तब उस लड़के ने, जो कि अस्पताल के कमरे में गया तक नहीं था, यथासंभव अपनी कल्पना का सहारा लेकर उनके सवाल का जवाब दिया। उस डॉक्टर को आदित्य की चिकित्सा पद्धति में काफी त्रुटियाँ दिखीं और वह बात अब एक नई चर्चा का विषय बन गई थी।

आदित्य का प्रकाशक, जिससे आदित्य के अच्छे संबंध नहीं थे, वह भी इस अवसर पर वहाँ शोक प्रकट करते हुए दूसरों के सामने अपना उदार हृदय दिखाने की कोशिश कर रहा था। हाथ में पकड़े हुए कागज का पुलिंदा सबको दिखला रहा था हालाँकि उसमें आदित्य की किताब का कोई हिसाब नहीं था और वह कह रहा था, "आज मैं आदित्य बाबू को उनकी किताबों का हिसाब समझाने आया था, लेकिन विधि का विधान तो कुछ और ही था।"

अब दफ्तर का समय होने लगा था, इसलिए लोग वहाँ से खिसकने के लिए अधीर होने लगे थे। आदित्य के मकान के सामने इकट्ठी भीड़ को देखकर वहाँ से गुजर रहे एक व्यक्ति ने साइकिल से उतरकर पूछा, "भाई साहब, यहाँ बाबा आने वाले थे, क्या आ चुके?" जब उसे आदित्य के मरने की सूचना दी गई तो वह पूछ बैठा कि उसकी उम्र कितनी थी और उसके कितने बाल-बच्चे हैं। उसके बाद बोला, "खैर लड़का तो अब नौकरी लायक हो ही गया है। पर लड़की की कुछ चिंता करनी होगी। चलो, ऊपरवाला सब सँभाल लेगा।" इतना कहकर वह जिस तरह आया था पुनः उसी तरह साइकिल पर सवार होकर चला गया।

सभी छात्र आदित्य को बेहद चाहते थे, लेकिन इस वक्त कोई छात्र आदित्य के घर पर नहीं था। वे लोग उस दिन कॉलेज की छुट्टी करवाने गए थे। कॉलेज विभिन्न तरह की दलगत राजनीति का अड्डा बन गया था। आदित्य के मरने की आड़ लेकर सभी एक दिन की छुट्टी चाहते थे, लेकिन यह निर्णय लेने में अनेकों तर्क-वितर्क होने लगे। किसी ने अतीत में किसी अध्यापक के मरने पर कॉलेज की छुट्टी न होने की बात का हवाला दिया। छुट्टी के सिलसिले में प्रिंसिपल से छात्रों का झगड़ा भी हो गया। कुछ छात्र ऊपर से आदेश लाने सचिवालय चले गए। और इस तरह छुट्टी घोषित करने का निर्णय लिया गया तथा लड़के "आदित्य सर! जिंदाबाद" जैसा निरर्थक नारा लगाते हुए आदित्य के घर पर जा पहुँचे।

उस समय आदित्य अपने बैठक में बर्फ की तीन सिल्लियों पर लेटा हुआ था। वह इस समय अपने आसपास चल रही चर्चा एवं विचार-विमर्श से परे था। जीते वक्त वह स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म, आत्मा की अनश्वरता इत्यादि में विश्वास नहीं करता था। अतः मरने से पहले इन प्रश्नों ने उसे विचलित नहीं किया होगा। फिर भी अंतिम घड़ियों में उसे काफी शारीरिक यातनाएँ भोगनी पड़ी थीं। मौत का समय यदि उसे मालूम होता और उसे सुविधाएँ दी गई होतीं, तो वह दूसरी तरह की मृत्यु चाहता और कम से कम एक बार सुजाता से मिलने की कोशिश करता। बीस साल से सुजाता के साथ उसका कोई पत्र-व्यवहार नहीं था। इस समय सुजाता उससे पांच सौ मील दूर थी और उसकी मृत्यु की सूचना उसे नहीं मिली थी। लेकिन मरने से ठीक पहले जब उसे होश था, उसने क्षण भर के लिए सुजाता को याद किया था और उसके निष्प्राण चेहरे पर उस क्षणिक स्मरण की सूचना के रूप में एक क्षीण मुस्कान बच गई थी।

अमरत्व

पढ़ाई करते समय अनिरुद्ध ने कवि बनने की उच्चाकांक्षा रखी थी और सोचा था कि कविता लिखने के जरिए वह विख्यात हो जाएगा। साहित्य का छात्र होने के कारण वह इसे एक संभव इच्छा सोचता था, जबकि कविता लिखने बैठते समय वह दो-चार पंक्तियों से आगे जाने में समर्थ नहीं होता था। कॉलेज छोड़ते समय उसकी कुल साहित्यिक कृति थी कॉलेज की पत्रिका में प्रकाशित उसकी एकमात्र कविता। फिर भी, अनिरुद्ध ने कवि बनने की इच्छा छोड़ी नहीं थी। उसने तय किया था कि नौकरी मिलने के बाद स्थिर हो जाने पर वह आराम से बैठकर सिर्फ कविता ही लिखेगा।

आखिरकार अनिरुद्ध प्रशासनिक सेवा से जुड़ गया और नौकरी करने के साथ-साथ किस तरह बचपन की इच्छा पूरी करेगा उस बारे में सोचने लगा। नौकरी में कई तरह की समस्याएँ होती थीं। दिन भर काम करने के बाद वह अपना मन कविता लिखने में नहीं लगा पाता था। परंतु अकेले बैठे होने पर कविता लिखकर प्रसिद्ध होने की इच्छा बीच-बीच में उसे परेशान करती थी। वह मन ही मन एक प्रख्यात कवि बनने का सपना देखा करता था। और उसकी कविताएँ सौ साल बाद अनेक पाठकों द्वारा कौतूहलपूर्वक पाठ करने की कल्पना किया करता था। हालाँकि वह खुद को नोबल प्राइज आदि पाने की चिंता से दूर रखता था, उसे उसकी जो इच्छा हमेशा सताती रहती थी, वह थी कवि बनकर अमरत्व प्राप्त करने की इच्छा।

यदि नौकरी अनिरुद्ध के कवि बनने में पहली बाधा थी, तो उस उच्चाकांक्षा की दूसरी बाधा थी उसका विवाह। उसकी पत्नी भी साहित्य की छात्रा थी, पर उसमें कविता के प्रति कोई आग्रह नहीं था। प्रसिद्धि पाने के लिए उसकी परिकल्पना थी दूसरी तरह की। वह चाहती थी वे लोग तरह-तरह से चल-अचल संपत्ति इकट्ठा करके अनिरुद्ध के सहकर्मी और पड़ोसियों के महज समकक्ष ही नहीं, उनसे आगे निकल जाएँ। शुरू-शुरू में इस योजना ने अनिरुद्ध को विशेष

आकर्षित नहीं किया था, फिर भी पत्नी के उत्साह से उसने धीरे-धीरे अपने बैठक को सजाने, नया डाइनिंग सेट खरीदने, सरकारी जमीन के लिए दरख्वास्त देने इत्यादि कामों में मन लगाया।

ऐसा नहीं था कि वह इन सभी कामों के साथ-साथ पत्नी को कविता की ओर आकर्षित नहीं कर रहा था। लेकिन उसकी पत्नी कम उम्र से ही विषय-बुद्धि संपन्न थी और कविता जैसी मूल्यहीन चीज में समय बर्बाद न करके पड़ोसियों को अपनी संपन्नता के बारे में अवगत कराकर समय का सदुपयोग करती थी। उस दिन साहस बटोरकर अनिरुद्ध ने अपनी पत्नी को एक अरसा पहले कॉलेज की पत्रिका में छपी अपनी कविता दिखाई। पत्नी ने कोई आग्रह न दिखाते हुए कहा, मेरी तकिया के नीचे रख दो; रात को पढ़ूँगी। उस पत्रिका को तुरंत ले जाकर पत्नी के सिरहाने रख देता तो सही होता। किंतु दुर्भाग्य से उसने पत्नी के सामने बैठकर पुनः कविता पढ़ते हुए उसका रसास्वादन करने की धृष्टता की। कविता अब भी उसे अच्छी लगी। कविता लिखकर प्रसिद्धि पाने की इच्छा फिर से उसके मन में जाग उठी। लेकिन उसकी पत्नी ने अनिरुद्ध का चेहरा देखकर उसके मन की बात लगभग समझ ली और पूछा, क्या प्रेम कविता है? पत्नी के लिए कविताएँ दो श्रेणियों में बँटी थीं, प्रेम कविता और अन्य कविताएँ। किंतु उस प्रश्न से अनिरुद्ध अचानक घबरा गया और बोला, नहीं, ठीक प्रेम कविता नहीं है; पर...। पत्नी ने इस बार एक अटपटा सवाल किया, शायद तुमने कहा था, जब तुम कॉलेज में पढ़ते थे तब तुम्हारे साथ लिता और चिता नाम की दो लड़कियाँ पढ़ती थीं, कहाँ गईं वे?

कविता लिखकर ख्याति और अमरत्व पाने की इच्छा को अनिरुद्ध ने उसी क्षण तिलांजलि दे दी और उस पत्रिका को पत्नी की तकिया के नीचे नहीं, पुराने अखबारों की ढेरी पर पटक दिया। कविता लिखना एक दुरूह चीज थी और अनिरुद्ध खुश हुआ कि उसे इस दुस्साहस से मुक्ति मिल गई। किंतु उस दिन रात को लेटे-लेटे अनिरुद्ध सोचने लगा कि और क्या करके नाम कमाया जा सकता है। अपनी साहित्यिक शिक्षा और पृष्ठभूमि को नजर में रखकर अनिरुद्ध जिस नतीज़े पर पहुँचा वह यह था कि 'ऑफिस की फाइलों में साहित्य' शीर्षक का उदाहरण देते समय निश्चित ही उसके नाम का उल्लेख किया जाएगा। पत्नी की तकिया की ओर संकोच से देखकर मन ही मन वह ऑफिस की फाइलों में दिए गए अनेक आदेशों की साहित्यिक परिभाषाएँ बनाने लगा।

अगले दिन ऑफिस में बैठकर अनिरुद्ध को लगा कि कविता लिखने की तरह यह भी एक दुस्साध्य काम है। छुट्टी के दरख्वास्त के मंजूरी आदेश को

वह काफी कोशिश करने के बावजूद साहित्यिक रूप नहीं दे पाया। एक अन्य फाइल पर उसने दो पंक्तियों की एक छोटी सी कविता में आदेश लिखने की संभावना देखी। लेकिन ऐसा सोचते समय उसे न केवल अपनी पत्नी का चेहरा, बल्कि अपने से वरिष्ठ अधिकारियों के रुक्ष चेहरे भी दिखाई दिए और अनिरुद्ध ने फाइल पर मिनी कविता लिखने के विचार से खुद को दूर कर लिया। परंतु उस दिन जब उसके पास कुछ निम्नतम कर्मचारियों की पदोन्नति की फाइल आई, शेक्सपियर को याद करके अनिरुद्ध ने उस पर टिप्पणी की, सड़े फलों में किसे चुनोगे? उस टिप्पणी के नीचे उसने भविष्य के शोधार्थी को ध्यान में रखकर अपना दस्तखत खूब अच्छी तरह साफ-साफ किया था। इस समय अनिरुद्ध मन ही मन बेहद खुश हुआ, लेकिन जब फाइल नीचे गई, उसके आदेश को लागू करने की समस्या उपजी। अंत में बड़े बाबू फाइल लेकर उसके पास गए। बोले, आपने कृषि विभाग की फाइल की टिप्पणी गलती से इस फाइल पर लिख दी है। अनिरुद्ध ने अधीनस्थ कर्मचारी की अज्ञानता को मन ही मन गाली दी, और फाइल से सड़े फल विषय काटकर लिखा, यथा प्रस्तावित।

उस घटना से उसके मन में एक नया विचार आया। भविष्य में शोधार्थी 'ऑफिस की फाइल में हास्यरस' विषय पर शोध कर सकते है, यह बात ध्यान में रखकर वह नोट लिखेगा। वह हर फाइल को बार-बार पढ़कर उसमें किस तरह की हास्यरसात्मक टिप्पणी की जा सकती है, उस बारे में उसने काफी सोचा। लेकिन फाइल की विषयवस्तु अत्यंत शुष्क, संवेदनहीन और वस्तुवादी थी; उसमें अनिरुद्ध को व्यंग्योद्दीपक मंतव्य देने की संभावना दिखाई नहीं दी।

इस तरह विभिन्न प्रकार से निराश होकर अनिरुद्ध ने पत्नी की ख्याति प्राप्त करने की योजना में मन लगाया। पड़ोसियों से प्रतियोगिता करके वह अपने मकान और चीजों का स्तर बढ़ाने में जुट गया। मकान की लिपाई-पुताई कराने के साथ ही उसने एक बगीचा बनाना भी शुरू कर दिया, जो कि उसके अन्य पड़ोसियों के पास नहीं था। वह बगीचा बारिश और जाड़े में ताजगी भरा और खूबसूरत रहता था; लेकिन गर्मियों में मुरझा जाता था। इसलिए गर्मी के दिनों में अनिरुद्ध के बगीचे से जुड़ी ख्याति बाधित हो जाती थी। अपनी ख्याति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए अनिरुद्ध ने अपने अंचल में श्रेष्ठ बगीचे के लिए एक पुरस्कार की व्यवस्था करवाई और प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। अनिरुद्ध अब खुश था कि उसका प्रथम पुरस्कार पाना हमेशा के लिए शहर के इतिहास में लिपिबद्ध होकर रहेगा।

इस बीच अनिरुद्ध को नौकरी में प्रमोशन मिला, तबादले पर विभिन्न स्थानों पर गया, उसके बेटा-बेटी बड़े हुए, और उसकी पत्नी मोटी होकर धर्मपरायण हो गई। इतने बदलाव के बावजूद जो बात अनिरुद्ध के मन से नहीं निकली थी, वह थी प्रसिद्ध होकर अमरत्व पाने की इच्छा। उम्र बढ़ने के साथ-साथ अनिरुद्ध ने देखा कि कविता लिखने की बात तो दूर, फाइलों में साहित्यिक अथवा कुछ व्यंग्यात्मक टिप्पणी लिखना भी उसके लिए दुष्कर था। इसलिए नाम के स्थायित्व के लिए वह कुछ सहज उपाय सोचने लगा। जैसे, नया मकान बनवाने के बाद उसके फाटक पर अपना नामपट्ट लगवाना। किसी ने उससे मार्बल पर नाम खुदवाने को कहा, लेकिन अनिरुद्ध ने मिस्त्री से कहा, नहीं, मार्बल जल्दी टूट जाएगा। पीतल का लगाएंगे। मिस्त्री ने कहा, आपकी बात सही है। पीतल तीन-चार पुश्तों तक चल जाएगा। यह बात अनिरुद्ध को अच्छी नहीं लगी। उसने कहा, तीन-चार पुश्तों तक ही क्यों, सैकड़ों वर्षों तक चल जाएगा। मोटे पीतल में बनाओ।

अनिरुद्ध ने जब पूरे जिले की जिम्मेवारी संभाली, नामपट्ट पर अपना नाम खुदवाकर खुद को अमर करने के कई अवसर मिले। तालाब, पंचायत भवन, घर, खेल के मैदान, क्लब इत्यादि के शिलान्यास और उद्घाटन के अवसर पर उसने अपने नाम की पट्टियाँ जगह-जगह लगवाईं और निश्चिंत हो गया कि कम से कम इस जिले के लोग युग-युग तक उसे याद रखेंगे। जिले से स्थानांतरित होकर सचिवालय आने के बाद फिर उसे अपना नाम नामपट्टों पर लिपिबद्ध करवाने का अवसर नहीं मिला। पर अपने नाम को प्रचारित और प्रसारित करने के लिए वह तरह-तरह के आदेशों पर दस्तखत करने लगा। कहने की आवश्यता नहीं, उसके काम की गुणवत्ता बढ़ी हो चाहे न बढ़ी हो, वह अपना नाम और भी साफ-साफ एवं परिमार्जित करके लिखता था। इस वक्त उसके दस्तखत स्पष्ट और स्वाभिमानपूर्ण थे एवं उससे पता चलता था कि अनिरुद्ध एक दक्ष अफसर है।

अनिरुद्ध की सेवा-निवृत्ति जितनी निकट आने लगी, उसे उतना ही संदेह होने लगा ऑफिस के कामों में अपने नाम की छाप छोड़ने को लेकर। इस बात की जाँच करने के लिए वह उन ऑफिसों में गया जहाँ पहले काम कर चुका था। निरीक्षण करने की ओट में वहाँ एक फाइल पलटते हुए उसने कहा, बीस साल पहले मैं इसी ऑफिस में था। तब भी इस विषय की एक फाइल थी, जिस पर मैंने कई प्रस्ताव रखे थे। क्या वह फाइल मिल जाएगी? उसकी जगह इस वक्त काम करने वाले अफसर ने कहा, रेकॉर्ड के मैनुअल के अनुसार वे सारी अस्थायी फाइलें दो वर्ष के बाद नष्ट कर दी गईं। सरकार के लिए उसके सारे

मूल्यवान काम इस तरह बर्बाद कर देने की बात सुनकर अनिरुद्ध को दुख हुआ और उसने खिन्न होकर उस ऑफिस के काम से संबंधित अपनी निरीक्षण रिपोर्ट में प्रतिकूल मंतव्य दिए।

अब तक उसके दोनों बेटे बड़े हो चुके थे, बेटी की शादी हो चुकी थी। अनिरुद्ध के लाख समझाने पर भी बेटे सरकारी नौकरी में घुसना नहीं चाहते थे। व्यापार करना चाहते थे। अनिरुद्ध ने उन्हें समझाया था, सरकारी नौकरी में पैसे भले ही कम मिलते हैं, पर नाम मिलता है। बड़े बेटे ने पूछा, कैसा नाम? आपका वह मित्र विजिलेंस केस में फँस जाने की वजह से लोगों ने उसका नाम जाना, वरना कौन जानता है आपके अफसरों को? अनिरुद्ध खामोश रहा, लेकिन एक महीने बाद जब वह अपने पुराने जिले के दौरे पर गया, बेटों को भी अपने साथ ले गया। जिला मुख्यालय में घुसते समय जो स्कूल पड़ता था, अनिरुद्ध ने वहाँ गाड़ी रुकवाई और बेटों से कहा, आओ, देखो, सरकारी नौकरी में नाम है या नहीं। रविवार की वजह से स्कूल की छुट्टी थी। कहीं कोई दिखाई नहीं दे रहा था। अनिरुद्ध सीधे स्कूल के सामनेवाली दीवार के पास जाकर उस पट्टिका को ढूँढ़ने लगा जो उसने लगाई थी। वहाँ सिर्फ सफेद दीवार थी, पट्टिका का कोई नामोनिशान नहीं था। उसकी याददाश्त गलत हो सकती है सोचकर अनिरुद्ध स्कूल के अहाते के चारों ओर घूमकर सारी दीवारों का बड़े ध्यान से निरीक्षण किया, किंतु कहीं भी उसके नाम की पट्टिका नहीं लगी थी।

दौरे से लौटकर काफी सोचने के बाद अंत में वह एक सुंदर मीमांसा तक पहुँच गया। अपने विभाग की विभिन्न नियमावलियों को एकत्रित करके वह एक संकलन निकालेगा और उस पर अपनी एक गंभीर भूमिका लिखेगा। सेवानिवृत्त होने से पहले उसने इस काम में खुद को झोंक दिया और अंततः नियमावली का एक आकर्षक संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसके प्रारंभ में थी उसकी एक लंबी और सुचिंतित भूमिका। अब अनिरुद्ध निश्चिंत था कि इस छपी हुई किताब के जरिये उसका नाम इतिहास के पन्नों में जा चुका है और जब तक यह नियमावली प्रचलित रहेगी उसका नाम भी अमर रहेगा। इस तरह के आश्वासन से सराबोर हो अनिरुद्ध सेवानिवृत्त हुआ।

अनिरुद्ध के बाद उस पद पर आया चंदमौलि। उसकी सेवानिवृत्ति को भी ज्यादा दिन नहीं बचे थे। बचपन में वह क्रिकेट खेला करता था और सोचता था कि एक विशाल स्कोर खड़ा करके गिनीज बुक में न सही, भारतीय क्रिकेट के इतिहास में अमर हो जाएगा! लेकिन अंत में वह प्रशासनिक सेवा में आ गया

और फिर उसे क्रिकेट खेलने का मौका नहीं मिला। नौकरी के आखिरी दिनों में वह फाइलों पर साहित्यिक नोट एवं नामपट्टिकाओं इत्यादि के जरिये प्रसिद्धि पाने की निरर्थकता के बारे में पूरी तरह सचेत था। इसलिए उसने नियमावली के संकलन का पुनर्मुद्रण करवाने में ध्यान दिया। उस संकलन के द्वितीय मुद्रण के लिए उसने अनिरुद्ध की पहली भूमिका हटाकर अपनी एक सुचिंतित भूमिका लिखी और उसके नीचे साफ-साफ अपने नाम का दस्तखत किया। जब प्रेस से छपकर उसकी पहली प्रति उसके पास आई, उसने पन्ना पलटते हुए शांति और राहतभरी साँस ली कि अब उसका नाम अमर हो जाएगा।

बाघ

सत्यकाम की फ्लाइट सही समय पर पहुँची थी और उसने सोचा था कि जल्द ही होटल पहुँचकर आराम करेगा। उसका पूरा दिन बड़ी व्यस्तता में बीता था। वह थका-सा महसूस कर रहा था और रात को कैसे अच्छी तरह सोएगा उसका इंतजार कर रहा था। लेकिन उसके दुर्भाग्य से भीषण बारिश शुरू हो गई, इतनी तेज बारिश की एयरपोर्ट से निकलने का उपाय नहीं था। मन में थकान, खीझ और सूनापन लिए वह एयरपोर्ट लाउँज में बैठकर आधी पढ़ी किताब निकालकर पढ़ने लगा; लेकिन उसमें उसका मन नहीं लगा।

बारिश जिस तरह अचानक शुरू हुई थी, उसी तरह रुक गई अचानक। बाहर निकलकर सत्यकाम ने टैक्सी ली और उसे होटल का पता बता दिया। बारिश के बाद सड़क पर कोई आवाजाही नहीं थी, मौसम काफी ठंडा था और सत्यकाम पुनः सोचने लगा रात को होटल में किस तरह शांति से सोएगा। उसने टैक्सीवाले से पूछा, इन दिनों इतनी बारिश क्यों हुई, किंतु टैक्सीवाला गंभीर स्वभाव का था शायद, उसने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। सत्यकाम आँखें मूँदकर अपनी दिनभर की व्यस्तता के बारे में सोचने लगा।

यकायक टैक्सी बंद हो जाने पर सत्यकाम ने आँखें खोलीं। किसी बड़े चौराहे पर लालबत्ती होने के कारण गाड़ी रुक गई थी। वह सड़क बिलकुल सुनसान थी और चारों ओर की दुकानें बंद थीं। सड़क पर उनकी टैक्सी के अलावा और कोई वाहन नहीं था। बारिश के बाद के शीतल परिवेश में सारी बत्तियाँ धुँधली दिखाई दे रही थीं। चारों ओर के धुँधलके में ट्रैफिक लाइट की लाल आँख ही दिखाई दे रही थी। सत्यकाम देख रहा था कि कब बत्ती हरी होगी, इतने में फुटपाथ से एक बाघ आकर टैक्सी के आगे जेब्रा क्रॉसिंग पर खड़ा हो गया। आहिस्ता-आहिस्ता डग बढ़ाते हुए वह बाघ सड़क पार करके दाहिनी ओर के फुटपाथ पर पहुँच गया और आगे मोड़ पर अदृश्य हो गया।

फिर से आँखें मूँदकर सत्यकाम अपने काम के बारे में सोचने लगा। इस शहर में कई काम थे उसे। कैसे सारे काम खत्म करके वह लौट जाएगा, यही था उसके चिंता का विषय। टैक्सी से उतरकर वह होटल में चला गया और कुछ देर बाद अपने कमरे में सोने ही वाला था कि उसे उस बाघ की याद आ गई। बारिश थमी रात, सुनसान सड़क और थकानभरी मानसिक संगति में जो दृश्य उसे बिलकुल असंगत नहीं लगा था, इस वक्त बिस्तर की वास्तविकता में वह घटना उसे अत्यंत विचित्र और तर्कहीन लगी थी।

उसकी आँखों से अचानक नीद उड़ गई और उसने बार-बार करवटें बदलते हुए सोचा, इस घटना की जरूर कोई तर्कसंगत व्याख्या है। उसने निश्चित रूप से उस बाघ को देखा था, इस बारे में उसके मन में कोई संदेह नहीं था। बाघ के बदन पर पीली-पीली चमकीली पट्टियाँ बनी थीं और उस घटना के स्मरण ने सत्यकाम में रोमांच भर दिया था। हो सकता है, शहर के चिड़िया घर से बाघ बाहर निकल आया हो। देश-विदेश के अखबारों में इस तरह का समाचार कभी-कभी पढ़े होने की याद आ गई उसे। और यह भी हो सकता है कि शहर में सर्कस आया हो। बाघ का खुले में घूमना शायद कोई दुर्घटना हो, या फिर कोई नए तरह का विज्ञापन!

उसने टेलीफोन पर पुलिस का नंबर मिलाया पुलिस को बाघ के शहर में घुस आने के बारे में बताने के लिए; लेकिन जब थाने में किसी ने रिसीवर उठाया तो सत्यकाम ने रिसीवर रख दिया; क्योंकि उसने ठीक-ठीक किस जगह बाघ को देखा था, उस बारे में उसे मालूम नहीं था और फिर रात को ग्यारह बजे टेलीफोन करके शहर में बाघ के आने की सूचना देना न जाने क्यों उसे अद्भुत और अतिरंजित लग रहा था। टेलीफोन रखने के बाद उसने पुनः आँखें बंद कर लीं और बाघ के बारे में सोचने लगा। नहीं, उसके देखने में कोई गलती नहीं हुई है। बाघ ठीक सामने सड़क पर उतरा था और धीमे पर भारी कदमों से सड़क पार करके दूसरी ओर मोड़ पर अदृश्य हो गया।

सुबह के अखबार में बाघ के बारे में कोई समाचार नहीं था। शहर में कहीं सर्कस होने का विज्ञापन भी नहीं था। दिन-भर काम में व्यस्त रहकर सत्यकाम बाघ के बारे में पूरी तरह भूल गया; किंतु रात को सोते समय फिर से वह बाघ पूँछ हिलाकर, मूँछ फुलाकर उसकी आँखों के सामने से सड़क पार करके चला गया। वह घटना जरा भी उसकी कल्पना से नहीं उपजी थी, इस संबंध में उसे कोई संदेह नहीं था। सोते-सोते सत्यकाम ने यह निश्चिय किया कि वह इस रहस्य का पता लगाकर ही रहेगा।

अगले दिन के अखबार में भी उसका कोई उल्लेख नहीं था। सिर्फ भीषण बारिश से हुए नुकसान का विवरण था; पर कहीं नहीं थी शहर में जंगली अथवा सर्कस के बाघ के अनाधिकृत प्रवेश की चर्चा। एयरपोर्ट जाते समय टैक्सी से बाहर की ओर देखते हुए सत्यकाम नें चेष्टा की उस रात देखे चौराहे को पहचानने की। लेकिन सुबह की भीड़ में सारे चौराहे उसे एक जैसे लग रहे थे और कोई भी चौराहा उस रात देखे चौराहे से मेल नहीं खा रहा था।

अपने शहर लौटकर सत्यकाम ने ठंडे दिमाग से उस घटना का विश्लेषण करने की कोशिश की। उसने तय किया कि उस रहस्यमय विषय में वह अपने मित्रों को शामिल करके उनकी राय लेगा। काफी सोचने के बाद सबसे पहले अपने एक ऐसे मित्र को चुना, जो अति शांत-शिष्ट और धीरज वाला था और जिसे सभी नासमझ सोचते थे। उस घटना के बारे में सीधे-सीधे न बताकर सत्यकाम ने उससे कहा, यदि तुमसे कोई कहे कि उसने एक दिन रात को शहर के सुनसान चौराहे पर एक बाघ को सड़क पार करते हुए देखा, तुम क्या सोचोगे?

सत्यकाम ने सोचा था कि वह मित्र उस बात पर स्थिर चित्त से मनन करेगा और अपनी सुचिंतित राय देगा। किंतु उसने अविलंब कहा, मैं सोचूँगा वह आदमी पूरा नासमझ है।

इस तरह निराश होकर सत्यकाम अपने एक घनिष्ठ मित्र के पास गया और उसे अपने दौरे का पूरा विवरण देकर एयरपोर्ट की बारिश, सुनसान सड़क पर टैक्सी और बाघ के सड़क पार करने के बारे में बताया। उस बात को सुनकर उसका मित्र कुछ चिंतित होने-सा लगा। उसने कहा, यह कोई अच्छी बात नहीं है। इसके लिए पूजा-पाठ कराना होगा।

सत्यकाम धार्मिक स्वभाव का नहीं था; इसलिए उसकी बात को टालते हुए बोला, पूजा-पाठ की बात देखी जाएगी; पर मुझे यह बताओ, बाघ आया कहाँ से, और फिर गया कहाँ?

उसके मित्र ने कहा, एक दिन दोपहर में मेरे घर के ऊपर एक उल्लू आकर बैठ गया। तुम पूछोगे, शहर में दोपहर के वक्त उल्लू कहाँ से कैसे आया। क्या इसका कोई जवाब है? जब मैं अपनी पत्नी को बुलाकर दिखाने के लिए लाया, उल्लू गायब हो गया। सात दिनों तक भजन-कीर्तन गाकर हमने अपशकुन दूर किया।

एक लेखक मित्र ने कहा, यह शहर एक कंक्रीट जंगल है। यहाँ बाघ-भालू आवाजाही नहीं करेंगे तो और क्या? रात को जो तस्कर गुंडा बदमाश आवाजाही

करते हैं, वे लोग एक-एक खूँखार जानवर हैं। आपने तो सिर्फ एक ही बाघ देखा, जरा इधर-उधर और नजर डाले होते तो देखते कि शहर के गली-गलियारों में कितने खतरनाक साँप, लोमहर्षक जंगली हाथी, खून के भूखे सिंह छिपे हुए हैं।

अंग्रेजी के प्रोफेसर ने कहा, यह कोई नई बात नहीं है। आपने जूलियस सीजर पढ़ा होगा। सीज़र की हत्या से पहले कास्का सिसेरो से कहता है, आज कैपीटल के सामने मेरा एक सिंह से सामना हो गया; सिंह ने मेरी ओर गुस्से से देखा, फिर मुँह फेरकर चला गया।

क्लब के बार में उसकी बातें सुनकर एक आदमी ठहाका मार-मारकर हँसने लगा और टेबुल पर खटाक से गिलास रखते हुए बोला, रात को कितने बजे देखने की बात आपने कही? कितने पैग के बाद? इसमें आश्चर्य होने की बात नहीं है। कुछ देर बाद आपको गुलाबी हाथी भी नजर आया होता।

सत्यकाम समझ गया कि उसकी बातों पर कोई विश्वास नहीं कर रहा है; किंतु वह खुद ही किसी भी तरह इस घटना का मर्म जानकर रहेगा।

कुछ दिनों बाद उसने फिर से उस शहर में जाने का टिकट कराया इस बार भी उसकी फ्लाइट समय पर पहुँची। मौसम आज अत्यंत प्रसन्न था। वह तुरंत टैक्सी लेकर होटल के लिए चल पड़ा।

शाम हुए अधिक देर न होने की वजह से सड़क वगैरह पर ठीक-ठाक भीड़ थी। सत्यकाम टैक्सी में सतर्क होकर बैठ गया और पार करते चले जा रहे चौराहों को ध्यान से देखता जा रहा था। आगे-पीछे ढेरों वाहन आ-जा रहे थे और चौराहों पर लाल बत्ती होने के समय काफी लोग सड़क पार करते थे।

सारा कुछ सुव्यवस्थित, तर्कसंगत, पर सामान्य था।

सोने से पहले सत्यकाम ने आधी पढ़ी किताब न पढ़कर जेब से शुभ समाचार वाली चिट्ठी निकालकर दुबारा पढ़ी। उसके बाद बिस्तर में लेटे हुए वह छत की ओर ताकता रहा।

अँधेरा कमरा, एयर कंडीशन का मृदुगुंजन, नींद की दवा के लोभनीय परिवेश से पहले उसने बाईं ओर पेड़ की एक डाल देखी। घने पत्तों की हरियाली के बीच से एक पंछी निकला और धीर मंथर अलसायी गति से उड़ना शुरू कर दिया।

आँखें बंद हो जाने से पहले सत्यकाम ने दाहिनी ओर देखा, जहाँ एक ओर घनी हरियाली उस पंछी का इंतजार कर रही थी।

स्पर्श

लाख कोशिश करके भी इंद्रनाथ उस घटना को नहीं भुला सका जिससे उसके दिल को गहरी ठेस पहुँची थी। घटना यह थी कि उसने माधवी को छूने के लिए हाथ बढ़ाया था और माधवी कुछ पीछे हट गई थी। उस वक्त वहाँ और कोई नहीं था; माधवी के इस तरह पेश आने की कोई वजह ही नहीं थी।

माधवी को छूने के लिए इंद्रनाथ को दो साल से भी अधिक समय लगा था। यह अवधि इंद्रनाथ के लिए कठिन संयम, परीक्षा एवं चिंता की घड़ी थी। हालाँकि वह माधवी को कई वर्षों से जानता था, लेकिन काफी अरसे तक उसने माधवी की कल्पना प्रेमिका के रूप में नहीं की थी। दोनों में मामूली मित्रता थी। माधवी के साथ अपने संबंधों को लेकर उसके मन में कोई संशय या संकोच नहीं था। उसका संबंध नितांत स्वाभाविक व उलझनों से परे था।

काम के सिलसिले में बीच-बीच में माधवी से उसकी मुलाकात हुआ करती थी। शहर से कहीं बाहर जाते समय वह माधवी को बताया करता था। उस बार जब टेलीफोन पर उसने माधवी को सात दिनों के लिए बाहर जाने की बात बतलायी तब माधवी ने कहा था, "तुम इतने अधिक समय के लिए बाहर क्यों जा रहे हो? चुटकी लेते हुए इंद्रनाथ ने कहा था, "मेरे कहीं आने-जाने से कोई मुझे मिस नहीं करता, इसलिए।" "मैं तुम्हें मिस करूँगी।" मुस्कराते हुए माधवी ने कहा। हालाँकि उसके बाद वे दूसरे विषयों पर चर्चा करने लगे, लेकिन माधवी की बात इंद्रनाथ के मन में बैठ गई। रिसीवर रखने के बाद कुछ देर तक वह धीरे-स्थिर बैठा रहा। यकायक उसे लगा कि वह माधवी के लिए भावुक हो उठा है। उसने मन-ही-मन कहा, 'माधवी, मैं तुम्हें चाहता हूँ।'

तभी से माधवी उसके मन में पूरी तरह छाई रही। ट्रेन में जाते समय, दूसरे शहर में थककर कमरे में लेटे होने के समय, दफ्तर में बैठकर लोगों

से बातें करते समय, रात को सोने से पहले बिस्तर पर लेटे-लेटे हर पल उसे माधवी की ही याद आती रहती। उसने माधवी से टेलीफोन पर बात करने की कोशिश की थी, लेकिन लाइन नहीं मिली। एक दिन जब उसे लाइन मिली और दूसरी ओर से माधवी की आवाज सुनाई दी, अचानक उसके दिल की धड़कनें तेज हो गईं। बगैर कोई बात किए उसने रिसीवर रख दिया। बिना वजह एक दूसरे शहर से माधवी को टेलीफोन करना उसे अटपटा लगा।

सात दिन बाद जब इंद्रनाथ ने वापसी की ट्रेन ली, वह यात्रा उसे बिलकुल भिन्न लग रही थी। मानों वह जीवन के किसी वांछित लक्ष्य की ओर बढ़ रहा हो, जहाँ उसके सुख-शांति का संपूर्ण आधार है। अपने शहर में पहुँचकर उसने माधवी को फोन किया। हालाँकि माधवी ने उसके साथ सौजन्यतापूर्वक बातें की, पर इंद्रनाथ उसके साथ स्वाभाविक रूप से बात नहीं कर सका। सात दिनों की चिंता ने मानो उसके दिल में सबकुछ अस्त-व्यस्त कर दिया हो।

जब माधवी से पुनः मुलाकात हुई, इंद्रनाथ उसके प्रति अपने रिश्ते को लेकर सचेत हो गया और माधवी से अपनी बातचीत एवं व्यवहार में सहज नहीं हो पाया। उसे लगा कि उसके दिल में जो आलोड़न, आँधी-तूफान और उथल-पुथल मचा हुआ था, उससे माधवी पूरी तरह बेखबर है। माधवी के साथ अब इंद्रनाथ हँसी-मजाक-भरी बातें नहीं कर सका। उसके साथ इंद्रनाथ का व्यवहार अब और भी औपचारिक हो गया। माधवी को छूने में पहले उसे जरा भी संकोच नहीं होता था, लेकिन अब वह माधवी से दूर-दूर रहने लगा। ऐसे में उसकी मानसिक स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गई। उसकी जिंदगी में अब और किसी तरह का आग्रह नहीं रह गया। माधवी के साथ औपचारिक बातचीत अब उसे अर्थहीन लगने लगी। उसने तय किया कि माधवी के साथ इस तरह का रिश्ता बनाए रखने से तो बेहतर होगा कि वह ऐसे औपचारिक संबंधों के आगे पूर्णविराम लगा दे। किंतु वह भी संभव नहीं हो सका। बल्कि वह माधवी से और अधिक मिलने-जुलने लगा।

इंद्रनाथ को ऐसा लगा कि यदि इस समस्या के बारे में उसने कुछ नहीं किया तो वह पागल हो जाएगा। एक दिन वह दृढ़ निश्चय कर माधवी के घर गया। माधवी अकेली थी, लेकिन लाख कोशिश करके भी इंद्रनाथ वह बात नहीं कह सका जो कहना चाहता था। चाय पीने, औपचारिक बातचीत करने में ही सारा समय निकल गया और इंद्रनाथ माधवी से विदा लेकर बाहर चला आया। सड़क पर आते ही उसका मन पुनः अशांत भावनाओं से भर गया और उसका

दम घुटने लगा। कुछ पल वह सड़क पर खड़ा रहा और न जाने क्या सोचकर पुनः माधवी के घर की ओर लौट पड़ा। दरवाज़ा खोलते ही माधवी ने पूछा, "क्या कुछ भूल गए?"

इंद्रनाथ जानता था कि यदि वह इसी पल अपनी बात का समाधान नहीं कर लेता, तो वह पुनः सामान्य बातचीत की औपचारिक निरर्थकता में बँध जाएगा। उसने खुद को साहस बँधाते हुए कहा, "माधवी, मैं तुम्हें बेहद चाहता हूँ।" उसने सोचा था कि माधवी हँसेगी और उसकी बात को मजाक में उड़ा देगी, या फिर आगबबूला होकर उसे घर से बाहर निकलने को कहेगी, लेकिन माधवी ने उससे बड़े सहज भाव से कहा, "बैठो।" माधवी खुद भी बैठ गई और सिर झुकाकर न जाने क्या कुछ सोचने लगी। चुप्पी के वे कुछ क्षण इंद्रनाथ के लिए मानो जीवन और मृत्यु के बीच का अंतराल हो। बड़ी बेसब्री से वह माधवी के जवाब का इंतजार करने लगा। कुछ देर बाद माधवी ने सिर उठाकर उसकी ओर सहज भाव से देखा और कहा, "देखो, हमलोग मित्र की तरह ही रहेंगे।"

इंद्रनाथ उठकर खड़ा हुआ और माधवी से कुछ बोले बिना बाहर चला गया। इस वक्त उसका मन हल्का होने के साथ ही विषादग्रस्त भी था। वह समझ गया कि उसे लेकर माधवी के मन में कोई भावुकता नहीं थी। किंतु माधवी के साथ अपने संबंध वह किस तरह नियंत्रित करे, इस बारे में कुछ तय नहीं कर पा रहा था। आखिर उसने निश्चय किया कि अब वह माधवी से मिलने नहीं जाएगा। जिसके लिए उसका संपूर्ण जीवन समर्पित हो चुका है, उससे महज औपचारिक संबंध रखना और असंगत तथा निरर्थक बातें करना छलावा ही होगा।

दूसरे दिन उसे माधवी का ही फोन आया। माधवी ने कहा, "जितनी जल्दी हो सके मुझसे आकर मिलो।" अब इंद्रनाथ और दुविधा में पड़ गया। क्या माधवी उसके प्यार को स्वीकार करेगी या यों ही किसी छोटी-मोटी बात के लिए मिलने को कह रही है? इस बार किस तरह की बातें होंगी उनमें, जबकि इंद्रनाथ ने उसे अपनी कमजोरी बतला दी थी? माधवी का टेलीफोन आने से लेकर उससे मिलने तक के बीच का अंतराल इंद्रनाथ के लिए गहरी मानसिक दुविधा एवं अनिश्चय की घड़ी थी।

इस बार भी माधवी का व्यवहार सहज और स्वाभाविक था। उसने उत्साहपूर्वक इंद्रनाथ का स्वागत किया। उससे बैठने को कहकर पूछा, "चाय पियोगे?" इंद्रनाथ ने हामी भरते हुए मन ही मन कहा, 'जो कहना चाहती हो जल्दी से कह डालो माधवी। कह दो, तुम मुझे चाहती हो।' किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। माधवी चाय

लेकर लौटी। उसने बड़े सहज भाव से इंद्रनाथ से उसके काम के बारे में पूछा। उसकी तबीयत के बारे में पूछा। उसके बाद जब माधवी ने उससे किसी मित्र के बारे में पूछा, इंद्रनाथ ने उसका कोई जवाब न देते हुए उलटे सवाल किया, "तुमने मुझे क्यों बुलाया है, माधवी?"

"तुमने मुझे फोन नहीं किया था, इसलिए," माधवी ने स्वच्छंद रूप से कहा। इंद्रनाथ चुप रहा। वह जानता था कि वह जो कुछ भी कहेगा, माधवी उसका सूत्र पकड़कर पुनः कोई अति साधारण दैनंदिन सामाजिक विषय छेड़ देगी। माधवी ने उसकी ओर देखा, लेकिन वह चुप रहा। माधवी ने उससे कुछ और पूछा, लेकिन इंद्रनाथ ने अपनी चुप्पी नहीं तोड़ी। अंत में हार मानते हुए माधवी ने कहा, "उस दिन तुमने मुझसे जो कुछ कहा था, उस बारे में मैंने काफी सोचा है।"

"क्या सोचा है, माधवी? क्या तय किया तुमने?"

"मैंने खूब सोचा, लेकिन कुछ तय नहीं कर पाई।"

"इसमें भला तय क्या करना है? तुम मुझे चाहती हो या नहीं चाहती। निश्चित ही तुम अपने मन को जानती हो।" "क्या मन को समझना इतना आसान है?" माधवी ने कहा और फिर उलटकर प्रश्न करते हुए पूछा, "क्या एकतरफा प्यार संभव है?"

तो क्या इसका मतलब यह है कि सिर्फ मैं ही तुम्हें प्यार करता हूँ और तुम पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं है?"

"मैंने यह तो नहीं कहा! मैं तो महज ऐसी स्थिति की संभावना के बारे में कह रही थी। क्या यह संभव नहीं है कि कोई किसी को बेहद चाहता हो लेकिन दूसरा इससे पूरी तरह बेखबर हो? ऐसी स्थिति में प्यार के मायने क्या हैं ?"

इस विषय पर दोनों में काफी तर्क-वितर्क हुए, पर अंत में माधवी के बिना किसी आश्वासन के इंद्रनाथ को लौटना पड़ा। उनकी प्रत्येक मुलाकात से हालाँकि इंद्रनाथ को ऐसा लगने लगा था कि धीरे-धीरे वे एक-दूसरे के करीब आते जा रहे हैं, लेकिन हर बार उनकी बातचीत तार्किक तत्त्व में उलझकर रह जाती थी। माधवी उसे कभी भी उसके प्रति अपने मनोभाव के बारे में कुछ नहीं बताती थी और इंद्रनाथ के लिए यह धैर्य की परीक्षा थी। हर मुलाकात के बाद वह माधवी को क्रमशः अधिक चाहने लगा। माधवी के पास बैठकर बातें करते समय उसकी यह प्रबल इच्छा हुआ करती थी कि उसके जीवन पर

पूरी तरह अधिकार जमाए बैठी इस लड़की को अपनी बाँहों में हमेशा के लिए बाँधने की बात तो दूर, उसे छूना तक असंभव और दुष्कर लगता था।

सिनेमा हॉल में बैठे फिल्म देखते वक्त परदे पर भावुक दृश्यों को देखकर जब इंद्रनाथ माधवी की ओर झुकने लगता तब माधवी खुद को सँभाल लिया करती थी। सोफे पर एक-दूसरे से सटकर बैठे बातचीत करते समय कभी-कभी माधवी के कंधे पर अपना हाथ रख देने पर भी वह कोई आपत्ति नहीं करती थी, लेकिन जब वह माधवी को अपनी ओर जरा भी खींचने की कोशिश करता, माधवी यकायक स्थिर होकर बैठी रहती और इंद्रनाथ हार मानकर अपना हाथ हटा लेता। कभी-कभी इंद्रनाथ माधवी की जाँघ या कमर पर भी हाथ रख देता, किंतु उसका हाथ वहाँ से खिसककर माधवी के शरीर के अन्य स्थानों पर जाने से पहले ही माधवी अपना हाथ उसके हाथ पर रखकर रोक लेती थी। माधवी की तबीयत खराब होने पर उसके शरीर का ताप देखने इंद्रनाथ का हाथ सिर्फ माधवी के माथे और गले तक ही पहुँच पाता था।

अब इंद्रनाथ माधवी को इतना चाहने लगा था कि वह अपने शारीरिक दावे को माधवी पर जबरन लादकर अपने संबंधों को कलुषित नहीं करना चाहता था। अब वे सभी विषयों पर स्पष्ट और निष्कपट विचार करते तथा शारीरिक व अन्य यौन-संबंधों के बारे में बातचीत करते समय माधवी को किसी तरह की शर्म या संकोच नहीं होता था। इस विषय पर वे हँसी-मजाक भी किया करते, किंतु इतना सब होने के बावजूद इंद्रनाथ माधवी के करीब नहीं आ सका। एक दिन इंद्रनाथ ने माधवी से मजाक में पूछा, "तुम 'फ्रीज्ड' तो नहीं हो?" माधवी ने भी हँसते हुए जवाब दिया, "आजमाकर देख लो!" उस दिन और कुछ कहने या करने का साहस इंद्रनाथ को नहीं हुआ, लेकिन उसके बाद एक दिन जब अपनी दोनों बाँहें फैलाकर उसने माधवी को आँखों के इशारे से अपने करीब आने का आमंत्रण दिया, माधवी अधीरतापूर्वक आकर उसकी बाँहों में बँध गई और उसने खुद को पूरी तरह समर्पित कर दिया।

ऐसा नहीं था कि माधवी ठंडी थी, बल्कि वह तो इंद्रनाथ के सपने से भी बढ़कर रंगीन और चकाचौंध थी। उसकी आँखें अग्निगर्भा उल्का थीं जिनकी चुभन मन के शून्य वायुमंडल को दग्ध करके सीधे अंतरात्मा तक पहुँचती थी। उसके होंठ ज्वालामुखी थे जिसका प्रत्येक चुंबन एक-एक विस्फोट था। उसका आलिंगन अग्नि-वलय था; उसकी साँसें निदाघ की निर्मम आँधी थीं; चूर्ण-कुंतल अग्निशिखा थी; प्रत्येक रोआँ था एक स्वतंत्र स्फुलिंग। उसका अभ्यंतर एक

प्रज्वलित यज्ञकुंड था जिसमें इंद्रनाथ हर बार जल-भुनकर, उबलकर, पिघलकर पुनः शुद्ध-पवित्र और निखरकर निकल आता था।

साड़ी पहने उसके सामने बैठी माधवी जब मंद-मंद मुस्कराया करती थी तब इंद्रनाथ उस दुबली-पतली लड़की को समझ नहीं पाता था। बिस्तर पर माधवी का रूप बिल्कुल अलग होता था। उसके होंठों पर मुस्कराहट नहीं थी, चेहरे पर शांति नहीं थी, आँखों में कोमलता नहीं थी। वह पूरी तरह देहमय होकर इंद्रनाथ को ग्रस लेती थी। शांत, शिष्ट, छरहरी-सी वह लड़की यकायक हाथ-पैर, होंठ, छाती में तब्दील होकर एक उच्छृंखल अवयव बन जाती थी। इंद्रनाथ माधवी के उस अवतार के आगे खुद को पूरी तरह समर्पित करके सुखी था।

उस दिन हठात् सबकुछ पुनः बदल गया, जब बिना किसी कारण माधवी ने इंद्रनाथ से उसे छूने को मना कर दिया। यदि यह बात उनकी घनिष्ठता से पहले हुई होती तो इंद्रनाथ माधवी से इस बात का स्पष्टीकरण माँगता, लेकिन इस वक्त एक-दूसरे को इतने करीब से समझ लेने के बाद माधवी के इस व्यवहार ने इंद्रनाथ को हैरत में डाल दिया। उसने चुपचाप अपना हाथ लौटा लिया और उसके बाद माधवी को दुबारा छूने का कोई प्रयास नहीं किया। इस घटना के बाद जब पुनः उनकी मुलाकात हुई, इंद्रनाथ को वह मुलाकात नितांत बनावटी और छलपूर्ण लगी। जो लड़की उसके मन और शरीर का एक विशेष हिस्सा बन चुकी थी, इस वक्त वह उससे दूर बैठी थी। दोनों में सिर्फ एक स्पर्श मात्र की दूरी थी और वे औपचारिकतापूर्ण बातें कर रहे थे। माधवी की साड़ी के भीतर की उस दूसरी मूर्ति को इंद्रनाथ देख नहीं पा रहा था। एक लंबी साँस अपने सीने में दबाए वह वहाँ से उठकर चला आया।

इंद्रनाथ अब माधवी के इस तरह के व्यवहार का कारण ढूँढ़ने लगा। क्या माधवी किसी और को चाहने लगी है? क्या माधवी का उसके प्रति कोई शारीरिक आकर्षण नहीं रह गया और वह घृणा का पात्र बन गया? क्या माधवी को अपने किए पर पछतावा होने लगा और खुद को अलग कर लेना ही उस पछतावे की परिणति थी? लेकिन इंद्रनाथ किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका, क्योंकि माधवी दृढ़ निश्चयवाली लड़की थी और उसे अपने फैसले पर पूरा आत्मविश्वास था। आज तक उसने अपने किसी फैसले पर पश्चात्ताप नहीं किया था। तो फिर माधवी ने खुद को क्यों उससे इतना दूर कर लिया?

इंद्रनाथ पुनः अपने पुराने हालात में लौट गया। वह समय था अप्राप्ति का, एक संपूर्ण और अंतहीन प्राप्ति से होकर अब वह पुनः अपने प्रारंभिक अभाव

की स्थिति में लौट आया था। वह हर पल माधवी के उस बर्ताव का कारण ढूँढ़ने लगा। माधवी को पाना न पाना, उनके प्यार, घनिष्ठता आदि से ऊपर थी उसकी यह अनुत्तरित जिज्ञासा। इस तरह के मानसिक हालात में माधवी के साथ उसकी मुलाकातें भी कम होने लगीं, क्योंकि माधवी से औपचारिकतावश मिलना अब इंद्रनाथ के लिए काफी कष्टदायक था। उसने सोचा कि वह माधवी को भूल जाएगा। भूल जाएगा अपने परिचय का प्रथम अध्याय और बढ़ते हुए रिश्तों की घनिष्ठ घड़ियाँ। लेकिन उसे लगा कि किसी को याद रखना जितना आसान है, भूल जाना उतना ही मुश्किल।

इंद्रनाथ ने सोचा था समय ही कोई समाधान लाएगा। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, इंद्रनाथ माधवी के बारे में उतना ही अधिक सोचने लगा। माधवी का प्रत्येक स्मरण उसके लिए क्रमशः अधिक दुःखदायी होने लगा। माधवी समय-असमय आकर उसके मन को अभिभूत करने लगी। इंद्रनाथ का चैन जाता रहा। माधवी की याद जब उसे बार-बार परेशान करने लगी, तब इंद्रनाथ ने मन ही मन कहा—'माधवी, मुझे मेरी इस अभिशप्त जिंदगी से मुक्त कर दो। तुम पुनः मुझसे अपरिचित हो जाओ। मैं पुनः तुमसे पहली बार मिलकर अपना प्रेम निवेदन प्रकट करूँगा। तुम मेरे प्यार को अस्वीकार कर दोगी, लेकिन मुझे नहीं। और माधवी, मैं तुम्हें स्पर्श करने के प्रयास में अपनी बची हुई जिंदगी गुजार दूँगा।

फोटोग्राफ

छुट्टी के दिन पुराने कागजात में कोई जरूरी पत्र ढूँढ़ते समय श्रद्धानंद की नजर पड़ी एक फोटोग्राफ पर। उस फोटो में श्रद्धानंद और उसके पाँच मित्र खड़े थे। सबके चेहरे पर रंग पुता था और सभी हँस रहे थे। होली के दिन उनके हॉस्टल के सामने किसी ने वह फोटो खींचा था। फोटो के पीछे जो तारीख लिखी थी, वह थी तीस साल पहले की।

फोटो की ओर देखते हुए श्रद्धानंद ने अपने सिर पर हाथ फेरा। हालाँकि फोटो में वह स्वस्थ और तंदुरुस्त लग रहा था, इस समय वह सूखा और बीमार तथा काफी दिनों से टकला भी हो चुका था। फोटो देखकर उसके मन में पहली प्रतिक्रिया हुई कि वह इसे ले जाकर अपनी पत्नी और बच्चों को दिखाएगा। फोटो देखकर वे लोग कम से कम इतना तो जान जाएँगे कि श्रद्धानंद कभी सौम्यदर्शन भी था। पारिवारिक भँवर में पड़कर आज वह चिड़चिड़ा और टकला हो गया है।

फोटो को दुबारा अच्छी तरह देखते हुए उसने अपने मित्रों को पहचानने की चेष्टा की। वह सिर्फ एक को ही पहचान पाया। अभिराम भी इसी शहर में रहता था और कभी-कभार उनकी मुलाकात भी हो जाती थी, जबकि उनके बीच कोई विशेष सौहार्द नहीं था। दूसरे दोस्त हठात् पहचान में नहीं आए। पढ़ाई पूरी करने के बाद सभी अलग हो गए; बाकी के चार लोग भी जहाँ-तहाँ चले गए होंगे। कॉलेज में पढ़ते समय ये पाँच लोग भी उसके सबसे घनिष्ट मित्र थे, इस बारे में भी संदेह था श्रद्धानंद को। शायद किसी ने यों ही फोटों खींच लिया था, जब वे सभी होली खेलने के बाद हॉस्टल के सामने उस जगह खड़े होंगे।

ऐसे में उसे हॉस्टल की याद आ गई। बीबी बच्चों और रिश्तेदारों को अपने कॉलेज के दिनों की बात कहते समय श्रद्धानंद कहा करता था, कितने मस्ती भरे दिन थे तब। मस्ती का मतलब यह था कि इम्तिहान के सिवाय और कोई चिंता

नहीं होती थी, हॉस्टल सुपरिटेंडेंट के अलावा किसी और का डर नहीं होता था या फिर सिगरेट पीने अथवा सिनेमा देखने पर रोकने वाला कोई अभिभावक नहीं होता था आस-पास। दूसरी ओर, हॉस्टल का खाना बहुत घटिया होता था, रोजाना रसोइये से झगड़ा होता उनका, गर्मियों में मेस बंद हो जाता था और उन्हें धूप में बहुत दूर जाकर किसी होटल में अधिक पैसे देकर खाना पड़ता था। गर्मियों में सुबह नौ बजे पानी बंद हो जाता। अधिक बारिश होने पर सीढ़ियों के पास पानी जम जाता। नहान घर में पुराने इलेक्ट्रिक तार के कारण गीली दीवार को छूने से शॉक लगता। रात को देर से हॉस्टल लौटने पर फाटक कूदकर अंदर जाना होता और चौकीदार रजिस्टर में नाम लिखकर दस्तखत करने को बाध्य करता था।

फिर भी कॉलेज के दिन याद करने पर सारा कुछ रोमानी लगता था। श्रद्धानंद को पहले याद आ जाती थीं उनके क्लास की लड़कियाँ और खासकर वह लड़की, जिसका नाम उन लोगों ने रखा था ब्लॉसम। ऐसा नाम क्यों रखा था? शेक्सपियर के नाटक की किसी पंक्ति से या उन दिनों की किसी फिल्मी अभिनेत्री के नाम से? वह लड़की ताजगी भरी, खूबसूरत और जीवंत थी। इस वक्त मिसेज अमुक नाम की बाल-बच्चेदार, पोता-पोती वाली घरेलू गंभीर बुढ़िया को देखने से क्या श्रद्धानंद को याद आएगी तीस साल पहले कतारों में रखी लकड़ी के बेंचवाली अंगेजी लिटरेचर की क्लास? उस महिला से बातें करते समय क्या श्रद्धानंद की छाती में हथौड़ी की चोट पड़ेगी या उसका गला सूख जाएगा? उसका नोटबुक मांगकर उसमें भेजी गई कागज की पर्ची देखकर क्या उसकी एक और छटपटाहट भरी रात अनिद्रा में बीतेगी।

काफी दिनों तक उस पर्ची को बहुत संभालकर रखा था श्रद्धानंद ने। उसे लगा कि उस पुराने फोटो की तरह शायद वह पर्ची भी उसे अचानक मिल जाएगी। इसी उम्मीद से उसने जितने भी पुराने कागजात संभालकर रखे थे, सब निकालकर ढूँढ़ने लगा। वे सारे कागज नितांत शुष्क, नीरस सांसारिक दलील के दस्तावेज थे। इंश्योरेंस पॉलिसी, नियुक्ति-पत्र, रसीदें, सर्टीफिकेट्स, पासबुक, लाइसेंस इत्यादि के बीच 'तुम्हारा हैमलेट का नोट मुझे चाहिए' जैसी अपरिपक्व हाथ से लिखी कोई पर्ची नहीं मिली। अपने अनजाने में कभी उस कागज की पर्ची को फेंक दिया हो, ऐसा कुछ याद नहीं आ रहा था श्रद्धानंद को। शायद जीवनक्रम में अपने अनदेखे में जिस तरह उसके बाल, उसका स्वास्थ्य, उसकी यादें खो गईं, उसी तरह कहीं खो गई, अच्छी तरह संभालकर रखी उसकी जवानी की वह कागज की पर्ची।

देखा जाए तो उसके पास उसके पुराने दिनों की ऐसी कोई चीज नहीं थी जो उसे उसके चिंतारहित सदाबहार शांत दिनों की याद दिला सके। श्रद्धानंद ने निरपेक्ष होकर सोचने की कोशिश की वे पुराने दिन वाकई कैसे थे। आजकल उसके जीवन का प्रत्येक क्षण चिंताओं से भरा था। कोई न कोई समस्या उसे हमेशा घेरे रहती थी। पढ़ाई के दिनों में हालाँकि परीक्षा का एक प्रच्छन्न आतंक सिर पर सवार रहता था और ठीक समय पर घर से मनीआर्डर न आने जैसी सामयिक समस्या भी कुछ चिंतित कर देती थी। किंतु उनमें रक्तचाप बढ़ाने जैसा कोई सामर्थ्य नहीं था; ये सब मन को छूते थे किसी फिल्म में दुखद घटना की धुँधली यादों की तरह।

उस वक्त देह और मन की क्षमता थी हर चीज़ का सामना कर लेने की; सारा कुछ स्वीकार, संवरण, ग्रहण कर लेने की। देह की कोई चिंता नहीं थी। धूप में सीझने या बारिश में भीगने का डर नहीं था। चाय में ठीक कितना चम्मच शक्कर डाली जाएगी, उस बारे में कोई आबद्ध विचार नहीं था तब। दिन घंटा-मिनट के अनुसार लकीर खींचकर बँटा हुआ नहीं था। इच्छा को अपनाने में संकोच नहीं था, भविष्य के लिए उद्वेग नहीं था। जीवन था आगे बढ़ते चले जाने का एक प्रशस्त मार्ग जिस पर तुम चलते हो, कूदते हो, दौड़ते हो, बैठे रहते हो, सो जाते हो, सपने देखते हो—कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं। उससे तुलना करो तो आज का जीवन एक बँधा-बँधाया समय है– समय-सारिणी में बँधी रेलयात्रा है, जिसमें सारा कुछ नियंत्रित है: तुम्हारा गतिपथ, रफ्तार, ठहराव की जगह और समय और टिकट में लिपिबद्ध गंतव्य स्थल।

श्रद्धानंद ने पुनः फोटोग्राफ की ओर देखा और एक लंबी साँस भरी। पुराने दिनों के एकमात्र मूर्त्त और साकार उस प्रमाण-पत्र से धूल पोंछकर बहुत संभालकर पकड़ लिया, ताकि उसे दुबारा न खो दे।

उसने यह भी तय किया कि उस फोटो में जो चेहरे हैं वह उनसे दुबारा आत्मीयता स्थापित करने की चेष्टा करेगा। इस निर्णय में उसका पहला निशाना था अभिराम। हालाँकि वह जानता था कि अभिराम इसी शहर में किसी दवाई कंपनी में काम करता है, पर उसे ढूँढ़ निकालना टेढ़ी खीर थी। कई जगह फोन करके, अभिजीत और अभिरूपों से गलती से बात करने के बाद अंत में अभिराम मिला। टेलीफोन में बात करने के बाद श्रद्धानंद समझ नहीं पाया कि अभिराम से पुनः संपर्क बनाने के लिए क्या कारण देगा। उससे कहा, मैं सोच रहा हूँ, हमारे हॉस्टल के जितने भी लोग यहाँ हैं, सभी मिलकर एक क्लब बनाएँ।

अभिराम बोला, कॉलेज में आप और मैं एक साथ पढ़ते जरूर थे; लेकिन हमारे हॉस्टल अलग-अलग थे। यह कहने के बाद उसने श्रद्धानंद के हॉस्टल में रहने वाले कौन-कौन लोग इस समय इस शहर में रहते थे, उनकी एक सूची दी। श्रद्धानंद ने कहा, या फिर हम दोनों के हॉस्टलों को मिलाकर कुछ किया जा सकता है।

हम कब इस बारे में इकट्ठे बैठकर कुछ बातचीत करें? यह प्रस्ताव स्वयं श्रद्धानंद को तर्कसंगत नहीं लगा। फिर भी उसने अभिराम से मिलने का समय तय किया।

उस बातचीत के बाद श्रद्धानंद ने अपनी स्मरणशक्ति की स्थूलता को लेकर लज्जित महसूस किया। अब तक उसकी यही धारणा थी कि अभिराम उसी के हॉस्टल में रहता था। इसके अलावा अभिराम ने जितने भी नाम बताए, किसी का चेहरा याद नहीं आ रहा था श्रद्धानंद को। एक प्रकार की तुच्छता का बोध हुआ उसे। क्या अपने शरीर के साथ-साथ अपनी मानसिक शक्ति-सामर्थ्य भी खो बैठा है वह? एक भी नाम याद नहीं आ रहा था, जबकि अभिराम बिना रुके इतने नाम कह गया! क्या इसकी वजह यह थी कि अभिराम अभी भी उनके संपर्क में था और श्रद्धानंद ने संपर्क काट रखा था? उसने तय किया कि एक दिन शांत मन से बैठकर वह अपने हॉस्टल के दिनों की बातें याद करेगा और जैसे भी हो कुछ अन्य मित्रों के नाम याद करके अपनी स्मरणशक्ति के दुरुस्त होने का प्रमाण पाएगा।

किंतु उस तरह एकांत में बैठकर पुरानी बातें सोचने का अवसर नहीं मिला श्रद्धानंद को और रविवार को तय समय पर अभिराम आ गया। पहले की अपेक्षा अधिक हार्दिकता के साथ उसका स्वागत किया श्रद्धानंद ने और उसका कुशलक्षेम पूछा। इस वक्त उन्होंने अपनी-अपनी कमाई का जिक्र भी किया। सौभाग्य से श्रद्धानंद और अभिराम की कमाई लगभग बराबर थी। इस बात को लेकर उनके बीच कोई समस्या नहीं थी। आज की बातचीत में श्रद्धानंद ने क्लब बनाने की बात नहीं छेड़ी, अंदर से फोटोग्राफ लाकर उसने अभिराम को दिखाया।

उस फोटो को अच्छी तरह देखने के बाद अभिराम ने कहा, होली के दिन रबीन ने खींचा था यह फोटो। उन दिनों उसके पास जर्मनी का एक अच्छा कैमरा था, जो कि उसके विलायत में रहनेवाले मामा ने उसे भेजा था। आज कल रबीन मुंबई में एक्सपोर्ट का व्यापार करता है। श्रद्धानंद ने याद करने की काफी कोशिश की, किंतु रबीन नाम का कोई उसे याद नहीं आया। अभिराम ने

कहा, उस वक्त दिन के तीन बजे थे। हमारे दोनों हॉस्टल के बीच गालियों का लेन-देन खत्म हो चुका था। श्रद्धानंद को कुछ याद आ रहा था कि होली के दिन आसपास के दोनों हॉस्टल के छात्रों द्वारा एक-दूसरे को गाली देने की परंपरा थी।

फोटो में श्रीकांत को देख रहे हैं ना? उसे ले जाकर आपके हॉस्टल के पीछे की ओर जो नया ब्लॉक बन रहा था, वहाँ कीचड़ में डाल दिया था हमने। देखिए, उसके पूरे कपड़ों में कितना कीचड़ लगा हुआ है!

श्रीकांत भी याद नहीं आया श्रद्धानंद को। उसने पूछा, अन्य लोगों को पहचान पा रहे हैं? अभिराम ने अनायास ही बाकी के तीन लोगों के नाम, वे लोग क्या-क्या पढ़ते थे और आजकल कौन कहाँ है उस बारे में बताया। तन्मय होकर उसकी बातें सुनी श्रद्धानंद ने। क्या यह आदमी एक चलता-फिरता एनसाइक्लोपीडिया है? कितनी बातें याद हैं। कहाँ, उसे खुद को तो कुछ भी याद नहीं।

यदि आप क्लब बनाने की सोच रहे हैं तो माधवबाबू से मिलिए। वे यहीं पास में रहते हैं। चाय पीते हुए सलाह दी अभिराम ने।

तो फिर चलिए, साथ मिलकर चलते हैं उनके पास।

नहीं-नहीं, अभिराम ने तुरंत कहा, कॉलेज के दिनों में मेरी उनसे नहीं बनती थी।

यह तो बहुत पुरानी बात है; किसी को कहाँ याद होगी।

देखिए, और किसी को याद हो न हो, मुझे तो याद है। आप चले जाएँ उनके पास। पर कुछ चिड़चिड़ा आदमी है, यह याद रखिएगा। इसके अलावा अच्छी नौकरी नहीं मिली, उसका भी अफसोस है उन्हें।

माधवबाबू का पता लिखकर देने के बाद अभिराम चला गया। श्रद्धानंद के कितना ही कहने के बावजूद उसके साथ माधवबाबू के पास जाने को राजी नहीं हुआ। श्रद्धानंद को आश्चर्य हुआ कि बीते दिनों की सुखद स्मृतियों की तरह उस अतीत के क्षोभ-क्रोध मान मनौव्वल और वैरभाव को भी कोई इतने दिनों तक याद रख सकता है। फिर उसे लगा कि शायद ये दोनों बातें एक-दूसरे की परिपूरक हैं। जिसे याद है, सबकुछ याद है। वरना उसकी तरह, कुछ आधी-अधूरी बातों के सिवाय और कुछ भी याद नहीं बीते दिनों की बातें।

यदि अभिराम उसके साथ गया होता तो श्रद्धानंद उसी दिन चला जाता माधव के पास। लेकिन उसके पास पता होते हुए भी माधव से मिलने में उसे संकोच हुआ। बीच-बीच में उस फोटो और पते को देखने के सिवाय उसने और कुछ नहीं किया। एक रोज छुट्टी के दिन सुबह पत्नी से कुछ नोक-झोंक होने के

बाद जब वह उदास हो बैठा था, श्रद्धानंद को उस फोटो की याद आई, उसने उसे निकालकर देखा। उसने तय किया कि वह उसी क्षण माधव के पास जाकर अपने उस अतीत में लौट जाएगा, जहाँ उसका यौवन, उसकी अंग्रेजी लिटरेचर की क्लास और सहपाठी लड़कियाँ सभी उससे ओतप्रोत रूप से जुड़े हुए हैं।

माधव सच में रूखे स्वभाव वाला आदमी था। श्रद्धानंद ने दरवाजा खटखटाया, एक बूढ़े आदमी ने अंदर से आकर पूछा, किसे ढूँढ़ रहे हैं? क्या चाहिए? श्रद्धानंद उस आदमी को बिलकुल पहचान नहीं पाया। मैंने कहा, माधवबाबू से मिलना है। वे हैं? बूढ़े ने कहा, मेरा ही नाम माधव है। क्या चाहिए?

नमस्कार सर। मेरा नाम श्रद्धानंद है। कॉलेज में हम साथ पढ़ते थे।

इस बात से प्रभावित नहीं हुआ माधव। एक मिनट तक श्रद्धानंद की ओर देखने के बाद बोला, नहीं, मुझे याद नहीं आ रहा। फिर भी बताइए, कोई काम था?

श्रद्धानंद ने सोचा वापस लौट जाएगा। लेकिन सुबह की खटासभरी घटना को याद करके खुद को संयत किया। बोला, यदि आपके पास दो मिनट का समय हो तो आपसे कुछ बातें करना चाहता था।

अत्यंत अनिच्छा के बावजूद माधव ने पूरा दरवाज़ा खोला और श्रद्धानंद को अंदर आने को कहा। बैठने के बाद श्रद्धानंद ने माधव की ओर बड़े ध्यान से देखा। हालाँकि उसका चेहरा काफी वयस्क लग रहा था, चलने-फिरने और व्यवहार की तेजी ने माधव की उम्र को काफी हद तक कम कर दिया था। किस तरह, किस रूप में बात शुरू करूँ मैं यह सोच ही रहा था, माधव ने कहा, हाँ, कहिए, क्या काम था।

कितना अभद्र व्यक्ति है, एक कप चाय तक नहीं पूछ रहा, सोचा श्रद्धानंद ने। बोला, एक गिलास पानी मिलेगा पीने को? खुद उठकर गया और पानी का गिलास उसे देने के बाद माधव ने उसकी ओर देखा, मानो कह रहा हो, तुम्हें जो भी कुछ कहना हो जल्दी कहो और जाओ यहाँ से, मुझे ढेरों जरूरी काम करने हैं। पानी पीने के बाद श्रद्धानंद ने दो बार खाँसा। बोला, हमारे शहर में हमारे कॉलेज-हॉस्टल के बहुत से मित्र हैं। मैं सोच रहा था सबको साथ लेकर यदि हम एक संघ बनाते तो बीच-बीच में पुराने मित्रों से मुलाकात हो सकती है।

माधव ने झट कहा, सर किसके पास समय है इस उम्र में संघ बनाने के लिए? हम ठहरे मजदूर। दिन भर की मजदूरी से हमें फुर्सत ही कहाँ?

श्रद्धानंद ने समझाया, नहीं-नहीं, आपको कुछ नहीं करना होगा। बैठक बुलाना, चाय की व्यवस्था आदि हम करेंगे। आप सिर्फ बीच-बीच में मीटिंग में आते रहें बस।

नहीं सर, आपको जो भी करना है करें, मुझे उसमें शामिल न करें, माधव इतना बोलते हुए उठकर खड़ा हो गया। हालाँकि अब उसके मन में संघ बनाने की कोई इच्छा नहीं थी, उसने कहा, आपका पता तो मेरे पास है ही, आपको पत्र लिखकर सूचित करेंगे। उस बात पर भी राजी नहीं हुआ माधव। उसने कहा, क्यों अपना समय और डाक टिकट बेकार करेंगे?

श्रद्धानंद खीझते हुए दरवाजे की ओर गया और बाहर निकलने के लिए डग बढ़ाया। इतने में उसे अपनी जेब में रखे उस फोटो की याद आ गई। भले ही वह आदमी अब श्रद्धानंद को फूटी आँखों नहीं सुहा रहा था, उसने वह फोटो अपनी जेब से निकालकर बड़े झिझक के साथ माधव के हाथ में पकड़ाते हुए कहा, मेरे पास यह पुराना फोटो पड़ा था। आप भी इसमें हैं। आते समय आपको दिखाने के लिए ले आया था।

बेहद अनमना होकर माधव ने उसके हाथ से वह फोटो लेकर घड़ी भर देखा और लौटा दिया। श्रद्धानंद्र उस फोटो को जेब में रख ही रहा था कि न जाने क्या सोचकर माधव ने वह फोटो उसके हाथ से वापस लेकर इस बार अच्छी तरह देखा। उसके चेहरे की भाव-भंगिमा धीरे-धीरे बदलने लगी।

कुछ साहस बटोरकर श्रद्धानंद ने उस फोटो पर अंगुली से दिखाते हुए कहा, आप उस किनारे खड़े हैं। माधव ने उसकी बात नहीं सुनी। मानो इस वक्त उसके दिमाग के अंदर तरह-तरह के कलपुर्जे फिर से ठीक होने लगे हों। उसने श्रद्धानंद को अनसुना करके खुद ही खुद से बोला, स्साला रामराम भी हमारे बीच आकर खड़ा हो गया था। श्रद्धानंद ने उसे ठीक किया, अभिराम। माधव ने कहा, अभिराम कहकर भला उसे बुलाता ही कौन था? मजाक में सभी उसे रामराम ही कहते थे। इस बार उसने श्रद्धानंद की ओर सीधे-सीधे देखा। बोला, तुम तो वही शेक्सपियर वाले श्रद्धानंद हो! तुम्हारे तो बाल न जाने कहाँ उड़ गए। चलो आओ, अंदर चलो। चाय पीए बिना कैसे चले जाओगे?

साहित्यकार

रात अधिक न होने पर भी जाड़ों के दिन की वजह से दुकान-बाजार सब बंद हो चुके थे। किताब की दुकान के पीछे एक छोटी-सी कोठरी में विष्णु शर्मा और उनका प्रकाशक सुरसेन बैठे रम पी रहे थे। अगला पुरस्कार किस तरह विष्णु शर्मा को मिले, उस बारे में वे विचार-विमर्श कर रहे थे। पुरस्कार के लिए इस साल एक और भी प्रभावशाली प्रतिद्वंद्वी थे। विष्णु शर्मा उस दिन सुबह उनके घर गए थे और वहाँ से हताश होकर लौटने की कहानी सुना रहे थे।

हम लोग उस आदमी को जितना बुद्धू समझते थे, वह उतना ही चालाक है। जैसे ही मैंने कहा कि वयस्क लोगों को पहले पुरस्कार मिल जाए, वह तुरंत सहमत हो गया। मेरे कुछ बोलने से पहले उसने कहा, हम दोनों का जन्म तो एक ही सन् का है, आपका जन्म किस महीने का है? मैंने कहा, मई। उसने कहा, मेरा भी जन्म मई का है; आपकी तारीख क्या है? इस वक्त मुझे कुछ सोच-समझकर बोलना था। यदि पहली तारीख कह देता तो ठीक होता। लेकिन मैंने सच कह दिया, चौबीस। उसने तपाक से कहा, मेरा तेईस, यानी मैं आपसे एक दिन बड़ा हूँ। मुझे और कुछ कहने का मौका दिए बगैर उसने मुझसे हाथ मिलाया। बोला, इस बार आप छोड़ दीजिए। अगले साल आपको पुरस्कार दिलाने की जिम्मेवारी मेरी है।

आपने बड़ी गलती की, गिलास में रम डालते हुए सुरसेन ने कहा, आपको उसके पास नहीं जाना चाहिए था।

मुझे मालूम था कि हम दोनों का जन्म एक ही सन् में हुआ था, किंतु मैंने उसके लेखक परिचय में देखा था कि उसका जन्म जनवरी महीने का है। झूठ कहकर उसने मुझे ठग दिया।

आपने मुझे भेजा होता उसके पास। मैं उस आदमी का रग-रग पहचानता हूँ। उसकी तीन किताबें छापकर भला मैं कम परेशान हुआ हूँ।

चलिए छोड़िए, जो होना था हो गया; अब आगे क्या करें बताइए।

लेखक और प्रकाशक बैठकर विधिवत योजना बनाने लगे। सुरसेन बड़े ही सुव्यवस्थित स्वभाव का था। एक सादा कागज लाकर उस पर सुंदर-सुंदर अक्षरों में पुरस्कार का नाम लिखा और उसके नीचे लिखा; इस वर्ष के विजेता विष्णु शर्मा? उसके नीचे उसने उस पुरस्कार के निर्णायक मंडल के सदस्यों के नाम, पते और मोबाइल नंबर लिखे। उनमें से किस-किस से विष्णु शर्मा कहेंगे और किस-किस से सुरसेन कहेंगे, उस बारे में भी लगभग सब तय हो गया। सिर्फ एक खडूस स्वभाव के व्यक्ति के पास दोनों में से कोई भी जाने को राजी नहीं हुआ। सुरसेन ने उस आदमी के नाम के पास क्रॉस का एक बड़ा-सा निशान लगा दिया। एक और निर्णायक के बारे में यह तय हुआ कि उसके जिस कविता संग्रह की पांडुलिपि तीन वर्षों से सुरसेन के पास पड़ी है, उसे वह छाप देगा। उसके बाद सुरसेन ने कहा, कल सुबह से ही हमें इस काम में जुट जाना होगा।

क्या इस बार पक्का मिलेगा? कुछ संदिग्ध हो पूछा विष्णु शर्मा ने। सुरसेन बोला, यह आप मुझ पर छोड़ दें। पर आप की जितनी जिम्मेवारी है, उसे आप कल तक पूरी कर लें। इतना कहकर उसने विष्णु शर्मा को भरोसा दिलाने की कोशिश में उस पन्ने पर उसके नाम के पास लगा प्रश्न चिह्न काट दिया।

इस तरह से विष्णु शर्मा की समस्या का समाधान करने के बाद अब सुरसेन अपनी समस्या पर आ गया। उसके द्वारा छापी गईं किताबों में से किस तरह कुछ किताबें स्कूल-कॉलेज के पाठ्यक्रम में शामिल हो सकेंगी, उस बारे में योजना बनाने लगे दोनों मिलकर। पुरस्कार दिलाने से अधिक श्रम और समय सापेक्ष था यह काम और इसमें रुपए-पैसों का लेन-देन भी था। उस कागज को उलटकर सुरसेन ने उस पर 'पाठ्य-पुस्तक' शीर्षक लिखकर उसने नीचे लकीर खींच दी और उसके नीचे संबंधित लोगों की सूची बना दी। आजकल विष्णु शर्मा जैसा साहित्य लिख रहे थे, वह सब स्कूल-कॉलेज के पाठ्यक्रम से परे था। इसलिए पाठ्य-पुस्तक की सूची में उनका विशेष व्यक्तिगत आग्रह नहीं था। फिर भी उन्होंने इस योजना में सुरसेन को हरसंभव मदद करने का झूठा वायदा किया।

पुनः थोड़ा रम पी लेने के बाद विष्णु शर्मा ने वही पुराना प्रसंग उठाया, अपने लेखन पर एक आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित करने की बात। सुरसेन ने कहा, आपने पहले भी यह बात मुझसे कही थी, लेकिन मैंने उस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया था। चलिए, अब इस में भी जुट जाएँ। मैं एक सादा कागज लाता हूँ। आज इस बारे में भी फैसला कर लेते हैं।

इस बार कागज पर सुरसेन ने लिखा : युगस्रष्टा विष्णु शर्मा। उसके नीचे वे विष्णु शर्मा के किन-किन साहित्यिक योगदान पर लेख लिखवाएँगे उसकी एक सूची तैयार की गई। अब हर लेख के लिए एक-एक लेखक निर्धारित किए गए। यह सब करने के बाद सुरसेन ने एक मौलिक प्रश्न रखा : जिन लेखकों की सूची तैयार की गई है, उनमें से कोई भी श्रम और समय व्यय करके लेख नहीं लिखेंगे। इस समस्या का समाधान भी सुरसेन ने स्वयं सुझाया। ये सारे लेख विष्णु शर्मा खुद लिखेंगे और उन लेखों को भिन्न-भिन्न लेखकों के नाम से छापने की जिम्मेवारी सुरसेन संभालेगा।

उस बारे में विष्णु शर्मा कुछ कहने जा ही रहे थे कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। हालाँकि कमरे में बैठकर शराब पीने के लिए किसी तरह की कानूनी पाबंदी नहीं थी, फिर भी एक स्वतः प्रतिक्रिया से सुरसेन और विष्णु शर्मा ने रम की बोतल और गिलास टेबुल के नीचे छुपाकर रख दिए एवं विष्णु शर्मा मूंगफली का प्लेट हाथ में लेकर पूरे मन से खाने का मूक अभिनय करने लगे।

दरवाजा थोड़ा-सा खोलकर सुरसेन ने बाहर अंधेरे में झाँका। साइकिल लिए खड़े व्यक्ति ने कहा, मैं रसानंद हूँ। विष्णु शर्मा को ढूँढ़ते हुए आया हूँ।

तुम्हें किसने बताया कि वे यहाँ हैं?

बाहर उनकी गाड़ी खड़ी देखी।

सुरसेन ने विष्णु शर्मा की ओर देखकर सहमति ली और दरवाजा खोलकर उसे अंदर आ जाने को कहा। साइकिल में ताला बंद करके रसानंद के अंदर आने तक विष्णु शर्मा प्लेट रखकर टेबुल के नीचे से बोतल और गिलास निकालकर ऊपर रख चुके थे। रसानंद को देखकर पूछा, कैसा चल रहा है तुम्हारा किताब लिखने का व्यापार।

इस बार पूजा में सरकार के बोनस देने की वजह से किताबें खूब बिकी हैं। पिछले साल मेरी ग्यारह किताबों की जितनी बिक्री हुई थी, इस साल सिर्फ पाँच किताबों में उतनी कमाई हो चुकी है।

रसानंद के बैठ जाने पर सुरसेन ने उसकी ओर गिलास दिखाकर पूछा, क्या चलेगा?

नहीं सर, छोड़ चुका हूँ। तबीयत ठीक नहीं रहती थी।

यानी कि पिछले साल ग्यारह किताबें लिखीं, विष्णु शर्मा ने कहा, मैंने पिछले तीन साल से एक पंक्ति तक नहीं लिखी।

आपकी बात अलग है, रसानंद ने कहा, आप शौक के लिए लिखते हैं, नाम कमाने के लिए लिखते हैं। मैं एक पेशेवर लेखक हूँ। न लिखा तो रोजी-रोटी बंद।

इतनी किताबें बेच कैसे लेते हो? कौन पढ़ते हैं तुम्हारी किताबें?

आप लोगों की किताबें कहाँ-कहाँ पहुँचती हैं, कौन पढ़ते हैं, यह जानना मुश्किल है; लेकिन मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी किताबें कहाँ जाती हैं। मेरी किताबें पढ़ते हैं मुफस्सल के कम पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियाँ, कामगार लोग। मेरे पास छह सौ तेईस पान की दुकान के पते हैं। नई किताब छपते ही कुछ-कुछ प्रतियाँ सीधे उन्हें वी पी पी से भेज देता हूँ। उसके बाद फिर से आर्डर आने पर और भेज देता हूँ।

इस बातचीत के बीच सुरसेन चुप था; क्योंकि पहले वह रसानंद का भी प्रकाशक था। रसानंद की किताबों से अच्छा मुनाफा मिलता था सुरसेन को। भले ही उन किताबों को सभी घटिया उपन्यास कहा करते थे, और साहित्य के अध्यापक व आलोचक उन्हें साहित्य के अंतर्गत शामिल करने से हिचकते थे, वे किताबें खूब बिकती थीं एवं उत्कृष्ट साहित्यिक प्रकाशन से जो घाटा होता था, रसानंद की किताबें उसकी भरपाई करने में सहायक होती थीं। जब रसानंद ने अपनी छोटी-सी सरकारी नौकरी छोड़कर पूरा समय लिखने में लगा दिया, उसके बाद से उसने अपनी किताबें खुद ही छपवाकर बेचने की व्यवस्था की। इस तरह सुरसेन से उसका संपर्क कट गया। सुरसेन ने उसे आगाह किया था कि खुद ही किताबें छपवाकर वह बेच नहीं पाएगा। लेकिन अपने बाजार को अच्छी तरह जानने वाले लेखक रसानंद ने यह साबित कर दिया कि बिना किसी संस्था के भी किताबें बेचना संभव है।

विष्णु शर्मा ने कहा, हालाँकि मैंने तुम्हारा कोई उपन्यास पढ़ा नहीं है, फिर भी तुम्हारी किताबों के नाम, जैसे 'लौटोगे कब प्रिय' से पता चल जाता है कि तुमने सस्ते प्रेम-कथा लिखकर बाजार को अपनी मुट्ठी में कर रखा है।

ऐसा नहीं है। मैं आपको अपनी कुछ किताबें दूँगा। पढ़कर देखिए। हर विषय पर लिखता हूँ मैं। पिछले साल राजनीतिक गुंडों ने उस अखबार वाले की बीबी को मार डाला था। मैंने उस पर भी एक किताब लिखी, 'रेप एंड मर्डर'। उससे पहले बँधुआ मजदूरी की समस्या पर लिखा था। 'मुक्ति कब'। अवर्ण विवाह पर 'एक ही खून', मिल मजदूरों की समस्या पर 'दैनिक मजदूरी', और दहेज पर 'खरीद फरोख्त'। कहा जाए तो ऐसी कोई भी सामाजिक समस्या नहीं बची जिस पर कि मैंने किताब न लिखी हो।

विष्णु शर्मा को याद आया कि काफी दिनों पहले उन्होंने रसानंद का एक उपन्यास पढ़ा था। ट्रेन में सफर कर रहे एक सहयात्री से मांगकर। पढ़ते समय बुरा नहीं लगा था वह उपन्यास। उपन्यास के एक पात्र को साफ-सुथरा और बदलकर किस तरह अपने उपयोग में लाएँगे, यह भी निश्चित कर लिया था विष्णु शर्मा ने। हालाँकि इस वक्त यह बात रसानंद को बताने की आवश्यकता नहीं समझी उन्होंने। रसानंद साहित्यिक समाज का जाति-भ्रष्ट व्यक्ति था एवं साहित्यिक समीक्षा आदि में उसका नाम नहीं आता था। फिर भी अपने पाठकों से सीधे संपर्क अपने लेखन पर पूरी तरह निर्भर करने वाले उस व्यक्ति को देखने से विष्णु शर्मा को उससे ईर्ष्या होती थी। उन्होंने व्यस्तता का दिखावा करते हुए अपनी घड़ी देखी। बोले, क्या मुझसे कोई काम था?

सीधे-सीधे अपनी समस्या न बताकर रसानंद ने एक लंबा विवरण दिया। आपातकाल के दौरान वह जेल गया था। उससे चार साल पहले पुलिसवालों पर आपेक्ष लगाकर, उसने 'रक्षक भक्षक' नाम से एक किताब लिखी थी। उस किताब के बारे में किसी को याद नहीं था; किंतु परिस्थिति का लाभ उठाकर उसके मकान मालिक ने उसे पुलिस के हाथों गिरफ्तार करवा दिया। जेल जाने के बाद गुंडे लगाकर उसकी पत्नी और बच्चों को मकान से बाहर निकाल दिया गया। उसकी पत्नी ने नौकरानी बनकर किसी के घर में रहकर बच्चों को पाला; लेकिन ऐसे हालात में पंद्रह साल का बेटा कहीं चला गया, फिर नहीं लौटा। जेल से लौटकर रसानंद ने फिर से किताबें लिखीं, फिर से बिखरी जिंदगी को सँवारा।

जब रसानंद ये बातें बता रहा था, उसके मन में कोई क्षोभ नहीं जान पड़ रहा था। मानों कोई पुराना अध्याय समाप्त हो गया हो, जिसके बारे में अब सोचकर कोई लाभ नहीं। आपातकाल के दौरान किसी लेखक ने प्रशासन का विरोध नहीं किया, ना ही उसकी तरह जेल गया था। लेकिन आपातकाल खत्म होने के बाद सभी दावा करने लगे कि उन लोगों ने अपने लेखों में इसका जमकर विरोध किया था। यहाँ तक कि विष्णु शर्मा, जिन्होंने कि सरकार का समर्थन करते हुए लेख लिखे थे, आगे चलकर प्रशंसा के पात्र बने थे क्योंकि जंगल के पशु-पक्षियों के बारे में उस वक्त लिखे अपने एक रूपक कथा में कहते हैं कि वह व्यक्ति-स्वातंत्र्य का दावा था और पाबंदियों पर गुप्त आक्षेप थे। चूंकि साहित्यकार और आलोचक रसानंद की गिनती साहित्यिक रचनाकार के रूप में नहीं करते थे, इसलिए उसका जेल जाना न जाना उनके लिए कोई मायने नहीं रखता था।

अब रसानंद ने अपनी समस्या के बारे में बताया। पुलिस ने उसके नाम से एक अश्लीलता का केस शुरू किया था। उस केस के शुरू होने का मुख्य कारण था 'रक्षक भक्षक' के समय के दरोगा का फिर से उसके इलाके के थाने में तबादला हुआ था और रसानंद के जेल से बाहर आकर आम नागरिक की तरह जीवन-यापन करना उसे सहन नहीं हुआ। उसी केस के सिलसिले में वह विष्णु शर्मा की मदद चाहता था। उसने विष्णु शर्मा से कहा, आप लोग अपने-अपने लेखन में जिस तरह का यौनवर्णन करते हैं, उसकी तुलना में मेरे लेखन में कुछ भी नहीं है। सिर्फ आप लोग जो कुछ साधुभाषा में लिखते हैं, मैं लोगों की समझ आने जैसी भाषा में लिखता हूँ, फर्क सिर्फ इतना ही है।

विष्णु शर्मा ने उस दिन सुबह किसी अंग्रेजी पत्रिका में अश्लीलता पर एक लेख पढ़ा था। भले ही वह विषय प्रासंगिक नहीं था, फिर भी अपनी विद्वता दिखाने के लिए विष्णु शर्मा ने कहा, साहित्य में अश्लीलता एक विवाद का विषय है। सन् उन्नीस सौ छियासठ में डेनमार्क ने यह फैसला किया था कि अब से अश्लील किताबों आदि पर पाबंदी नहीं रहेगी। नया कानून यह था कि सोलह साल से अधिक उम्र का कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा के मुताबिक किताब, मैग. जीन, फोटो, फिल्म, नाटक खरीद सकता है, देख सकता है। उस साल से अनेक अश्लील चीजें बिकने लगीं। सन् उनहत्तर में तीस करोड़ रुपए की किताबें आदि बिकीं; लेकिन उसके बाद आकर्षण घट गया और कुछ सालों बाद बिक्री केवल बारह करोड़ तक ही रही, जिसमें से नब्बे प्रतिशत निर्यात था।

इतना कहकर विष्णु शर्मा ने आधा गिलास रम पिया। सुरसेन जो कि कुछ अन्यमनस्क-सा उनकी बातें सुन रहा था, उन्हें चुप होते देख पूछा, उसके बाद?

रसानंद ने कहा, मैं प्रमाणित कर सकता हूँ कि मेरी जिस किताब को अश्लील कहा जा रहा है वह व्यवसाय की दृष्टि से नहीं लिखी गई है। दूसरी किताबों की तुलना में इस किताब की बिक्री कम थी केस होने तक।

मूल प्रश्न है अश्लीलता के बारे में; तुम्हारी किताब में अश्लील वर्णन है या नहीं?

अपने थैले से रसानंद ने 'चैत्र-आश्विन' किताब निकालकर विष्णु शर्मा को दी। बोला, यह किताब एक कम उम्र की पत्नी और उसके बूढ़े पति के बारे में है। आप जानते हैं कि मुफस्सल इलाकों में रुपयों के लिए ऐसी अनेक शादियाँ होती हैं। अपनी किताब में मैंने वैसी ही एक लड़की की दुर्दशा का वर्णन किया

है। उनके यौन-जीवन की असफलता के बारे में मैंने लिखा है कि किस तरह वह लड़की सुबह अपने पति के पास से असंतुष्ट हो लौटती है।

विष्णु शर्मा अपने चेहरे पर निरासक्त भाव-भंगिमा रखकर उस किताब के पन्ने पलटते हुए उसमें कहाँ पर अश्लील वर्णन हो सकता है ढूँढ़ने लगे। अचानक उनकी निगाह पलंग शब्द पर पड़ी। उस शब्द के साथ कुछ मनोरंजक बातें जुड़ी हो सकती हैं, उस उम्मीद में पूरा अनुच्छेद पढ़ गए विष्णु शर्मा। लेकिन उसमें केवल बुढ़ऊ के कमरे का वर्णन था, वासकशय्या का नहीं। पुनः कुछ पन्ने उलटने के बावजूद उनकी निगाह में कोई अश्लील बात न पड़ने पर उन्होंने खीझकर किताब बंद करके रख दी और रसानंद से पूछा, क्या इस किताब में कहीं कोई अश्लील वर्णन है?

उन्हें उम्मीद थी कि रसानंद वांछित पृष्ठ खोलकर उन्हें पढ़वाएगा और वे एक यौन उद्दीपक वर्णन का रसास्वादन करेंगे। लेकिन रसानंद ने कहा, इस किताब में कहीं भी अश्लील वर्णन नहीं है; बल्कि मेरी अन्य किताबों में खींच-खाँचकर जबरन अश्लीलता का आरोप लगाया जा सकता है, पर इसमें नहीं। आप खुद ही पढ़कर देखिए।

विष्णु शर्मा ने सोचा था उस किताब को उस दिन रात कहीं एकांत में पढ़ेंगे। किंतु रसानंद के उस मंतव्य को सुनने के बाद उन्होंने वह किताब उसे लौटा दी। बोले, नहीं, मेरे पास पढ़ने का वक्त नहीं है। बहरहाल, इस बारे में मैं क्या कर सकता हूँ?

आप ठहरे लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार। देश-विदेश में आपका नाम है। मैं चाहता हूँ आप इस केस में गवाह बनकर साहित्य में अश्लीलता पर अपनी राय दें। इस वक्त आपने जिस डेनमार्क या किस देश की बात कही, यह बात भी मेरे केस में बेहद सहायक हो सकती है।

तुम तो जानते हो, मैं इन सब विवादों में पड़ना नहीं चाहता। मेरा लेखन अच्छा है तो मैं अच्छा हूँ।

मैं यह नहीं चाहता कि आप मेरी किताबों पर कुछ कहें। अश्लीलता की अपेक्षा इस केस में अधिक महत्वपूर्ण विषय है साहित्य के क्षेत्र में पुलिस का हस्तक्षेप। सभी लेखकों को इसका विरोध करना होगा। मान लीजिए कल को यदि कोई आपकी किसी किताब के विरुद्ध अश्लीलता का आरोप मढ़ दे तो क्या करेंगे?

यह सुनकर सुरसेन कुछ सशंकित हुआ, किंतु विष्णु शर्मा, जो कि अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और सरकारी लोगों से अपने संबंधों में आत्मविश्वास रखते थे,

बोले, मेरे नाम पर केस हुआ तो मैं खुद देख लूँगा, मदद मांगने किसी और के पास नहीं जाऊँगा। सुरसेन की ओर देखते हुए उसे सांत्वना देने के लिए बोले, यहाँ तक कि प्रकाशक को भी इसमें नहीं घसीटूँगा।

रसानंद ने कहा, आप गलत समझ रहे हैं। अब यह केस मेरा व्यक्तिगत मामला नहीं रह गया। मैं तो केस लड़ूँगा ही। जरूरत पड़ी तो जेल भी जाऊँगा। इस बार मैं जेल गया तो मेरा परिवार नहीं टूटेगा, क्योंकि इस बीच मेरी आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक है। मैं तो सभी साहित्यकारों के भले के लिए कह रहा था।

विष्णु शर्मा ने कहा, तुम्हें जो करना है करो, मुझे इन चीजों में मत घसीटो।

रसानंद उठकर खड़ा हो गया। बोला, तो फिर मैं चलता हूँ। अपने केस के संबंध में आपके ही लेखन से कुछ ढूँढूगा, बुरा मत मानिएगा।

इतना कहकर रसानंद चला गया। कुछ विचलित होते हुए विष्णु शर्मा ने थोड़ा रम और पिया, फिर बोले, देखा, मुझे किस तरह धमकी देकर चला गया? यदि इस बारे में कोई बात उठी, तुम मेरे गवाह रहोगे।

सुरसेन, जिसके दिमाग में अब तक व्यापार की बातें मँडरा रही थीं, बोले, इस केस की वजह से रसानंद को अच्छा मुनाफा हुआ है।

कैसे?

इस बीच वह 'चैत्र-आश्विन' उपन्यास के चार संस्करण निकाल चुका है।

तो फिर वह इतना परेशान क्यों है?

नहीं समझे, रुपए-पैसे तो वह खूब कमा चुका है। अब चाहता है साहित्यिक प्रतिष्ठा। आप लोगों से ठीक उल्टा।

इतना नाम कमा चुके हैं आप, किंतु किताबों से पैसा कितना मिलता है आपको?

विष्णु शर्मा को चुप देखकर सुरसेन ने दोनों लोगों के गिलास में फिर से रम उड़ेला। बोला, इस बार आप कोई अश्लील किताब लिखिए। मुकदमा हो या ना हो, बिक्री तो होगी, नाम भी होगा।

गिलास उठाकर विष्णु शर्मा ने दो घूँट पिया। बोले, रसानंद के जाने के बाद मैं भी यही सोच रहा था।

बिना देर किए सुरसेन एक सादा कागज लाकर किताब किस आकार की होगी और कितने पन्नों की होगी, उसका हिसाब लगाने में जुट गया।

संप्रदाय

उस आदमी का धर्म, जाति, गोत्र क्या है, इस बारे में उपनगर के लोग नहीं जानते थे। यहाँ तक कि उसका सही नाम भी कोई नहीं जानता था। वह पागल था और पागल के नाम से जाना जाता था। उसकी जाति या नाम होने न होने से उसके अथवा अन्य लोगों के लिए कोई समस्या पैदा नहीं करता था, क्योंकि पागल को किसी के अच्छे-बुरे से कुछ लेना-देना नहीं था और दूसरों से उसके संबंध अति सामान्य थे। वह बातें नहीं करता था, इसलिए वह कहाँ का है या उसकी मातृभाषा क्या है उस बारे में किसी को कुछ मालूम नहीं था। उस बारे में जानने की अब किसी में कोई उत्सुकता भी नहीं थी। यहाँ तक कि लोगों को यह भी शक था कि वह जन्म से ही गूँगा है या जानबूझकर बातें नहीं करता। खैर, कुछ भी हो, वह पागल अब उपनगर में एक चलता-फिरता संस्थान था।

पागल के रहने की कोई निश्चित जगह नहीं थी और ना ही खाने की कोई निश्चित व्यवस्था। उसे जो कुछ भी मिलता खा लेता और जहाँ कहीं भी संभव और सुविधा होती सो जाता। वह किसी से कुछ माँगता नहीं था और किसी के कुछ देने पर इनकार भी नहीं करता था। वह पूरे दिन और कभी-कभी तो पूरी रात उपनगर में डोलता फिरता था। वहाँ के लोग उसके जूते की आहट से परिचित थे। एकाध दिन वह गली में दिखलाई नहीं देता तो लोग उसके बारे में आपस में पूछताछ करने लगते। रात की सुनसान गलियों में उसके भारी जूतों की आहट से सबको राहत-सी मिलती थी।

पागल को लेकर उस समय समस्या पैदा होती थी, जब उस इलाके में सांप्रदायिक दंगे भड़कते थे। कुछ वर्षों के अंतराल में राजनीतिक दलवाले विभिन्न कारणों से दंगे भड़काने का निश्चय करते थे। हालाँकि शहरी क्षेत्र में दंगे उग्र रूप धारण कर लेते थे, एवं हत्या, लूटपाट और शरणार्थी शिविरों में खत्म हो जाते

थे। लेकिन उपनगर में दंगों का स्वरूप सामान्य था। सांप्रदायिक दंगों के नाम पर विभिन्न संप्रदायों के बीच गाली-गलौज, दुकानों के ताले तोड़ना और कभी-कभार सामान्य हाथापाई से अधिक उस उपनगर के लोग कुछ नहीं करते थे।

पागल की बिखरी हुई तितर-बितर दाढ़ी से समस्या खड़ी हो जाती थी। दाढ़ी की वजह से आम तौर पर वह मुसलमान जैसा दिखता था। लेकिन उसे पुनः गौर से देखने पर कई मर्तबा वह जगत् गुरु की तरह धार्मिक, निष्ठावान हिंदू होने का भ्रम भी पैदा करता था। हिंदू-मुस्लिम दंगों के समय हिंदू उसे आसानी से पकड़कर जमकर पिटाई करते थे। उस वक्त पागल उनके लिए एक कट्टर मुसलमान होता था। दंगों के समय मुसलमान अपनी कम संख्या देखकर चुप्पी साध लेते थे, लेकिन हालात जरा सुधरते देख बदले की भावना से किसी और को न पाकर या फिर किसी और से मारपीट करने का साहस न जुटा पाने के कारण आखिर में उसी पागल को पकड़ लेते थे। वे लोग उसे हिंदू बाबा, साधु महाराज आदि कहकर पिटाई करते थे। इस तरह पागल दोनों ओर से संकट में पड़ जाता था, लेकिन दंगों की कठिन परिस्थितियों में भी वह गलियों में अपनी गश्त जारी रखता था।

दंगों के अनेक अनलिखे नीति-नियम थे। दंगा ठीक किस दिन से शुरू होगा, उस बारे में उपनगर में काफी पहले से खबर पहुँच जाती थी। रात को शहर से छुटभैये नेता आकर उपनगर में रह रहे अपने राजनीतिक चेलों के साथ घंटों चाय पीते हुए षड़यंत्र रचा करते थे और सुबह होने से पहले चले जाते थे। सुबह बरगद के नीचेवाली चाय की दुकान से विधिवत दंगे-फसाद शुरू हो जाते थे।

बरगद के नीचे आसपास चाय की दो दुकानें थीं। उनमें से एक का नाम था हिंदू चाय की दुकान। दूसरी का नाम गांधीजी के नाम से था लेकिन सभी उसे मुसलमान चाय की दुकान कहा करते थे और उस दुकान के बूढ़े मुस्लिम दुकानदार को व्यंग्य से महात्मा कहकर बुलाते थे। हालाँकि पुलिस और अन्य सरकारी मुलाजिम दंगे के बारे में अंत तक पूरी तरह बेखबर रहते थे एवं दंगा-फसाद खत्म होते ही सदलबल वहाँ आ धमकते थे, किंतु होने वाले दंगे-फसाद की खबर अन्य लोगों को पहले ही मिल जाती थी। दंगे के दिन बूढ़ा महात्मा सुबह-सुबह अपनी दुकान पर पहुँच चुपचाप दुकान खोलकर आवश्यक एवं टूटने-फूटने वाली चीजें एक कोने में अच्छी तरह रखकर पुनः ताला बंद करके घर लौट आता था। उसके बाद की घटनाओं के दृश्य मोटे तौर पर निम्न हुआ करते थे।

गलियों की गश्त खत्म करके सुबह नौ बजे पागल बरगद के नीचे जाकर बैठ जाता। वह जानता था कि हिंदू हो या मुसलमान, किसी-न-किसी चाय की दुकान से उसके लिए बुलावा आएगा। या फिर जो लोग चाय पीने आएँगे उनमें से कोई न कोई उसे चाय पीने के लिए बुलाएगा। इसी इंतजार में वह पूरी तरह निश्िंचत होकर बैठा रहता। किंतु आज सांप्रदायिक दंगे-फसाद का दिन है। किसी ने उसकी ओर नहीं देखा और पागल को बगैर चाय के रहना पड़ा। कुछ देर बाद झुंड के झुंड युवक बरगद के नीचे आकर इकट्ठे हुए। हठात् वे महात्मा गांधी, हिंदू एकता, भारतमाता आदि की जय-जयकार करने लगे। जब धूप जरा और बढ़ती तब भीड़ भी बढ़ जाती और स्लोगन भी बदल जाते। जैसे 'मुसलमान मुर्दाबाद, खून के बदले खून, देशद्रोहियों, देश छोड़ो' आदि।

बेचारा पागल चाय न पाकर भीड़ के पास जाकर खड़ा हो गया और मुख-मुद्रा इस तरह बनाने लगा जैसे कि यदि वह बोल पाता तो दूसरों के साथ मिलकर वह भी नारे लगाता। उसके बाद वह झुंड मुसलमान चाय की दुकान की ओर बढ़ा। महात्मा जो कि झुंड के सभी लड़कों को पहचानता था और उनकी इस तरह की गतिविधियों से परिचित था, चूल्हे से चाय की केतली उतारकर नीचे रखने के बाद बाहर निकलकर खड़ा हो गया। लड़के दुकान का साइन बोर्ड उतार लाये। उसे जमीन पर पटककर दो लड़कों ने उसके ऊपर उछल-उछलकर नाचना शुरू कर दिया। उसके बाद लड़कों ने अलमारी का शीशा तोड़-फोड़कर उसमें से बिस्कुट आदि निकाल लिए और आपस में बाँट लिए। हिंदू चायवाला भी इससे खुश होकर अपनी दुकान से खाने की चीजें लाकर लड़कों में बाँटने लगा और अपने पैसों की संदूकची में ताला बंद करके झुंड के साथ मिलकर नारे लगाने लगा। अंत में हिंदू चाय की दुकान का युवा नौकर मुसलमान चाय की दुकान का चूल्हा जलाकर उसमें चाय बना-बनाकर सबको पिलाने लगा। अब धूप और तेज हो जाने की वजह से नारों की तेजी एवं लड़कों का उत्साह धीमा पड़ गया। सभी घर लौटने को हुए। दंगे के सिलसिले में अभी तक किसी भी मुसलमान को शारीरिक चोट नहीं पहुँचायी गई है—इस बारे में चलते-चलते किसी ने याद दिला दी। अब सबकी निगाह पागल पर पड़ी। चार लड़के 'स्साले मुल्ला' कहकर उसकी ओर लपके। उनमें से एक ने उसे धक्का देकर गिरा दिया। अन्य दो लड़कों ने उसे लतियाना शुरू कर दिया। उसके बाद पुनः महात्मा गांधी आदि नारे लगाते हुए भीड़ वहाँ से चली गई।

किंतु चायवाला और उसका नौकर दोनों अपनी दुकान पर लौट आए। महात्मा कहीं से लौट आया और पुनः अपनी दुकान की चीजें सजाने लगा। पागल उठकर बैठ गया मानो कुछ हुआ ही न हो और अपने बदन से धूल झाड़ते हुए खड़ा हो चारों ओर देखने लगा। महात्मा ने उसे बुलाकर चाय पिलाई। कहीं महात्मा अपनी उदारता दिखलाने में उससे आगे न निकल जाए, इस डर से हिंदू दुकानदार ने भी पागल को जबरदस्ती कुछ खाने को दिया और चाय भी पिलाई। घंटे-भर बाद पुलिस वहाँ पहुँची तब तक महात्मा अपनी दुकान का साइन बोर्ड ठोंक-पीटकर सीधा करके फिर से लटका चुका था। शाम को बरगद के नीचे फिर भीड़ इकट्ठी हुई एवं सभी भूल चुके थे कि सुबह वहाँ कोई भयंकर घटना घट चुकी है।

सच कहा जाए तो उपनगर के सांप्रदायिक दंगे-फसादों में भयंकरनुमा कुछ नहीं होता था क्योंकि उन दंगे-फसादों के अनेक कठोर नीति-नियम थे। दंगों की शुरुआत और अंत बरगद के नीचे, बस्ती से बाहर, एक आम जगह पर होती थी। इसमें कितना नुकसान करना होगा उसकी एक सीमा निर्धारित थी। उस नियमावली की सबसे कठोर शर्त यह थी कि महात्मा पर हाथ उठाना तो दूर, उसकी ओर अँगुली उठाकर कोई अपमानजनक शब्द भी नहीं कहना है। इस नियम का उल्लंघन सिर्फ एक मर्तबा हुआ था जब एक अपरिचित गैरजिम्मेवार युवक ने महात्मा को मुसलमान कहा था। इस घटना के बाद उस लड़के को अन्य लोगों ने धक्का देकर अपनी टोली से बाहर निकाल दिया था और वह लड़का रोते हुए अपने घर लौट आया था।

समय के साथ-साथ ये नीति-नियम भी धीरे-धीरे बदलने लगे। युवकों ने बुजुर्गों के हाथों से अपने हाथों में क्षमता ले ली। उपनगर में नेतृत्व करने-कराने वाले नए लड़कों ने दुकानदारों से पैसा वसूलना शुरू कर दिया। इस बार जब दंगे की रूपरेखा तैयार करने के लिए रात में शहर के नए नेतागण उपनगर में आए, तो चेलों के साथ उनकी बातचीत सर्वथा भिन्न और निम्न तरह की थी—

"पिछली बार के दंगे में यहाँ क्या-क्या हुआ था?" एक नेता ने पूछा।

इस प्रश्न का जवाब देने में चेलागण कुछ दुविधा में पड़ गए एवं उस इलाके में कोई खास दुर्घटना न घटी होने के कारण असमंजस में पड़ गए। फिर भी सबसे चालाक चेले ने परिस्थिति को सँभाल लिया और घटना को बढ़ा-चढ़ाकर बोला, "यहाँ के सभी मुसलमानों की दुकानें तोड़ दी गई थीं।"

"कितने लोग मरे थे?"

यह प्रश्न सुनकर सभी लज्जित हुए। हालाँकि शहर में काफी लोगों की हत्या की गई थी, लेकिन इस उपनगर में सिर्फ पागल को धक्का मारकर नीचे गिरा देने के अलावा कोई और गंभीर घटना नहीं घटी थी। उस पागलवाली घटना को अतिशयोक्तिपूर्ण बनाते हुए एक चालाक चेले ने कहा, "एक मुसलमान के हाथ-पैर तोड़ दिये गए थे।"

नेता इससे संतुष्ट न होते हुए बोला, "लगता है, तुम सभी नामर्द हो। दंगा बड़ी गंभीर चीज है, तुमलोग उसे मजाक समझते हो? हम सोचते थे कि पंद्रह मिनट में तुम लोगों को सभी बातें समझाकर दूसरी जगह चले जाएँगे। किंतु ऐसा लगता है कि यहाँ हमें कुछ ज्यादा देर तक रुकना पड़ेगा। रात के लिए शराब तो मिलेगी, या कहोगे कि दुकानें बंद हो चुकी हैं।

काफी रात तक बैठक चली। बैठक में आगामी दिन के दंगे के लिए विधिवत योजनाएँ बनाने के बाद नेतागण चले गए। सुबह-सुबह अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों को सूचना दे दी गई कि वे अपना-अपना मकान छोड़कर चले जाएँ। डर के मारे सभी लोग मकान छोड़कर भाग गए। सिर्फ महात्मा ने कहा, "यदि विपत्ति आने वाली है तो मैं मकान छोड़कर बाहर क्यों जाऊँ?"

उस बार दंगे में लड़कों ने महात्मा की दुकान में पहली बार आग लगाई और वाकई पागल के पैर तोड़ डाले। लेकिन किसी ने महात्मा को हाथ तक नहीं लगाया। दंगे के बाद पागल लँगड़ाते हुए अस्पताल से लौटा एवं महात्मा ने भी अपनी दुकान ठीक-ठाक कर ली। इसी बीच चुनाव आने के कारण नेतागण आए और विभिन्न वर्गों में एकता और सद्भाव के बारे में भाषण दे गए। महात्मा ने कहा, "मैं कहता न था कि फिर से सबकुछ ठीक-ठाक हो जाएगा।"

कुछ दिनों के बाद फिर सारा कुछ पहले जैसा हो गया। इस बार सिर्फ हिंदू-मुस्लिम ही नहीं, हिंदू-सिख दंगे भी हुए एवं हिंदू-सिख भाई-भाई के बदले हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई के नारे सुनाई देने लगे। पागल की बदनसीबी थी कि इस बार लड़कों ने उसे 'अकाली' बना दिया और लँगड़ा सरदार कहकर मारने दौड़े।

निकट भविष्य में जो दंगा होने जा रहा था, केवल पुलिस को छोड़कर बाकी सभी लोग जानते थे कि वह भयावह होगा। शहर और उपनगर के अल्पसंख्यक संप्रदाय के सारे लोग सुरक्षित जगहों पर चले गए थे। यहाँ तक कि हिंदू चायवाला भी अपनी दुकान में ताला बंद करके अपने गाँव चला गया। उपनगर के कुछ बूढ़े मुखियों ने महात्मा से जाकर कहा, "इन दो-चार दिनों के लिए आप कहीं चले जाइए।" महात्मा ने कहा, "कुछ भी नहीं होगा। पिछली बार भी सभी मुझे डरा रहे थे। क्या हुआ मुझे?"

अगले दिन सुबह जब लड़के पागल को मारने दौड़ रहे थे, उनके हाथ में चाकू थे। इस बार महात्मा उन्हें पहचान नहीं सका, क्योंकि उनके चेहरे की भाव-भंगिमा से वह बिल्कुल अपरिचित था। जब वह पागल लँगड़ाते हुए दौड़े-दौड़े चाय की दुकान में पहुँचा, महात्मा दुकान से बाहर आकर जोरों से चिल्लाते हुए सीधे भीड़ में घुस गया। 'स्साले मुसलमान को मारो' की आवाज आई और किसी का चाकू महात्मा के सीने में जाकर धँस गया। महात्मा वहीं गिर पड़ा। हठात् भगदड़ मच गई और पल-भर में वह जगह सुनसान हो गई। पागल महात्मा के पास जाकर उसे उठाने की कोशिश करने लगा। लेकिन तब तक महात्मा के प्राण-पखेरू उड़ चुका था। पागल इस बात को समझे बगैर उसी के पास बैठा रहा।

ठीक उसी समय वहाँ एक जीप आकर रुकी। पागल के मुँह से पहली बार आवाज निकली, "पुलिस-पुलिस!" लेकिन जीप से जो लोग बाहर निकले वे पुलिस नहीं थे। वे शहर के जिम्मेवार नेता थे। उपनगर के लड़कों की तरह वे कमज़ोर दिल और पौरुषहीन नहीं थे तथा मुर्दा देखकर डर से भागने वाले नहीं थे। महात्मा को दिखाते हुए इस बार पागल डॉक्टर-डॉक्टर चिल्लाने लगा। उनमें से दो ने जाकर पागल को पकड़ा और एक ने जीप से पेट्रोल निकालकर कनस्तर में डाला। उसके बाद पागल को रस्सी से बाँधकर उस पर सारा पेट्रोल उड़ेल दिया।

उसी वक्त उनमें से एक ने कहा, "यह आदमी पागल-सा लगता है। पता नहीं हिंदू है या मुसलमान।" दल के नेता ने पागल से पूछा, "तू किस संप्रदाय का है?" पागल का मुँह जिस तरह हठात् खुला था, उसी तरह हठात् बंद हो गया। वह चुप रहा।

लड़के पुनः ऊँची आवाज में हँसे। नेताजी ने आरामपूर्वक जेब से सिगरेट निकाली और उसे जलाकर कश खींचने लगे। सिगरेट खत्म होने पर उन्होंने उसका आखिरी टुकड़ा दूर फेंक दिया और माचिस अपने सहकर्मी की ओर बढ़ा दी।

साक्षात्कार

बदनसीबी इसी तरह आती है, चंद्रहास ने मन ही मन सोचा। गाड़ी होटल में घुस ही रही थी कि उसने देखा, उसका पुराना दोस्त शोभन भी उसी होटल में प्रवेश कर रहा है। कार-पार्किंग में गाड़ी खड़ी करते हुए चंद्रहास ने कहा, "अब एक छोटी-सी समस्या आ टपकी है।" समस्या के बारे में जानने का जरा भी आग्रह न करते हुए शर्बरी ने कहा, "तो फिर चलो, मुझे घर छोड़ आओ।" उसकी बात का जवाब न देकर चंद्रहास ने कहा, "यह मेरी बदनसीबी नहीं तो और क्या है कि कभी न मिलने वाले इस आदमी को इसी वक्त यहाँ आना था।"

बड़ी मुश्किल से आज चंद्रहास ने यह इंतजाम जमाया था। वह फिल्में बनाता था और शर्बरी अध्यापिका थी। उनका परिचय एक हवाई यात्रा में हुआ था। चंद्रहास अपने काम से जा रहा था और शर्बरी किसी सेमिनार में भाग लेने। यात्रा के दो घंटे के दौरान ही चंद्रहास ने शर्बरी से मित्रता गाँठ ली थी और उस नये शहर में उसने शर्बरी की कई तरह से मदद भी की थी। चंद्रहास लौटते समय भी अपने सारे कार्यक्रमों को इधर-उधर करके शर्बरी के साथ एक ही फ्लाइट से लौटा था। उसके बाद से उसने शर्बरी के साथ अपना संपर्क बनाए रखा और अब उस संपर्क में क्रमशः घनिष्ठता भी आ गई थी। आजकल शर्बरी को पहले-सी हिचक नहीं होती थी, लेकिन चंद्रहास उसे अभी तक पूरी तरह पाने में सफल नहीं हुआ था। काफी दिनों की मेहनत, अनुनय-विनय के बाद उसने शर्बरी को इस बात के लिए राजी किया था कि किसी होटल के एकांत कमरे में वे पूरा दिन बिताएँगे। चंद्रहास ने होटल में कमरा बुक करवाया था और पिछले चार दिनों से उस घड़ी का इंतजार कर रहा था। बीच-बीच में उसे ऐसा लगता था कि इंतजार की यह घड़ी अब उससे नहीं सही जाएगी। किंतु समय की गति क्रमशः दिन, घंटे से मिनट तक आ पहुँची। होटल के फाटक से होकर अंदर प्रवेश करते समय उस इंतजार की घड़ी का अंत होने ही वाला था। ऐसे वक्त पर किसी राहु का प्रकट होना उसकी बनी-बनाई योजना को मटियामेट करने जैसा लग रहा था।

शर्बरी ने पुनः कहा, "चलो, मुझे छोड़ आओ।" चंद्रहास ने कहा, "घबराओ मत, मैं एक मिनट में इसका कोई हल ढूँढ़ता हूँ।" यह कहकर उसने अपनी आँखें मूँद लीं और जब आँखें खोलीं, उसने समाधान भी ढूँढ़ लिया था। ब्रीफकेस से एक छोटा पैड निकालकर उसने शर्बरी को थमाते हुए कहा, "तुम एक पत्रकार हो और मेरा साक्षात्कार लेने आई हो। मैंने तुम्हें आज दोपहर बारह बजे इसी होटल के लाउंज में मिलने का समय दिया है। मैं गाड़ी में बैठा रहूँगा। पहले तुम होटल के अंदर जाकर मेरा इंतजार करोगी। दो मिनट के बाद मैं भी अंदर जाऊँगा। यदि उस वक्त मेरा दोस्त वहाँ होगा, तो उसके वहाँ रहने तक हमें इंटरव्यू का अभिनय करना पड़ेगा। उसके जाने के बाद हम कमरे में चलेंगे।"

चंद्रहास ने सोचा था कि शर्बरी उसका यह प्रस्ताव तत्काल ठुकरा देगी, लेकिन शर्बरी ने उसके हाथ से नोट-खाता लेकर पर्स में रख लिया, उसके पास कलम है या नहीं, तलाशा और गाड़ी से उतरते हुए बोली, "ठीक है, तुम दो मिनट में अंदर आ जाना।" दो कदम आगे जाने के बाद पीछे मुड़कर देखते हुए उसने चंद्रहास से पूछा, "मेरा नाम क्या है?" कुछ सोचते हुए चंद्रहास ने कहा, "उमा। उमा यादव। स्टार पत्रिका की रिपोर्टर।"

दो मिनट के बाद गाड़ी बंद करके चंद्रहास अंदर गया। चंद्रहास शोभन को देखे, उसके पहले ही शोभन ने उसे देख लिया और कुर्सी से उठकर उसके पास आकर बोला, "एक ही शहर में रहते हैं, लेकिन मुलाकात होती है साल में एक बार और वह भी ऐसी अद्भुत जगह।" चंद्रहास ने सोचा वह मालूम कर ले कि शोभन वहाँ कितनी देर रुकेगा। यदि अधिक देर तक नहीं रुकेगा तो वह शर्बरी के पास तुरंत न जाकर शोभन के चले जाने के बाद जाएगा। कुछ इधर-उधर की बातचीत करने के बाद उसने शोभन से पूछा, "तुम यहाँ कैसे?" शोभन ने कहा, "भई, व्यापार में अनेक लोगों से काम पड़ता है। एक आदमी से साढ़े बारह बजे यहीं मिलना है। मैं कुछ पहले ही आ गया हूँ, लेकिन कौन जाने वह कितने बजे आएगा! और तू?" "मुझे किसी पत्रिका में इंटरव्यू देने के लिए पूछा गया था। मैंने इंटरव्यू लेनेवाली को घर न बुलाकर यहाँ बुलाया है।" उसे और कुछ कहने का अवसर न देकर शोभन ने कहा, "वहाँ जो लड़की बैठी है, वह तो नहीं है? चलो देखें।"

चंद्रहास को खींचते हुए शोभन उसे शर्बरी की कुर्सी तक ले गया और पूछा, "क्या आप किसी का इंतजार कर रही हैं?" चंद्रहास की ओर देखे बगैर शर्बरी ने शोभन से पूछा, "आपका नाम चंद्रहास है?" शोभन के कुछ कहने से पहले

चंद्रहास ने कहा, "नहीं, चंद्रहास मैं हूँ।" जरा-सी मुस्कुराहट बिखेरकर उसका परिचय स्वीकार करते हुए शर्बरी ने कहा, "मेरा नाम उमा यादव है। मैं स्टार पत्रिका से आयी हूँ।" चंद्रहास ने कहा, "आपको ज्यादा इंतजार तो नहीं करना पड़ा? यह मेरा दोस्त शोभन है।" और किसी तरह की बातचीत न करके शर्बरी ने अपने पर्स से नोट-खाता निकाला, उसका पृष्ठ पलटा और हाथ में कलम लेकर बोली, "यदि इंटरव्यू के समय मैं टेपरिकॉर्डर का प्रयोग करूँ तो क्या आपको कोई आपत्ति होगी?"

अब शोभन ने वहाँ से खिसक लेना ही बेहतर समझा, लेकिन उनसे कुछ ही दूर जाकर बैठ गया। चंद्रहास शर्बरी के प्रश्न से जरा चौंका, किंतु दूसरे ही क्षण समझ गया कि अब शर्बरी इस अभिनय में जी-जान से जुट गई है। उसने कहा, "मेरे सामने टेपरिकॉर्डर रखा हो तो मैं खुलकर बातचीत नहीं कर सकता। मुझे डर लगता है कि कहीं कोई गलत बात न कह जाऊँ और मेरी मूर्खता हमेशा के लिए रिकॉर्ड होकर रह जाए।"

"हाँ, कई लोगों में इस तरह का डर रहता है। तो ठीक है, मैं टेपरिकॉर्डर का प्रयोग नहीं करूँगी।"

चंद्रहास ने शर्बरी की ओर देखते हुए कहा कि अब शोभन उनकी बातचीत सुनने के घेरे से बाहर है, अतः वे लोग स्वाभाविक रूप से बातचीत कर सकते हैं। किंतु शर्बरी उसके इशारे को समझने की कोशिश न करते हुए बोली, "मैं अपना पहला सवाल करने से पहले आपसे अनुरोध करूँगी कि आप अपने बारे में कुछ बताएँ।"

चंद्रहास ने आँखें मूँदकर थोड़ी देर तक कुछ सोचा और उसके बाद आँखें खोलते हुए कहा, "मेरी राय में मेरी पिछली जिंदगी से मेरी फिल्मी जिंदगी का कोई संबंध नहीं है। इसलिए मैं बल्कि अपनी पहली फिल्म के बारे में कहूँगा।"

"कोई भी कलाकार अपनी जिंदगी से परे नहीं होता। आपकी फिल्म से आपकी ज़िंदगी का क्या संबंध है, उस बारे में तभी पता चलेगा जब आप अपनी ज़िंदगी के बारे में कुछ कहेंगे। इसलिए आपकी ज़िंदगी के बारे में जानना मेरे लिए नितांत आवश्यक है।"

चंद्रहास ने धीमी आवाज में अनुनयपूर्वक कहा, "शर्बरी!" लेकिन शर्बरी ने अनसुना करते हुए कहा, "इसके अलावा आपने देखा होगा कि हमारी पत्रिका में कलाकारों की कला की अपेक्षा उनकी व्यक्तिगत जिंदगी को अधिक अहमियत दी जाती है।"

चंद्रहास ने कहा, "मेरा जन्म एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। मेरे पिता एक स्कूल-मास्टर थे। मेरी जिंदगी घोर दारिद्र्य में न बीतने पर भी काफी कुछ अभाव में बीती थी। उस समय मैंने सोचा था कि आराम ही जीवन का लक्ष्य है। किंतु आराम मिलने के बाद जीवन का लक्ष्य ही कुछ और हो गया।"

शर्बरी ने नोट-खाते में कुछ लिखने के बाद कहा, "मैं जानना चाहती हूँ कि आपके अभाव और आराम के बीच जीवन में क्या-क्या घटनाएँ घटी थीं?"

"जब मैं कॉलेज में पढ़ा करता था, किसी के साथ घुलमिलकर नहीं रहता था। अपने-आप में ही सीमित रहता था। यहाँ तक कि बाद के दिनों में– ।"

लिखते-लिखते शर्बरी ने कहा, "जरा रुकिए। आपके बचपन की बातें मैं बाद में पूछूँगी। लेकिन जब आपने शुरू कर ही दिया है, तो अपने कॉलेज के दिनों की कुछ और बातें बतलाइए। उस वक्त निश्चित रूप से आपके कुछ अंतरंग मित्र भी रहे होंगे?"

चंद्रहास ने यह याद करने की कोशिश की कि उसके घनिष्ठ मित्र कौन-कौन थे। न जाने कब से उसे अपने बीते दिनों की बातें याद करने का अवसर नहीं मिला था या उसने कोशिश ही नहीं की थी। इस समय वह अपनी आँखें बंद करके पुनः अपनी युवावस्था में लौटने की कोशिश करने लगा। कॉलेज के दिनों की बात सोचने पर उसकी आँखों के सामने वही लाल रंग का मकान एवं उसके हॉस्टल का छोटा-सा कमरा घूमने लगा। उसकी आँखों के सामने उसके हॉस्टल के रूममेट और चार वर्षों तक उसके साथ एक बेंच पर बैठने वाले दो मित्रों की तसवीर उभर आई। आँखें खोलकर चंद्रहास ने शर्बरी के सामने उनकी बात बतलाई।

"आजकल उनसे आपकी मुलाकात होती है?"

"नहीं। कॉलेज छोड़ने के बाद से शायद एक या दो बार हुई होगी।"

"आपने कभी उनसे मिलने की कोशिश की? अथवा उनकी खबर ली है?"

"नहीं, जीवन में प्रवेश करने के बाद समय ही नहीं मिला।"

"इसका मतलब यह कि? आपकी जिंदगी में कई और नए मित्र आ गए होंगे, जिन्हें आप अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।" कहते हुए चंद्रहास सोचने लगा कि कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में उसके पुराने मित्र पीछे छूटते चले गए। कहाँ गया उसका रूममेट? उसने सुना था कि कहीं किसी कंपनी में वह किसी छोटे पद पर है। उसके बाद उसने उसकी खबर लेने की कोशिश नहीं की। क्या उसके मित्रों

ने कभी कोशिश की है उसकी खबर लेने की? उसने कहा, "मित्रता एक आपसी रिश्ता है। मित्रता तोड़ने में दोनों पक्ष जिम्मेदार होते हैं।

"मैं सिर्फ आपके बारे में जानना चाहती हूँ। आपने किस तरह अपने पुराने संबंधों को तोड़ दिया?"

"संबंध कोई नहीं तोड़ता, यह खुद-ब-खुद टूट जाता है।"

नोट-बुक में लिखते हुए शर्बरी मुस्कराई। चंद्रहास की बात दोहराते हुए बोली, "संबंध कोई नहीं तोड़ता; यह खुद-ब-खुद टूट जाता है।" मैं आपकी यह बात साक्षात्कार में उद्‌धृत करूँगी। आपको कोई एतराज तो नहीं?"

चंद्रहास उलझन में पड़ गया। अब तक वह भूल चुका था कि यह साक्षात्कार उसके द्वारा शुरू किए गए खेल का महज एक अंग था। उसे ऐसा लगने लगा मानो यह उसकी जिंदगी को विश्लेषित करने वाली एक विशेष रश्मि रेखा हो, जो उसकी जिंदगी को पूरी तरह खोलकर उसके असली चेहरे को दुनिया के सामने रख देगी। उसका सौभाग्य था कि शोभन अपनी कुर्सी से उठकर उनके पास आकर बोला, "मैं तुम्हारे इंटरव्यू में बाधा देना नहीं चाहता था; लेकिन जब देखा कि तुमने अभी तक इस भद्र महिला को कुछ पीने को नहीं दिया तो चला आया।"

राहत की साँस भरते हुए चंद्रहास ने कहा, "मैं बीयर पीऊँगा।" शोभन ने कहा, "मुझे मालूम है। मैंने तुम्हारे लिए बीयर का ऑर्डर दे दिया है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि मिस यादव क्या पीएँगी?"

काफी कोशिश करने पर भी चंद्रहास कभी शर्बरी को कोई पेय पिलाने में सफल नहीं हुआ था। शर्बरी हमेशा कहा करती थी, "मुझे ये सब अच्छा नहीं लगता।" लेकिन आज शोभन के प्रश्न के जवाब में चंद्रहास की ओर सीधे देखते हुए शर्बरी ने कहा, "मैं ब्लडी-मेरी लूँगी।" चंद्रहास ने सोचा, कहीं कुछ गलती हो रही है। किंतु शर्बरी का व्यवहार स्वाभाविक था और उसके हाथों में कलम व नोट-बुक अविचलित थे। चंद्रहास ने शर्बरी की आँखों में झाँका लेकिन उनमें भी कोई स्पष्टीकरण नहीं था।

उनका पेय आ जाने पर शोभन ने कहा "तो फिर मैं चलता हूँ। न जाने मेरा मित्र कितने बजे आएगा?" हालाँकि शुरू में चंद्रहास अपने करीब शोभन की मौजूदगी नहीं चाहता था, लेकिन इस वक्त वह चाहता था कि शोभन उसके पास बैठा रहे ताकि उसे इस अद्‌भुत परिस्थिति से छुटकारा मिल जाए। परंतु शोभन उठकर खड़ा हो गया और अपने टेबुल की ओर जाते हुए बोला, "मिस यादव, आप अपना इंटरव्यू जारी रखिए। अब मैं आपको डिस्टर्ब नहीं करूँगा।"

चंद्रहास ने सोचा था कि शोभन के चले जाने पर पुनः सबकुछ सहज और सामान्य हो जाएगा। लेकिन शर्बरी ने बगैर हिचक के अपना गिलास उठाकर दो चुस्कियाँ लेने के बाद गिलास रख दिया और फिर से कलम सँभाल लिया। उसने चंद्रहास से कहा, "अब आप अपने बचपन की कुछ बातें बताइए।"

शर्बरी की क्षमाहीन आँखों की ओर देखते हुए चंद्रहास ने कहा, "सही कहा जाए तो माँ-बाप और परिवार से मेरा कभी अधिक संपर्क रहा ही नहीं। मानो मैं हमेशा अकेला ही था।"

"क्या आपको नहीं लगता कि संपर्क बनाने के लिए आदमी को कुछ श्रम और प्रयास करने पड़ते हैं? यहाँ तक कि त्याग भी करना पड़ता है?"

"संपर्क मुझे हमेशा एक बोझ-सा लगा है, जिसे स्वीकारने के लिए हर पल मैं कुंठित रहा।"

नोट करते हुए शर्बरी ने कहा, "अब आप अपने व्यावसायिक जीवन के बारे में कुछ बताइए।"

व्यावसायिक जीवन के बारे में सोचने पर चंद्रहास को किसी निश्चित समय की बात याद नहीं आती। कहाँ से शुरू हुआ इस तरह का जीवन, किस ओर है इसकी गति, कहाँ अंत है इसका? कौन हैं उसके हमसफर? किसे याद करे वह इस घड़ी? अथवा इस समय उसका जीवन महज एक बहती धारा है, जिसके किनारे बैठी शर्बरी उसे प्रवाह की अनुकूल धारा में असहाय एवं अर्थहीन बहते देख रही है?

चंद्रहास को चुप देखकर शर्बरी ने कहा, "मैं आपसे कह रही थी कि जो लोग आपके व्यावसायिक जीवन के संपर्क में आए हैं, उनके बारे में कुछ बताइए।"

चंद्रहास ने समझा कि अब खेल उसके नियंत्रण से बाहर है। उसके सामने बैठकर शर्बरी निरीह अभिनय का जो नया संसार बना रही है, वह क्रमशः उसमें आबद्ध होकर रह गया है और वह उसमें से मुक्ति नहीं तलाश पाएगा। उस इंद्रजाल को खत्म करने के लिए उसने शर्बरी पर से निगाह हटाकर अपने चारों ओर देखा। दोपहर का होटल धीरे-धीरे भरता जा रहा था। वातानुकूलित लाउंज के शीशे की खिड़की के बाहर जीवन स्वच्छंद रूप से चल रहा था। आसपास के टेबुल पर लोग बातचीत करने में व्यस्त थे और उन सबकी बातचीत की एक मिश्रित मृदु गूँज ने लाउंज को जीवंत बना रखा था। कुल मिलाकर वह समय एक आम दोपहर का रहस्यहीन आम वातावरण था।

ऐसा महसूस कर चंद्रहास ने साहस बटोरा और धीरे से कहा, "मिस यादव, चलिए अब यहाँ से लौट चलें।" इतना कहने के बाद वह अपनी भूल समझ गया

और जान गया कि वह इंद्रजाल से पूरी तरह निकल नहीं पाया है। उसने सोचा कि शर्बरी इस विषय में उसकी मदद करेगी।

लेकिन शर्बरी ने उसकी बात अनसुनी करते हुए कहा, "यदि आप मेरे पहले वाले सवाल का जवाब देने में किसी तरह संकोच कर रहे हों, तो मैं आपसे दूसरा सवाल पूछती हूँ। क्या कभी किसी व्यक्ति-विशेष या घटना ने आपके जीवन के रुख को पूरी तरह बदला है? वह व्यक्ति विशेष कौन है और वह घटना क्या है?"

चंद्रहास पुनः चिंतित हो उठा। उसका जीवन स्वच्छंद और बाधारहित था। उसके सपाट जीवन में कोई वक्रता नहीं थी। जलधारा पर किसी लहर का उपद्रव नहीं था। किसी तूफान ने उसके माहौल को अस्त-व्यस्त नहीं किया था। धूमकेतु, वज्र, बिजली और इंद्रधनुष से मुक्त था उसके जीवन का आकाश। उसने कहा, "नहीं, मेरे जीवन में ना ही कोई ऐसा व्यक्ति-विशेष आया और ना ही कोई ऐसी घटना घटी।"

इसी वक्त शोभन उनके टेबुल के पास आया और बोला, "लगता है, अब मेरा मित्र नहीं आएगा। इसलिए विदा लेने आया हूँ।" चंद्रहास ने सोचा, वह शोभन को विदा कर देगा और दोनों बुक किए हुए कमरे में चले जाएँगे। किंतु शर्बरी के साथ इस तरह की अद्भुत बातचीत के बाद वह एकाएक पुनः सामान्य स्थिति में लौटने में समर्थ नहीं था। उसने शोभन से बैठने को कहा।

शोभन ने कहा, "मैं फिर कोई अड़चन तो नहीं बन रहा?" शर्बरी ने कहा, "नहीं, मेरा इंटरव्यू खत्म हो गया है। यदि आपको एतराज न हो तो मैं सिर्फ एक और सवाल पूछकर विदा लूँगी।" चंद्रहास की ओर देखकर शर्बरी ने पूछा, "क्या आपको अपनी जिंदगी से कोई पछतावा है?"

इस बार चंद्रहास कुछ सँभलकर बैठ गया। नहीं, अब वह परिस्थिति को अपने नियंत्रण में लाएगा। स्थिति सहज करने के लिए वह कुछ मुस्कराते हुए बोला, "मिस यादव, यदि मैं आपके इस सवाल का जवाब न दूँ तो आप क्या सोचेंगी?" शर्बरी उसकी चंचलता में शामिल नहीं हुई। वह बोली, "मौन भी एक तरह का जवाब है।"

अब शर्बरी ने अपनी नोट-बुक बंद करके पर्स में रख लिया। गिलास का बचा हुआ पेय पीकर उठते हुए बोली, "आपका अशेष धन्यवाद।" जाते हुए जब उसने दोनों को नमस्ते किया तब जाकर चंद्रहास को होश आया। उसने पूछा, "क्या मैं आपको छोड़ आऊँ?"

"नहीं, धन्यवाद।" कहकर शर्बरी तेजी से दरवाजे की ओर चल पड़ी और चंद्रहास को और कुछ कहने का मौका न देते हुए बाहर निकल गई।

साम्राज्य

एक सच्चे, कर्त्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, अध्यवसायी और कार्यनिपुण अधिकारी के रूप में रघुपति जी का काफी नाम था। लेकिन उनके जिन गुणों से लोग विशेष रूप से परिचित थे, वह था उनका गर्म मिजाज, चिड़चिड़ा स्वभाव और गुस्सैल चेहरा। इन गुणों के परिपूरक स्वरूप वे मोटे फ्रेम का चश्मा लगाते थे, सिगार पीते थे और कुत्ता पाल रखा था। उनका कुत्ता भी रूखे स्वभाव का था। किसी को देखते ही बुरी तरह भौंकने लगता और दाँत दिखाकर काटने को दौड़ता। रघुपति जहाँ भी जाते, कुत्ते को अपने साथ ले जाते और लोग उस काले जानवर को उनके चरित्र के जीते-जागते विस्तार के रूप में देखा करते। हालाँकि उनके पास बंदूक आदि हथियार नहीं थे, फिर भी वे नजदीक और दूर की चीज देखने के लिए अपने पास दो अलग-अलग चश्मा रखते थे। वे एक चश्मा पहने होते तो दूसरा उनके हाथ में गोली भरी पिस्तौल जैसा होता। हालाँकि लोग उनके काम की प्रशंसा किया करते थे, पर मजबूरी न होने पर कोई उनके करीब फटकना तक नहीं चाहता था।

जिलाधीश बनकर आने के कुछ ही दिनों में रघुपति ने पूरे जिले में कठोर अनुशासन लागू कर दिया था। उनसे पहले के जिलाधीश भद्र, विनयी, मृदुभाषी, धर्म-निष्ठ, लोकप्रिय तथा काम में पूरी तरह अयोग्य थे। रघुपति के आने के बाद जिले में प्रशासन की आबोहवा पूरी तरह बदल गई। दफ्तर के ताले समय पर खुलने लगे और कर्मचारी भी सही समय पर आने लगे। सालों निष्क्रिय पड़ी बेजान फाइलों में अचानक जान आ गई। दफ्तर के कमरों में अब धूल अथवा मकड़ी के जाले भी दिखाई नहीं दिए। पहले के अधिकारी की चर्चा चलती तो लोग कहते कि वे भले आदमी थे। लोगों के इस कथन में उस अधिकारी की अयोग्यता का संकेत रहता था। ठीक उसी तरह रघुपति के बारे में कहा जाता है कि वे बहुत अच्छे ऑफिसर हैं, जिसका यह मतलब होता कि आदमी के

रूप में वे बिलकुल अच्छे नहीं थे। इससे एक निष्कर्ष निकलता था, हालाँकि यह प्रामाणिक या तर्कसंगत नहीं था कि एक अच्छा आदमी कभी अच्छा ऑफिसर नहीं बन सकता, या एक अच्छा ऑफिसर कदापि अच्छा आदमी नहीं हो सकता।

बहरहाल, रघुपति एक दुर्दांत ऑफिसर थे, इसमें कोई संदेह नहीं। अपनी गंभीरता, अनुशासन और नियमों को सिर्फ दफ्तर तक ही सीमित न रखकर वे अपने व्यक्तिगत जीवन में भी उनका उपयोग करते थे। फलस्वरूप उनका घर भी उनके जिला प्रशासन का एक संक्षिप्त संस्करण था, जहाँ उनकी पत्नी, बच्चे और नौकर-चाकर अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक रघुपति के अनुशासन के अधीन थे। मसलन, रघुपति अपनी पत्नी के साथ इस तरह का व्यवहार करते थे मानो वे किसी द्वितीय श्रेणी की कर्मचारी हों। अपने बच्चों को रघुपति ने कभी भी चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी से बड़ा नहीं समझा। कुल मिलाकर कहा जाए तो रघुपति एक निरंकुश सार्वभौम सम्राट थे और उनके घर समेत पूरा जिला उनका व्यापक साम्राज्य था।

उस आदर्श परिस्थिति में एक विशेष अपवाद थी रघुपति की सबसे छोटी बेटी। वह अधिकतर बीमार रहती थी, उम्र के हिसाब से बढ़ नहीं रही थी और तरह-तरह की बीमारियों से हमेशा पीड़ित रहती थी। अनेकों इलाज व सेवा-शुश्रूषा के बावजूद उसके स्वास्थ्य और शारीरिक हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा था। इससे रघुपति काफी चिंतित और परेशान रहा करते थे। बड़े-बड़े अस्पतालों और डॉक्टरों द्वारा सालों इलाज करवाने पर भी कोई फायदा नहीं हुआ। विदेशी चिकित्सा से लेकर होमियोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी सभी तरह की पद्धति आजमा लेने के बाद अब रघुपति ने डॉक्टरों के पास जाना ही छोड़ दिया था। परंतु डॉक्टरों के बाद अब बारी थी तांत्रिक, कापालिक, ज्योतिर्विद् और विभिन्न वेशभूषा एवं धर्मावलंबी साधु-संन्यासियों की।

रघुपति के अधीनस्थ कर्मचारियों को जल्द ही उनकी इस एकमात्र कमजोरी का पता चल गया था। अतः रघुपति को खुश करने के लिए वे विभिन्न इलाकों से साधु-संन्यासियों को पकड़ लाते थे। रघुपति के घर पर अधिकतर गेरुए वस्त्र एवं जटाजूटधारी लोगों का जमघट लगा रहता था।

इस गंभीर समस्या से घिरे रहने पर भी रघुपति अपने काम के प्रति लापरवाही अथवा अपने निश्चित कार्यक्रम में कभी किसी तरह का फेर-बदल नहीं करते थे। वे ठीक दस बजे दफ्तर पहुँच जाते और मन लगाकर दृढ़तापूर्वक काम किया करते। नियमानुसार दौरे पर भी जाते। उनके आँचलिक अधिकारी उनके निरीक्षण

से काफी घबराते थे। इसी तरह के एक दौरे के दौरान रघुपति इस वक्त अपने अधीनस्थ एक छोटे दफ्तर का निरीक्षण कर रहे थे। उस कार्यालय का अयोग्य और कामचोर अधिकारी उनके सामने बैठा अपने इष्ट देवता को याद कर रहा था। वह डर से हकलाने लगा था और पसीने से तर-बतर हो गया था। बार-बार खाँसने, थूक निगलने और कनपटी खुजलाने पर भी वह रघुपति के सवालों का जवाब नहीं दे पा रहा था। रघुपति का पारा बढ़ने लगा था। वह अधिकारी डर रहा था कि कहीं देर-सबेर उस क्रोधाग्नि में जलकर वह भस्म न हो जाए। इसलिए रघुपति का मुकाबला करने के लिए उसने बहुत दिनों से सहेजकर रखा अपना अमोघ अस्त्र मौका देखकर निकाला।

रघुपति के वाक्यरूपी तीरों की बौछार पल-भर को थमते देख उस अधिकारी ने साहस बटोरते हुए अपने उस तीर का प्रयोग किया।

"सर, पशुपति आपसे मिलना चाहते हैं।"

"कौन पशुपति?" रघुपति ने गुस्से से पूछा।

जिस ऑफिसर के मुँह से अभी तक बोल नहीं फूट रहे थे वह एकाएक वाचाल हो उठा और पशुपति के बारे में बताने लगा। पशुपति उसके दफ्तर का एक साधारण-सा चपरासी है, किंतु इस इलाके में एक अष्टावधानी साधक के रूप में काफी मशहूर है। उसके पास तंत्र ज्योतिष की कई ताल-पत्र की पोथियाँ हैं और दफ्तर की छुट्टी के दिनों में उसके घर पर लोगों की अपार भीड़ लग जाती है। तरह-तरह की समस्याएँ लेकर लोग उसके पास आते हैं एवं पोथी देखकर, गणना करके पशुपति उनकी हर समस्या का समाधान ढूँढ़ निकालता है।

इतना कहने के बाद ऑफिसर ने रघुपति पर अपने अस्त्र का असर जानने के लिए उनकी ओर देखा। अनेक साधु-संन्यासियों की गतिविधियों से पूरी तरह अवगत रघुपति पर अपनी बातों का विशेष असर न पड़ते देख उस अधिकारी ने अब अपनी बात का रुख पूरी तरह बदल दिया।

"पशुपति को बीच में नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया था।" उसने कहा।

"क्यों?" कौतूहलवश रघुपति ने पूछा।

ऑफिसर ने समझा कि उसका अस्त्र काम कर रहा है। उसने कहा, "किसी से कुछ कहे बिना, ऑफिस से छुट्टी न लेकर वह तपस्या करने हिमालय चला गया था। यहाँ तक कि उसके घर पर भी यह बात किसी को मालूम नहीं थी। कुछ ही दिनों के बाद केदार-बद्री गये उसके गाँव के कुछ लोगों ने एक लंबी दाढ़ीवाले बकरे

पर बैठे पशुपति को हिमालय की ओर जाते देखा था। पाँच साल बाद पशुपति खुद गाँव लौट आया। तब तक उसे नौकरी से बर्खास्त किया जा चुका था। लेकिन सबने उसे नौकरी पर बहाल करने की सिफारिश की। यहाँ तक कि हमारे मंत्री जी ने भी।"

किस नियम के अंतर्गत बिना दरखास्त के पाँच साल तक दफ्तर से अनुपस्थित कर्मचारी की पुनः नियुक्ति दी गई, पूछने ही वाले थे रघुपति। उनके चेहरे से उनका अभिप्राय भाँपते हुए ऑफिसर ने कहा, "मंत्री जी का भानजा बहुत दिनों से दमा से पीड़ित था। पशुपति ने उसे हफ्ते-भर में ठीक कर दिया।"

रघुपति को शक हुआ कि यह निठल्ला, अयोग्य, कामचोर ऑफिसर उनकी कमजोरी का नाजायज फायदा उठाना चाह रहा है। उन्होंने सोचा कि वे पुनः निरीक्षण प्रश्नावली पर लौट जाएँ। लेकिन मंत्री जी के भांजे के स्वस्थ होने की बात सुनकर वे दुविधा में पड़ गए। इससे पहले कि वे कुछ और पूछते, ऑफिसर भी सतर्क हो गया और स्वयं पशुपति को लाकर जिलाधीश के सामने करबद्ध रूप से खड़ा कर दिया।

खाकी पोशाक पहने सफाचट दाढ़ी, मामूली चपरासी जैसे आदमी को देख रघुपति को निराशा हुई। लेकिन इस समस्या का समाधान करने के लिए उन्होंने अपने कागजात समेटकर निरीक्षण कार्य वहीं बंद कर दिया और पशुपति की ओर ध्यान दिया। उन्हें इस विषय में मदद करने के लिए अचानक कहीं से चाय-बिस्कुट आ पहुँचा, माहौल सहज हो गया और ऑफिसर खुलकर बातें करने लगा।

"साहब की बेटी ठीक तो हो जाएगी ना?" साहब की ओर तिरछी नजर से देखते हुए ऑफिसर ने पशुपति से पूछा।

पशुपति ने आँखें बंद कर भगवान का नाम लेते हुए कहा, "सब ऊपरवाले की इच्छा है।"

यह जवाब रघुपति के लिए विशेष आश्वासन-भरा नहीं था। ऑफिसर भी यह बात समझते हुए बोला, "साहब, कब आएँ तुम्हारे पास?"

"साहब जब चाहें।" जवाब दिया पशुपति ने।

"कल रविवार को कैसा रहेगा? कल तुम पूजा करोगे ना?"

"रविवार को पूजा किए बगैर कैसे काम चलेगा? फिर कल तो पूरनमासी भी है। कल ही आइए, हुजूर।"

चपरासी को विदा करके ऑफिसर रघुपति के चेहरे का अध्ययन करने लगा। अभी तक रघुपति पूरी तरह प्रभावित नहीं हुए थे। उन्हें अधिक सोचने का मौका न देते हुए ऑफिसर ने कहा, "कल तो सर, रविवार है। पास ही पशुपति का गाँव है। मैं सोचता हूँ, एक बार चलकर आजमाने में क्या हानि है?"

'ना' नहीं कर पाए रघुपति। लेकिन बोले, "मेरे पास जन्मपत्री आदि तो कुछ है नहीं।"

ऑफिसर ने पुनः पशुपति को बुलवाया। आते ही वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। ऑफिसर ने कहा, "साहब कल तुम्हारे गाँव जाएँगे। क्या जन्मपत्री की जरूरत पड़ेगी?"

"जन्म की तारीख और समय याद हो तो भी काम चल जाएगा।" पशुपति ने कहा।

"ठीक है, तुम जाओ।" कहकर चपरासी को बाहर भेजने के बाद ऑफिसर ने पूछा, "सर, आपको जन्मतिथि और समय तो याद है ना?" रघुपति के हामी भरते ही ऑफिसर दूसरे दिन चपरासी के गाँव जाने की तैयारी में जुट गया। तय हुआ कि वे सबेरे-सबेरे निकल पड़ेंगे एवं धूप निकलने तक चपरासी के गाँव पहुँच जाएँगे और जल्दी ही लौट आएँगे।

ऑफिसर की तरह पशुपति भी कामचोर था। वह सही समय पर दफ्तर नहीं आया करता था। साथ ही कामकाज में भी लापरवाह था। खुद ऑफिसर पशुपति की दैवीय-शक्ति पर विश्वास नहीं करता था। ना ही कभी वह उसके गाँव गया था और ना ही उसने कभी किसी चीज के लिए उससे कोई सलाह ही ली थी। इसलिए उसी दिन रात को उसने पशुपति के गाँव के बारे में पूछताछ की और ड्राइवर को सारा रास्ता समझा दिया। दूसरे दिन सुबह-सुबह ऑफिसर रघुपति के विश्राम बँगले में जा पहुँचा। जाड़े की शुरुआत थी। सुबह जरा-जरा-सी ठंड पड़ रही थी। रघुपति सूट पहनकर कुत्ते को तैयार करके ठीक सात बजे बाहर निकले। जब ड्राइवर ने कहा कि अब तक वहाँ काफी भीड़ इकट्ठी हो चुकी होगी, तब ऑफिसर ने कहा, "घबराने की बात नहीं। मैं साहब का काम पहले करवा दूँगा।"

पशुपति का गाँव बहुत दूर था और रास्ता भी काफी ऊबड़-खाबड़। इसलिए जाने में काफी समय लगा। धूप भी तेज हो गई और रघुपति के पास बैठा कुत्ता बिन वजह भौंकने लगा। इससे पहले कि रघुपति उसे कुछ कहें, ऑफिसर ने कहा, "सामने जो झाड़ियाँ दिख रही हैं, उन्हें पार करते ही हम अपनी जगह पहुँच जाएँगे।" किंतु उन झाड़ियों को पार करने के बाद फिर झाड़ियाँ दिखाई

देने लगीं। रघुपति को भुलाये रखने के लिए ऑफिसर तरह-तरह की अप्रासंगिक बातों से उनका मनोरंजन करने की कोशिश करने लगा।

मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते सूरज काफी चढ़ चुका था। धूप और गुस्से से रघुपति का चेहरा तमतमा गया था और कुत्ता भी जोर-जोर से भौंकने लगा था। हालाँकि गाँव में कोई मेला नहीं लगा था, फिर भी वहाँ काफी जमघट था। धूप, थोड़ी भूख, बकबक करते अधीनस्थ कर्मचारी एवं कुत्ते के भौंकने से उत्पन्न झुँझलाहट से परेशान रघुपति गाड़ी से उतरे। वहाँ उनकी प्रतीक्षा कर रहा अधीनस्थ कर्मचारी उनकी अगवानी करता हुआ उन्हें आगे लिवा गया। चपरासी का घर गाँव के अंतिम सिरे पर था एवं धूल-धूसरित तंग गली में खेल रहे नंगे बच्चों की भीड़ से होकर वहाँ जाना था। पसीने से भीगे काले सूट में रघुपति को घुटन हो रही थी, जबकि गाँववालों के लिए इस वक्त वह एक दर्शनीय चीज थे। हठात् गाँव के बीचोबीच एक तोरण दिखाई दिया। पहले तो रघुपति ने सोचा कि वह तोरण उनके स्वागत के लिए बनाया गया है, लेकिन जब उन्होंने तोरण से निकली रंगीन पन्नियों की सजावट चपरासी के घर की ओर फैली देखी, उनकी धारणा बदल गई और वे निराश हो गए। उन्हें किसी ने बताया कि यह सारी सजावट पूरनमासी की वजह से है।

"इस कुत्ते को अंदर लाया कौन?" किसी ने ऊँची आवाज में पूछा। रघुपति के पैर वहीं ठिठक गए और उन्होंने मुड़कर देखा कि दो व्यक्तियों ने उनके कुत्ते का रास्ता रोक रखा है। ऑफिसर ने फुसफुसाकर कहा, "विलायती कुत्ता है। साहब का। छोड़ दो।" लेकिन उन दो व्यक्तियों में से एक ने कहा, "गोसाँई जी का स्थान यहाँ से शुरू होता है। इसके भीतर कुत्ता, बिल्ली, मांस, मछली ले जाना मना है।" उनके कुत्ते की तुलना मांस, मछली और बिल्ली से करनेवाले व्यक्ति की ओर गुस्से में भरकर रघुपति ने पल-भर देखा, लेकिन अगले ही क्षण खुद को संयमित करते हुए अपने एक कर्मचारी के जिम्मे कुत्ते को छोड़ आगे बढ़ गए।

दो कदम आगे गए ही थे कि दूसरा तोरण दिखाई दिया जहाँ से दाहिनी ओर मुड़ना था। वहाँ जूते-चप्पल रखे हुए थे। ऑफिसर ने कहा, "सर, आप जूते पहनकर चलिए, अंदर उतार दीजिएगा।" लेकिन कुत्ते की बात याद करके रघुपति ने जूते वहीं उतार दिए, हालाँकि धूलभरे रास्ते में खड़े होकर पसीने से तर-ब-तर पैरों से जूते और जुराबें उतारकर नंगे पैर चलना उनके लिए सुखद स्थिति नहीं थी। उसी तरह उन्होंने अपनी सिगार पीने की प्रबल इच्छा का भी दमन किया, क्योंकि कुत्ते और जूते के बाद वे धूम्रपान करने का साहस नहीं जुटा पाए।

झुके हुए छप्पर को पार कर अब वे गोसाँई जी की खास गद्दी के पास जा पहुँचे। छोटे से आँगन के एक किनारे शामियाने के नीचे बैठने की एक ऊँची जगह बनी थी और उस पर चपरासी पशुपति तालपत्रों की पोथियों से घिरा पद्मासन में बैठा था। उसके चारों ओर धूप-दीप जल रहे थे। नहा-धोकर, रेशम का कपड़ा पहने, ललाट पर सिंदूर-चंदन और आँखों पर चश्मा चढ़ाए, हाथों में तालपत्र की पोथी लिए, पशुपति मन-ही-मन न जाने क्या कुछ बड़बड़ा रहा था। आँगन में ज़मीन पर बैठे उसके पास आए फरियादी उसकी ओर एकटक देख रहे थे। वे विभिन्न गाँवों से आए हुए मैले-कुचैले रोगग्रस्त लोग थे जोकि पशुपति के पास तरह-तरह के दुःसाध्य रोगों से छुटकारा पाने के लिए आए हुए थे। उनमें सिर्फ एक ही आदमी साफ-सुथरा था जो कि शायद कहीं दूर से आया था और सिर झुकाए बैठा था। ऐसी व्यवस्था देखकर ऑफिसर ने कहा, "सर, जरा रुकिए, मैं कुर्सी ले आता हूँ।" इतना कहकर वह नौ-दो-ग्यारह हो गया। रघुपति समझ गए कि अब वह लौटने वाला नहीं। इस गाँव में किसी के घर पर कुर्सी मिलने की संभावना नहीं थी, और यदि मिल भी गई तो वहाँ गोसाँई जी से ऊँचे आसन पर बैठना निस्संदेह धर्मद्रोह माना जाएगा। रघुपति उन मैले-कुचैले लोगों के बीच से होते हुए उस साफ-सुथरे आदमी के पास जाकर पालथी मारकर बैठ गए। भीड़ में बैठने की जगह तक नहीं थी और विलायती पोशाक भी पालथी मारकर बैठने के लिए सुविधाजनक नहीं थी। सूर्य इस वक्त पूरी तेजी पर था और कड़ी धूप सीधे आकर सिर पर पड़ रही थी।

रघुपति एकटक पशुपति की ओर देख रहे थे, लेकिन पशुपति इधर-उधर न देखकर एक-एक करके पोथियाँ खोलता जा रहा था और उनमें से कुछ-कुछ पढ़ते हुए अपने सामने बैठे व्यक्ति को अबूझ भाषा में समझाता जा रहा था। बेचारा वह आदमी किसी असाध्य बीमारी से छुटकारा पाने के लिए उसके पास आया था, किंतु पशुपति उससे पूछ रहा था, "पोथी से तो चक्र निकल रहा है। क्या तुम्हारे घर में कोई चक्र है?" रघुपति ने सोचा, यदि गोसाँई उनसे यह सवाल पूछे होते तो वे क्या जवाब देते ? लेकिन उस आदमी ने सीधा-सा जवाब दिया, "नहीं।" यह जवाब सुन पशुपति ने कुछ हरी पत्तियाँ लेकर तालपत्र पर घिसीं, चश्मे को अच्छी तरह पहना और पूछा, "तो क्या कोई चित्र है?" उस आदमी के पुनः ना करने पर पशुपति ने पास खड़े व्यक्ति से कहा, "जरा भैया को बुलाओ। वे पढ़कर देखें।" पशुपति के बड़े भाई पोथी पढ़ने में उसकी मदद किया करते थे। उन्होंने आकर तालपत्र में कुछ पत्तियाँ और रगड़ीं, आँखों का

चश्मा डोरों के सहारे और अच्छी तरह से बाँधा और उसे अधिक शुद्ध रूप से पढ़ने की कोशिश की।

काफी समय तक सीधे भाई की ओर देखने के बाद पशुपति ने रघुपति की ओर देखा। रघुपति ने सोचा कि अब पशुपति उन्हें अपने पास बुलाकर पहले उनकी समस्या का समाधान करेगा। लेकिन उनसे नजरें मिलते ही पशुपति ने आँखें फेर लीं और भाई के हाथों से पोथी लेकर उसे पढ़ने की कोशिश करने लगा। रघुपति ने सोचा कि वहाँ से उठ जाए और खुशामद कर रहे ऑफिसर को गाली-गलौज करके उसका चरित्र-रिपोर्ट पूरी तरह तहस-नहस कर दे तथा नियमों को ताक पर रखकर हुई चपरासी की पुनर्नियुक्ति के आदेश को रद्द कर दे। लेकिन तेज धूप में इतने भक्तों की घुटनभरी प्रतीक्षा, चंदन-सिंदूर, रेशम के कपड़ों से सुशोभित गोसाँई एवं पुराने तालपत्रों की ढेर लगी पोथियों की ओर जरा भयभीत होकर देखने पर उन्हें अपनी बेटी और मंत्री के भानजे का एक काल्पनिक चेहरा दिखाई दिया ; उन्होंने उपरोक्त चिंताएँ अपने मन से निकाल दीं।

इस बीच रघुपति की निगाह बरामदे की छाया में आराम से खड़े अपने चापलूस ऑफिसर पर पड़ी। इससे पहले कि ऑफिसर वहाँ से मुँह फेरकर भाग जाए, रघुपति ने उसकी ओर गुस्से से देखा। वहीं खड़े-खड़े ऑफिसर ने इशारे से समझाया कि एक-दूसरे से सटे बैठे लोगों के बीच से होकर उनके पास नहीं पहुँच पाएगा। इसके बाद उसने हाथ और अँगुलियों की मुद्राओं एवं आँखों और होंठों के इशारों से जो कुछ कहा उसका मतलब था : सर, मैंने आपके लिए कुर्सी लाने हेतु आदमी भेजा है। आप जरा धीरज रखिए, कुर्सी आने पर आराम से बैठिएगा। इसके अलावा मैं जाकर गोसाँई से कहता हूँ, उस बेचारे की बात सुनने के बाद तुरंत आपको करीब बुलाकर आपकी बेटी को ठीक कर देंगे।

इशारों से इतनी बातें कहने के बाद ऑफिसर तत्काल वहाँ से छूमंतर हो गया। रघुपति ने मन-ही-मन ऑफिसर को खूब गालियाँ दीं, क्योंकि अब तक वे अच्छी तरह समझ गए थे कि वहाँ उस छोटे ऑफिसर की तो क्या, स्वयं रघुपति की बात भी चलने वाली नहीं थी। इस झुके हुए छप्पर के नीचे जो स्वतंत्र साम्राज्य था उसका एकछत्र सम्राट था चपरासी पशुपति और नीचे बैठे सारे लोग महज उसकी दया के प्रार्थी। यह बात समझते ही रघुपति चुपचाप बैठकर अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगे।

प्रतिद्वंद्वी

भाग्य में होने, या दुर्भाग्य में होने से, ऐसा होता है, मन ही मन सोचा रंगनाथ ने। वे दोनों एक ही स्कूल में, एक ही क्लास में पढ़ते थे और एक ही दिन, एक ही कंपनी में उन्होंने नौकरी शुरू की थी। काफी दिनों तक उनकी जीवनधारा समानांतर रूप से चली थी, यहाँ तक कि वे दोनों एक साल तक एक ही शहर में नौकरी करने के दौरान एक ही कमरा लेकर साथ रहते थे। लेकिन आगे चलकर दोनों के जीवन ने अलग मोड़ ले लिया। जयसिंह की शादी हो गई, बाल-बच्चे हुए और उसके साथ ही उसकी उच्च अभिलाषा भी बढ़ गई। रंगनाथ ने अपने काम में खुद को पूरी तरह झोंक दिया, शादी नहीं की और कंपनी को ही अपना जीवन समझ लिया। रंगनाथ के इसी तरह अपने काम की उत्कर्षता में डूबे रहते समय जयसिंह अपने वरिष्ठ अधिकारियों की चमचागिरी करने लगा और एक दिन अचानक पदोन्नति पाकर रंगनाथ से आगे निकल गया।

उस दिन बड़े दुख और अनुताप में डूबा रहा रंगनाथ। जीवन का एक विशेष हिस्सा उसने कंपनी की सेवा में बिता दिया था। अपनी कंपनी के कृषि उपकरण बेचने के सिवाय जीवन में उसने और कोई रुचि नहीं रखी थी। उसके बहुत से मित्रों ने इन बीस वर्षों में कई नौकरियाँ बदलने के बावजूद रंगनाथ ने जयसिंह की तरह उस एक ही कंपनी को पकड़ रहा था। जीवन के इस पड़ाव पर फिर से नया काम ढूँढ़ने का धैर्य उसमें नहीं था। फिर भी उसने सोचा कि उस नौकरी से वह इस्तीफा दे देगा। उसकी कोई पारिवारिक जिम्मेवारी तो है नहीं, ना ही रुपये-पैसों की समस्या है, तो फिर क्यों वह ऐसा अपमान सहे? फिर सोचा, जयसिंह के विरुद्ध उस कंपनी के कर्त्ता-धर्त्ताओं को पत्र लिखेगा। इतने वर्षों की नौकरी में वह जयसिंह के अनेक दोष-दुर्बलताओं के बारे में जानता था। यहाँ तक कि स्वयं जयसिंह ने उसे अपनी अनेक गलतियों से अवगत कराया था। परंतु इन विषयों का उपयोग करके जयसिंह को विपदा में डालना उचित नहीं

होगा, ऐसा सोचा रंगनाथ ने। अब उसे अपनी कंपनी पर गुस्सा आया। कंपनी को तो समझना चाहिए था कि कौन कितना काम करता है। और किसे प्रमोशन मिलना चाहिए! विदेशी कंपनियों में काफी सुविधाएँ और अवसर हैं, पर ये विदेशी अफसर यहाँ के लोगों के बारे में कितना जानते हैं? हालाँकि विदेशी कंपनी के शेयर का अधिक हिस्सा भारतीयों के हाथों में होता है, फिर भी नियंत्रण विदेशी के हाथ में। उनके भी अनेक दोष और कमजोरियाँ रंगनाथ को मालूम हैं। क्या वह बिना दस्तखत के एक पत्र कंपनी के विरुद्ध लिखकर सरकार को भेज दे? उसके न्यायबोध ने इस बात का विरोध किया। रंगनाथ ने सोचा, वह नौकरी छोड़कर खुद ही कृषि उपकरणों का एक कारखाना लगाएगा और उसका कारखाना एक दिन इस कंपनी से आगे निकल जाएगा।

यह एक दिवास्वप्न मात्र था। लेकिन नौकरी में विभिन्न स्तरों पर कभी-कभार वरिष्ठ अधिकारियों से भर्त्सना सुनने के बाद वह इस सपने का ही सहारा लेता था। सपने को साकार करने के लिए उसने कृषि उपकरण कारखाना लगाने संबंधी तरह-तरह के कागजात इकट्ठे कर रखे थे। उस विषय से संबंधित पूरी फाइल उसके पास तैयार थी। हताश क्षणों में वह उस फाइल का अध्ययन करके खुश हो जाया करता था। फाइल में तरह-तरह के आश्वासन भरे कागजात जैसे कारखाने की संपूर्ण प्रोजेक्ट रिपोर्ट, विभिन्न सरकारी कार्यालयों को आवेदन करने वाले फॉर्म, कारखाना लगाने से संबंधित नियमावली इत्यादि थे। कई वर्षों में उसने यह फाइल तैयार की थी। बीच-बीच में कई कागज़ात

संशोधित करके वह उन्हें अद्यतन रखता था। कई वर्षों पहले उसने जो कारखाना सिर्फ कई लाख रुपयों में लगा लेने का आकलन किया था, अब उसका खर्च बढ़ते-बढ़ते एक करोड़ तक पहुँच चुका था। सरकार की औद्योगिक नीति भी इस बीच कई बार बदल चुकी थी। कारखाना छोटा, मझोला या बड़े आकार का लगाएगा, उस बारे में भी रंगनाथ को अपना निर्णय बदलना पड़ा था। परंतु वह फाइल इस वक्त अपने आप में संपूर्ण और अद्यतन थी। वह फाइल रंगनाथ के लिए पूरी तरह उसका एक तिलस्मी साम्राज्य था, जिसके भीतर वह समय-असमय आ-जा सकता था।

जिस दिन जयसिंह की पदोन्नति हुई थी, रात को उस फाइल को अपने सामने खोलकर कल्पना में खो गया था रंगनाथ। उसके सामने जमीन का एक नक्शा रखा था, जिसे उसने काफी वर्ष पहले दौरे पर होने के दौरान प्राप्त किया था। अपना कारखाना किस जगह लगाएगा, उस बारे में उसका मन स्थिर था और इस

समय वह नक्शे के खाली जगह में लगा रहा था। उसे इस काम में मदद करने के लिए उसकी बाईं ओर ह्विस्की का गिलास रखा था और दायीं ओर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से काटकर रखे कारखानों के नक्शे से। जमीन खरीदकर तरह-तरह की सरकारी अनुमति प्राप्त करके, विदेशों से कल पुर्जे मँगवाकर, कारखाने की बिल्डिंग बनवाकर कृषि उपकरण बनाते-बनाते रात काफी हो चुकी थी। रंगनाथ उठकर बिस्तर पर लेट गया और नींद आने तक उपकरण बेचने की व्यवस्था एवं नफा-नुकसान का हिसाब लगाने में मन लगाया।

सुबह उठने पर कम समय सोने की वजह से रंगनाथ के बदन में सुस्ती थी और अत्यधिक पी लेने के कारण सिर भारी था। टेबुल पर बिखरे पड़े कागजात समेटकर उसने फाइल में रख लिए और फाइल संभालकर ले जाकर लोहे की अलमारी में बंद कर दी। मन ही मन सोचा, आज रात दफ्तर से लौटकर फिर से देखने होंगे ये कागजात। नियमित समय पर वह ऑफिस गया और अपने कमरे में जाकर अभ्यासवश उस दिन आई चिट्ठियाँ देखने लगा। उसके बाद उसने अपने दैनंदिन काम में मन लगाया। यह सब करने के दौरान वह जानता था कि एक आवश्यक काम बच गया है, वह काम था जयसिंह से मिलकर उससे कुछ कहना। उसने सोचा, यदि जयसिंह की जगह उसे पदोन्नति मिली होती तो वह यह खबर देने उसके पास गया होता। यदि उस आदमी में इतनी भी भद्रता नहीं है तो क्या किया जा सकता है?

आखिरकार वह खुद ही जयसिंह के कमरे में गया। नया पद संभालने के कारण उसके टेबुल पर ताक की ताक फाइलें रखी थीं और वह उन्हें देखने में व्यस्त था। फिर भी रंगनाथ को देखते ही वह कुर्सी से खड़ा हो गया। बोला, सुबह दफ्तर आने के बाद से तेरे पास जाने की सोच रहा हूँ, पर निकलने का समय ही नहीं मिला। अच्छा हुआ तू आ गया। क्या पीएगा, चाय या कॉफी? रंगनाथ ने सोचा, मुझे काम दिखा रहा है! क्या मैं नहीं जानता कि इस पद पर कितना काम है? और फिर चाय-कॉफी की औपचारिता! क्या वह एक ही दिन में भूल गया कि मैं कॉफी पीना पसंद नहीं करता! मैंने कहा कांग्रेचुलेशंस। जयसिंह ने चाय मँगवाई और चाय पीते हुए उससे पहले की तरह बातचीत की। फिर भी रंगनाथ को लगा मानो कोई खटका रह जाता है हर बात में।

उसी दिन से जयसिंह के साथ उसका पुराना रिश्ता टूट गया। दोनों के बीच पहले जैसा रिश्ता बनाए रखने की न तो जयसिंह ने चेष्टा की, ना उसने। उसने

अपने काम में कोई लापरवाही नहीं की, लेकिन उसे ऐसा लगा जैसे कि ऑफिस के सभी लोग सोच रहे हैं कि अब वह पहले की तरह अपने काम में रुचि नहीं ले रहा। उसकी दक्षता पर किसी को संदेह नहीं था, क्योंकि अपने विक्रय का स्तर वह लगातार बढ़ाता जा रहा था, पर वह सोचता था कि जयसिंह सहित बाकी के सारे लोग उसके विरोधी हो गए हैं। जब भी उसे ऐसा लगता, घर पहुँचकर वह अपने कारखाना लगाने वाली फाइल पर ध्यान देता और थोड़ी-सी शांति ढूँढ़ता।

कुछ वर्षों बाद रंगनाथ को एक और धक्का लगा, जब कंपनी के विदेशी मालिकों ने भारतीयों को अपने स्वत्व बेच दिए और एक स्थानीय उद्योगपति ने अधिक संख्या में अंश खरीदकर कंपनी को अपने अधीन कर लिया। रंगनाथ को यह उम्मीद थी कि कभी न कभी विदेशी मालिकों से उसे न्याय मिलेगा, अब उस उम्मीद पर भी पानी फिर गया। कुछ दिनों बाद कंपनी में अफसरों की छँटाई और काम की अदला-बदली हुई। इस प्रक्रिया में रंगनाथ सीधे जयसिंह के अधीन हो गया।

शुरू-शुरू में रंगनाथ जयसिंह को अपना वरिष्ठ अधिकारी स्वीकारने में निराश हुआ; लेकिन धीरे-धीरे यह आदत में तब्दील हो गई। जयसिंह खुद भी काफी मेहनती था, अच्छा काम करता था और नए मालिकों का चहेता था। वह रंगनाथ के प्रति सौहार्दशील था एवं रंगनाथ चाहता तो सुचारू रूप से काम चला सकता था। किंतु उसने गुप्त रूप से जयसिंह के प्रति कुछ असहयोग करना शुरू कर दिया। हालाँकि जयसिंह को इस बात का अहसास हो गया था, पर वह इसे और आगे बढ़ने नहीं देता था। वह रंगनाथ से औपचारिकता बनाए रखता था, ताकि उसे किसी आरोप का मौका न मिले। पर इस तरह का संबंध ज्यादा दिनों तक नहीं चला। कंपनी की स्थिति बिगड़ती जा रही थी, बिक्री कम होती जा रही थी और मालिकों को अधिक लाभ न होने के कारण वे असंतुष्ट थे। दफ्तर में सभी एक तरह के दबावपूर्ण माहौल में काम कर रहे थे। एक दिन किसी बात को लेकर जयसिंह ने रंगनाथ को कोई कटु वाक्य बोल दिया। चाहता तो वह वहाँ से उठकर जा सकता था, किंतु अपने इतने वर्षों की नौकरी का अनुशासन मानकर रंगनाथ ने सारी बातें सुन लीं।

उस दिन घर लौटकर रंगनाथ अपने सपने के कारखाने के क्षेत्र की ओर नहीं भागा। उसने ठान ली कि उसके प्रति बुरा व्यवहार करने वाले इस आदमी को वह किसी भी तरह सबक सिखाकर रहेगा। उसे लगा कि पहले ही जयसिंह के विरुद्ध विदेशी अधिकारियों के कान भरकर उसे परेशान किया होता, हालाँकि

अब भी वह उसके विरुद्ध लग सकता है। उसकी तो ढेरों कमजोरियाँ रंगनाथ को मालूम हैं। एक कागज लेकर उसने जयसिंह के विरुद्ध आरोपों की एक फेहरिस्त बनाने की कोशिश की। उसके मन में कई तरह की घटनाएँ आईं, जैसे कंपनी को झूठी सूचनाएँ देना, दौरे को बिना कारण बढ़ा देना, कंपनी को नुकसान पहुँचाना, कंपनी कर्मचारियों के बीच अ-सद्भाव बढ़ाना इत्यादि। हालाँकि ये सारी बातें बिलकुल चलताऊ उदाहरण थे। ठीक किस दिन, किस तारीख को जयसिंह ने यह सब किया था, उसका विस्तृत विवरण नहीं था रंगनाथ के पास। किसी के विरुद्ध आरोप लगाने पर निर्दिष्ट घटना के बारे में बताना होगा। रंगनाथ ने तय किया कि आगामी दिनों से वह ऑफिस की पुरानी फाइलें ढूँढ़कर जयसिंह के विरुद्ध ठोस प्रमाण एकत्रित करेगा।

हालाँकि ऑफिस में उसने याद कर-करके बहुत-सी पुरानी फाइलें ढूँढ़कर निकालीं, उनमें जयसिंह के विरुद्ध कोई माल-मसाला नहीं मिला। उसे इस बारे में भी सतर्क रहना होगा, जिससे कि जयसिंह को इस विषय की भनक न लगे। चाहे जितना समय लगे, वह निश्चित ही जयसिंह की दोष-दुर्बलताएँ ढूँढ़कर रहेगा। ऐसा निर्णय करके उसने अपने रोजमर्रा के काम के साथ-साथ जयसिंह के पुरानें कामों की एक गोपनीय खोज भी जारी रखी, परंतु काफी दिनों की कोशिश के बावजूद जब उसे कोई सामग्री नहीं मिली, रंगनाथ समझ गया कि अब उसे जयसिंह की भावी त्रुटियों और कर्त्तव्यहीनता पर निर्भर करना पड़ेगा। उस दिन घर लौटकर उसने कारखाना लगाने वाली फाइल निकालकर अलग रख दी और एक नई फाइल खोली, 'जयसिंह के विरुद्ध आरोप'।

उस फाइल को खोलने के दिन से जयसिंह के साथ उसका संबंध, कम से कम उसके अपने लिए, कटु हो गया। बेहद जरूरी काम न पड़ने पर उसने जयसिंह से मिलना बंद कर दिया। उनके संबंध अब सीमित रह गए फाइलों के काम के जरिए। जयसिंह ने भी उस परिस्थिति को सुधारने की चेष्टा नहीं की। बल्कि वह भी मानो रंगनाथ से दूर रहने लगा। काम के सिलसिले में वह रंगनाथ के प्रति रुक्ष रहने लगा। धीरे-धीरे उनके पुराने दिनों के परिचय और सौहार्द पूरी तरह लुप्त हो गए एवं वे लोग बन गए सामान्य वरिष्ठ और अधीनस्थ।

इस वक्त कंपनी के बुरे दिन चल रहे थे। देश में कई नए कारखाने खुल गए थे और एक-दूसरे में होड़ मची हुई थी। कंपनी के नए हिस्सेदार अधिक लाभ चाहते थे, जोकि संभव नहीं था। सब पर काम का दबाव बढ़ता जा रहा था और यह साफ-साफ नजर आ रहा था रंगनाथ के बिक्री विभाग में। रंगनाथ

की जिम्मेवारी कई गुना बढ़ गई थी। दिन-रात काम करने के बाद उसे कुछ और करने का वक्त ही नहीं मिलता था। फिर भी वह जयसिंह से संबंधित फाइलों की बात भूला नहीं था और बीच-बीच में उससे जुड़े विभिन्न तथ्य नोट करके रख लेता था।

उस प्रक्रिया में पुनः कुछ दिन बीत गए और मालिकों की कृपा से जयसिंह कंपनी का चेयरमैन बन गया। इस खबर को भी झेल गया रंगनाथ। जयसिंह उससे ऊपर काफी पहले जा चुका था; इसलिए वह खबर अप्रत्याशित नहीं थी। बल्कि इसने रंगनाथ को अधिक दृढ़ निश्चित कर दिया था कि अब से वह और भी गंभीरता से जुटकर जयसिंह का कुछ न कुछ नुकसान करेगा। पर उसकी फाइलें अधिक ऊपर तक नहीं जाती थीं, क्योंकि जयसिंह चालाक-चतुर तथा कर्मठ और कार्यदक्ष था। इससे रंगनाथ की परेशानी बढ़ती चली गई और उसकी मानसिक स्थिति खींचातानी में रखने की वजह से रात में उसे ठीक से नींद नहीं आती थी।

उस स्थिति ने और भी गंभीर रूप ले लिया जिस दिन जयसिंह ने उस पर फाइल फेंक दी। चेयरमैन होने के बाद से जयसिंह पूरा बदल गया था। अब वह किसी से मिलता-जुलता नहीं था, गंभीर रहता था और काम के लिए सबको डराकर रखता था। पहले के सभी चेयरमैन से सख्त चेयरमैन के रूप में उसका नाम बहुत जल्द फैल गया था और ऑफिस के सभी लोग उससे डरने लगे। कंपनी के मालिक उसका पूरा समर्थन करते थे क्योंकि उसने कंपनी को बुरी स्थिति से उबारकर आज सही जगह पहुँचाया था। रंगनाथ समझ गया कि जयसिंह के विरुद्ध कागजात तैयार करके मालिकों को देना निरर्थक है। उसे यह भी याद आया कि सेवानिवृत्त होने में उसके पास सिर्फ इतना ही समय बचा है।

रात को जयसिंह की फाइल के सामने काफी देर तक बैठकर सोचने के बाद अचानक एक नया रास्ता दिखाई दिया रंगनाथ को। नौकरी शुरू करने के दिन से ही अपनी कंपनी के शेयर बीच-बीच में खरीदा करता था वह। सेवानिवृत्त होने के बाद वह शेयर होल्डरों का एक संगठन बनाएगा और कंपनी की वार्षिक आम सभा में जयसिंह के बुरे कामों का पर्दाफाश करके न केवल उसे बदनाम करेगा, बल्कि उसे पद से हटाने की चेष्टा भी करेगा। उसने फाइल पर जयसिंह के नाम के नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में शेयर-होल्डर्स असोसिएशन लिख दिया और मान लिया कि नौकरी खत्म हाने के बाद भी जयसिंह के साथ उसका युद्ध जारी रहेगा। ऐसा सोचना उसके लिए काफी सुखकारी था।

इस बार रंगनाथ ऑफिस से इकट्ठे किए कंपनी के सारे पुराने ऑडिट रिपोर्ट आदि पढ़कर वह उनमें त्रुटियाँ ढूँढ़ने लगा। किस-किस बात के लिए पूरी जिम्मेवारी सीधे-सीधे चेयरमैन पर होती है, सब नोट करके रख लिया। इसके लिए उसने कंपनी के कानून इत्यादि का अध्ययन भी किया। फाइल में रोज-रोज नए-नए कागजात जोड़ते समय वह उत्फुल्लित होता था कि एक आम शेयर-होल्डर के तौर पर वह इतनी बड़ी कंपनी और उसके चेयरमैन को परेशानी में डाल सकता है। उल्लंघन के लिए कानून में भारी जुर्माना और जेल इत्यादि दंड भी था। रंगनाथ कल्पना कर रहा था कि कंपनी के विरुद्ध वह जो प्रमाण इकट्ठे करेगा, उससे निश्चित ही कंपनी परेशानी में पड़ जाएगी और जयसिंह कम से कम छह महीने के लिए जेल जाएगा। ऑफिस की उदास घड़ियों में ऐसा सोचने से रंगनाथ को राहत मिलती थी।

उसे सबसे बड़ा हथियार तब मिला जब जयसिंह ने अपने बेटे को कंपनी की नौकरी में लगा लिया। रंगनाथ की राय में यह तमाम कानूनों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन था। उस नियुक्ति की अवैधता के बारे में रंगनाथ ने कई नियमावली पढ़कर एक लंबा विवरण तैयार करके फाइल में रख लिया। अब जयसिंह के बचने की कोई उम्मीद नहीं रही। विनाशकाले विपरीत बुद्धि। शेयर होल्डरों की आम बैठक में जब रंगनाथ इस बात को रखेगा, जयसिंह का चेहरा लटक जाएगा। ऑफिस में उजड्डपन दिखाने वाला चेयरमैन आम बैठक में सबसे दया की भीख मांगेगा। इस अविवेकी काम के लिए वह मालिकों का विश्वास खो बैठेगा और हो सकता है, अपनी नौकरी से भी हाथ धो बैठे। यही होगी उसके प्रति बुरा व्यवहार करने के लिए जयसिंह की सजा।

रात को घर पर बैठकर तैयार किए गए तर्क और आत्मविश्वास ऑफिस पहुँचने के बाद उतने दृढ़ और प्रभावकारी नहीं रह जाते थे। इन दिनों ऑफिस में जयसिंह का एकछत्र राज था। उससे सभी, यहाँ तक कि खुद रंगनाथ यह स्वीकार करने को तैयार न होने के बावजूद, डरते थे। जयसिंह के बैठक बुलाने पर सभी अपने-अपने कागजात कई बार पढ़कर तैयार होकर जाते थे। वह कब किसके साथ दुर्व्यवहार करेगा, इससे भी लोग डरते थे।

बहरहाल अपने भाग्य या दुर्भाग्य को स्वीकार कर लिया था रंगनाथ ने। इस समय उसका एकमात्र लक्ष्य था नौकरी से सेवानिवृत्त होते ही शेयर होल्डरों की संस्था बनाकर जयसिंह से बदला लेना। खुद को जयसिंह से यथासंभव दूर रखने लगा रंगनाथ। और कुछ ही महीने की बात है! उसके बाद देखा जाएगा, किसके भाग्य में क्या है!

देखते-देखते वे कुछ महीने भी बीत गए ऑफिस के काम के दबाव में। अंततः रंगनाथ के सेवानिवृत्त होने की तारीख आ गई। वह दिन था रंगनाथ के लिए दुख और संभावित आनंद का दिन। ऑफिस ही था उसका समस्त जीवन और ऑफिस छोड़कर जाने की बात सोचने पर उसे संपूर्ण शून्यबोध लग रहा था। इसके साथ ही वह सोच रहा था शेयर होल्डर्स असोसिएशन की व्यस्तताभरी जिम्मेवारी और जयसिंह का घमंड चूर-चूर करने की बातें। उस दिन शाम को जब उसका विदाई समारोह हुआ और उसके सहकर्मियों एवं स्वयं जयसिंह ने उसकी प्रशंसा करते हुए भाषण दिए थे, तब भी उसके मन में ये दो विपरीत विचार घुमड़ रहे थे।

समारोह के अंत में जब उसके सहकर्मियों की ओर से जयसिंह ने उसके हाथों में यादगार स्वरूप एक कीमती पेन-सेट दिया, रंगनाथ ने भावुक होते हुए उसे ग्रहण किया, लेकिन मन ही मन नाटकीय अंदाज में बोला, यह कलम ही एक दिन तेरा काल साबित होगा जयसिंह!

समारोह के बाद जयसिंह रंगनाथ को अपने ऑफिस लिवा गया और उसे बैठने को कहा। उनकी बातें शुरू होने से पहले ही कोई कर्मचारी एक जरूरी कागज लेकर अंदर आ गया। रंगनाथ से क्षमा मांगकर जयसिंह उस कागज को पढ़ने लगा। आमने-सामने बैठकर उस माहौल की समीक्षा की रंगनाथ ने। अब वह जयसिंह के अधीन नहीं था। वह था कंपनी के शेयर होल्डर्स संघ का भावी अध्यक्ष, जिसके साथ जयसिंह अब ससम्मान बातचीत करेगा और वह जयसिंह के विरुद्ध एक-एक करके आरोप लगाएगा, अंत में जयसिंह उसके पैरों में पड़कर गिड़गिड़ाएगा। अपने प्रतिद्वंद्वी की ओर इस बार अच्छी तरह देखा रंगनाथ ने। उससे काफी बूढ़ा लग रहा था जयसिंह। इस वक्त हाथ में कागज लेकर व्यस्त होने के समय उसके माथे और चेहरे की रेखाएँ और भी सिमट आई थीं और वह अत्यंत लाचार और मरियल-सा लग रहा था। उनके पढ़ाई के दिनों में जयसिंह स्वस्थ-सबल, फुर्तीला और हँसमुख स्वभाव का था। अब जयसिंह लग रहा था रोगी, चिड़चिड़ा और दुखी। इस आदमी को तो बड़ी आसानी से परास्त किया जा सकता है।

कागज लेकर आने वाले व्यक्ति के चले जाने पर जयसिंह ने कहना शुरू किया, तुझसे बहुत-सी बातें करनी थीं...। इतने में टेलीफोन की घंटी बजी। फोन पर बाते करने के बाद उसने टेलीफोन का रिसीवर रखा ही था कि एक दूसरा व्यक्ति कोई जरूरी कागज हाथ में लिए आकर खड़ा हो गया, बोला, आज

इस पत्र पर दस्तखत कर देते तो यह चला जाता, कोई बैठा है इसे ले जाने के लिए। पत्र पढ़कर दस्तखत करते समय फिर से फोन बज उठा। इस बार काफी देर तक टेलीफोन पर व्यस्त रहा जयसिंह। उसके बाद रंगनाथ की ओर देखकर बोला, रात के आठ बज चुके हैं, फिर भी काम खत्म होने का नाम नहीं ले रहा। यहाँ तो काम की व्यस्तता के बीच आदमी को बात करने तक की फुर्सत नहीं। यदि तू रात को घर पर रहेगा, मैं ऑफिस से लौटते समय तेरे घर आ जाऊँगा।

घर लौटते समय रंगनाथ ने सोचा वह जयसिंह के साथ कैसा व्यवहार करेगा। उसने मेरा जो अपमान किया था उसका बदला लेने का यह एक सुनहरा अवसर है। वह दरवाजे के बाहर से ही उससे बातचीत करके टरका देगा। सीधे-सीधे कह देगा, अब तुमसे किसी तरह का संबंध रखने की इच्छा नहीं है। कह देगा, अब हमारी मुलाकात होगी शेयर-होल्डर्स की बैठक में। घर पहुँचकर उसने वह फाइल निकाली। अब वह कंपनी से पूरी तरह आजाद है। एक स्वतंत्र शेयर होल्डर के रूप में वह कंपनी और उसके चेयरमैन की गलती व कमजोरियाँ सड़क पर उछाल सकता है। इसके लिए ढेरों माल-मसाले हैं उसकी फाइल में। सारे कागजात देख गया रंगनाथ। किंतु इस बार उसे लगा कि पहले जैसा क्रोध और जोश नहीं था उसमें उन कागजात को पढ़ते समय। पुराने और फीके पड़ चुके हैं उसके आरोपों के पन्ने।

बाहर कोई आवाज सुनकर रंगनाथ दरवाजा खोलकर बाहर निकला। जयसिंह बाहर खड़े होकर वह रंगनाथ का घर है या नहीं पहचानने की चेष्टा कर रहा था। रंगनाथ को देखते ही बोला, अब रात को मुझे साफ दिखाई नहीं देता। रंगनाथ ने कहा, कभी-कभार इस ओर आते रहते तब ना याद रहता कि मेरा घर कौन-सा है! अचानक खाँसना शुरू कर दिया जयसिंह ने। बैठक में बिठाकर रंगनाथ ने उसे पानी दिया। काफी अस्वस्थ लग रहा था वह। पानी पीने के बाद राहत भरी साँस लेते हुए बोला, तू कहता है कि मैं तेरे घर नहीं आया। कई साल हो गए शाम को मैं अपने घर से कहीं गया ही नहीं। दफ्तर से लौटने में कभी नौ तो कभी दस बज जाते हैं। दोस्त-यार, सगे-संबंधी सब से संपर्क टूट गया है मेरा। घर ऑफिस, ऑफिस घर, इतना ही चलाने में मेरी नाक में दम हो गया है।

इच्छा थी, किसी तरह ऊपर बढ़ते-बढ़ते चेयरमैन बन जाऊँ। उसके लिए कितनी मेहनत करनी पड़ती है, तू तो जानता है। आखिरकार चेयरमैन बना; लेकिन काम बढ़ गया दस से चौदह घंटे। दोस्त-यार तो छूटे ही, अंत में घर का ध्यान भी नहीं रख पाया। बेटा आगे नहीं पढ़ा, आवारा हो गया। मैं कंपनी का चेयरमैन होने के कारण उसे अच्छी जगह लगा लिया; वरना उसे कहाँ मिली होती नौकरी?

मेरा शरीर भी कैसा हो गया है, देख। बारह तेरह रोग हैं। सुबह से रात तक दवा खाते रहो, तब भी चैन नहीं है। दो साल पहले अलसर का ऑपरेशन करवाया था! इधर हर्ट की हालत भी ठीक नहीं है। बस, दवा के सहारे ही जीना है।

तिस पर कंपनी की चिंता सताती रहती है। विदेशी मालिक होते तो अलग बात थी। सारी समस्याएँ समझते थे। अब के मालिकों को सिर्फ मुनाफा चाहिए। वह किसी भी तरह हो। इन्हें आइन-कानून की बातें समझाने से कोई लाभ नहीं। बोलेंगे, कानून तोड़ो। बात-बात पर धमकी देंगे, कंपनी बंद कर देने की।

उस बार जब मैं ऑपरेशन करवाने गया था, किसी को नहीं बताया। मालिक जान जाते तो कहते, यह आदमी बीमार रहने लगा है, इसे निकालकर किसी और को लाओ। इंसान को हज़ारों चीजों पर ध्यान रखकर काम करना पड़ता है यहाँ। सोचा था, नौकरी के आखिरी दिनों में कुछ शांति मिलेगी। लेकिन मेरे जीवन में सिर्फ अशांति ही अशांति है।

इतना कहकर जयसिंह चुप हो गया। उस कमजोर, लाचार, दुखी व्यक्ति की ओर देखकर रंगनाथ को दया आ गई। उसके कुछ न बोलने पर जयसिंह ने कहा, खैर छोड़, अपनी दुखभरी बातें तुझसे कहकर तेरा मन क्यों खराब करूँ? तूने अच्छा किया जो कुँआरा रह गया। घर-गृहस्थी में भी बहुत जंजाल है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ पारिवारिक समस्याएँ भी बढ़ती चली जाती हैं; कम होने का सवाल ही नहीं। कभी-कभी लगेगा, मरने पर ही मुक्ति मिलेगी।

अरे हाँ, जिस काम से मैं तेरे पास आया हूँ, अब बताए देता हूँ। तू तो जानता है, तेरे सिवाय मेरा अपना आदमी और कोई नहीं था कंपनी में। अब मालिकों से भी उतनी अच्छी नहीं बनती मेरी। डर लगा रहता है, किसी न किसी बहाने निकाल न दें मुझे। इसलिए मैं सोच रहा था, तू रिटायर भले ही हो गया है, पर यदि कंपनी की कुछ मदद करता, तो उससे मेरी ही मदद हो जाती। बिक्री अनुभाग में तुझसे ज्यादा अनुभवी और कोई नहीं है। प्रमोशन पाकर तेरी जगह जो आ रहा है, वह आदमी तो बिलकुल निकम्मा है। यदि तू राजी हो जाए तो कंपनी में एक सेल्स एडवाइजर का पद सृजित करके तुझे पाँच साल का कंट्राक्ट दे देता और मैं निश्चिंत हो जाता।

जयसिंह ने उसकी ओर देखा, लेकिन रंगनाथ ने कुछ नहीं कहा। रंगनाथ को चुप रहते देख जयसिंह ने उससे अनुग्रह मांगने की तरह देखते हुए कहा, मैं जानता हूँ तुझे किसी चीज की कमी नहीं है और तुझे आगे काम भी नहीं चाहिए। पर यदि तू इस बात से राजी हो जाता तो मेरा बहुत उपकार हो जाता।

सब कुछ है, कुछ भी नहीं है

हर बार तारापद सोचता है कि अब से वह ऐसी सभा-समितियों में नहीं आएगा, किंतु निमंत्रण आने पर वह फिर हामी भर देता। इस वक्त खाली मंच पर बैठकर सामने की कतार दर कतार खाली कुर्सियों की ओर देखते हुए मन ही मन खीझ रहा था तारापद। इतने में बिजली वाले ने उसके सिर के ऊपर जल रहे एक बल्ब को छोड़कर बाकी की सारी बत्तियां बुझा दीं। इस अंधेरे में जमानत के रूप में पास खड़ा लड़का उसे अकेला छोड़कर कहीं भाग न जाए, इसलिए तारापद ने उसे अपने पास बैठ जाने को कहा, और खुद भी अपनी अटपटी कुर्सी से उठकर अध्यक्ष के लिए रखी गई सिंहासन जैसी कुर्सी पर जाकर बैठ गया। सभा समाप्त होने के आधे घंटे बाद भी गाड़ी नहीं आई थी उसके लिए।

हर बार ऐसा ही होता है। मुफस्सल के कॉलेजों के जो लड़के उन्हें कॉलेज वार्षिकोत्सव के लिए बुलाने आते हैं, वे लोग इतनी खुशामदभरी मीठी-मीठी बातें करते हैं कि तारापद मान जाता है। समारोह में कितने लोग आएँगे और कौन-कौन विशिष्ट व्यक्ति आएँगे, उसके आने-जाने की कैसी व्यवस्था होगी इत्यादि के बारे में उन सबकी बातों में अतिरंजना होती है, यह तारापद अच्छी तरह जानता है। परंतु जब छात्र कहते हैं कि उस इलाके के लोग उसके जैसे एक वरेण्य साहित्यकार का भाषण सुनने के लिए बड़ी बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं, तारापद तुरंत राजी हो जाता। एक बार हामी भरने के बाद निमंत्रण पत्र में नाम छप जाने पर बेचारे अतिथि का कोई नियंत्रण नहीं रह जाता परिस्थिति पर। हर बार परिणति लगभग एक-सी होती है; इस बार भी उसमें कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ था।

जिस वक्त उसके पास गाड़ी पहुँचने की बात थी, एक खटारा टैक्सी उसके घर पहुँची उससे एक घंटे बाद।

कपड़े वगैरह पहनकर तारापद काफी देर से गाड़ी के इंतजार में बैठा खीझ रहा था। देर से पहुँचने के कारण क्षमा मांगने की बजाय टैक्सी ड्राइवर ने उल्टा

उसी से कहा, सर और देर मत कीजिए, सड़क बहुत खराब है। तारापद ने सोचा था उसे लिवाने के लिए कॉलेज का कोई छात्र भी आएगा, किंतु ड्राइवर ने उसे जो पत्र दिया उसमें लिखा था कि सभी लोगों समारोह के आयोजन में व्यस्त होने की वजह से उन्हें लिवाने कोई नहीं जा पा रहा है, पर वह सही समय पर पहुँच जाएँ। उस तीन पंक्ति के पत्र में तारापद को वर्तनी संबंधी तीन अशुद्धियाँ नजर आईं। उसने उस कागज़ का गोला बनाकर फेंक दिया और गाड़ी में बैठ गया।

सड़क सचमुच खराब थी। कुछ दूर जाने के बाद नियम के मुताबिक गाड़ी खराब हो गई। अपने अनुभव से तारापद गाड़ी खराब होने की एक और अनिवार्य विधि के बारे में भी सचेत था। गाड़ी खराब होने का निर्णय लेती है खूब तेज धूप और सड़क पर जहाँ आसपास कोई पेड़ नहीं होता, उस जगह। वैसी जगहों पर तारापद शुरू-शुरू में खीझा करता था, किंतु आजकल वह इसे स्वीकार कर लेता था दार्शनिकता सहित। अखबार से हवा करते हुए, सिर पर रूमाल बांधकर वह गाड़ी से नीचे उतर आया। अत्यंत अनासक्ति से उसने इंतजार किया आगामी कार्यक्रमों का। गाड़ी और मालिक को तरह-तरह की शील-अश्लील आख्याएँ देने के बाद ड्राइवर ने गाड़ी की समस्या की ओर ध्यान दिया और सड़क से गुजरती इक्की-दुक्की गाड़ियों के ड्राइवरों ने उसकी मदद भी की। काफी समय के बाद दुष्ट स्वभाव की वह गाड़ी उनके साथ तरह-तरह के खेल खेलकर अंत में थककर फिर से चलने को राजी हो गई।

समारोह स्थल पर देर से पहुँचने की चिंता नहीं थी तारापद को, क्योंकि ऐसे समारोहों के शुरू होने का कोई निश्चित समय नहीं होता था। उस दिन जब वह उस कॉलेज के पास पहुँचा, काफी कम लोग थे समारोह स्थल पर। बहुत से लोग शायद मंत्री जी की अगवानी करने के लिए सड़क किनारे खड़े थे। उसे निमंत्रण देने गए लड़के को देखते ही उसने उसे एक तरफ बुलाकर दो जरूरी चीजों की जानकारी ली, समारोह स्थल के पास मूत्रालय या अंधेरी जगह कहाँ है, और भाषण देने से पहले पीने का पानी कैसे मिलेगा। ये बातें तय कर लेने के बाद उसने चेतावनी दे दी कि उसके लौटने के लिए एक अच्छी गाड़ी का इंतजाम किया जाए।

वह क्यों ऐसे समारोहों में आता है, खुद ही से प्रश्न किया तारापद ने। क्या अपनी ही आवाज सुनने की इच्छा से? अपनी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता बनाए रखने के लिए? अपनी बातों के जाल में श्रोतामंडली को उलझाए रखने के संतोष

के लिए? जमकर तैयार किए गए और पूर्वाभ्यास करके आए किसी महत्वपूर्ण भाषण के लिए बजने वाली तालियों की मधुर ध्वनि सुनने? या, ये सब और इसके अलावा और भी कुछ?

साहित्य जगत में उसकी प्रसिद्धि और स्वीकृति को लेकर किसी तरह का संदेह नहीं था। कोई-कोई उस पर व्यंग्य कसते हुए साहित्यिक मठ का मठाधीश भी कहा करते थे और यह उपनाम उसने खुशी से स्वीकार कर लिया था। वह तरह-तरह के पुरस्कार पा चुका था, उसके आलोचनात्मक निबंधों और सर्जनात्मक साहित्य की किताबों की काफी सराहना होती रही है। वह अनेक साहित्यिक संस्थानों के कर्ता-धर्ता थे। देश-विदेश से उसके पास निमंत्रण आते थे और उसे सम्मानित करने के लिए विभिन्न संस्थाओं में होड़ लग जाती थी। इन सबके बावजूद वह क्यों आता था ऐसे छोटे-छोटे समारोहों में?

उस दिन के समारोह में अपने भाषण की लेकर वह संतुष्ट था। समारोह की शुरुआत में उसका जो परिचय दिया गया था वह अत्यंत प्रीतिकर था। एक अरसा पहले उसका परिचय देते समय उसके द्वारा लिखी गई किताबों के गलत नाम, उसकी शैक्षिक योग्यता और अन्यान्य कृतित्व के गलत विवरण इत्यादि सुनने के बाद वह सतर्क हो गया था। कोई उसे किसी भी समारोह में बुलाए आजकल वह उन्हें अपने पचिय से संबंधित एक छपा हुआ कागज दे देता था, जिसमें उसके कृति और कृतित्व की सही और लंबी सूची होती थी। आजकल के समारोहों के आयोजक उस सूची के विवरण को बढ़ा-चढ़ाकर पढ़ते हुए तारापद को संतुष्ट और पुलकित करते थे।

आज के समारोह की एक खास बात थी शिक्षामंत्री का योगदान। खुद एक अध्यापक होने की वजह से शायद तारापद शिक्षामंत्री को सम्मानपूर्वक देख रहा था, किंतु आजकल अपनी प्रतिष्ठा और साहित्यिक स्वीकृति के कारण वह खुद को उनसे ऊपर न सही, समकक्ष तो समझता ही था। इसके अलावा इस वक्त जो शिक्षा मंत्री थीं, वह कभी तारापद की सहपाठी भी थीं। इसलिए समारोह में अचानक उनसे मुलाकात हो जाने पर तारापद ने खुद को उनसे अलग रखा। कॉलेज के दिनों में सुखदा गंभीर स्वभाव की लड़की थी, किसी से ज्यादा मेल-जोल नहीं रखती थी। कॉलेज के चार वर्षों में तारापद से उसकी दो या चार बार बातचीत हुई थी या नहीं, इस पर संदेह था। कॉलेज छोड़ने के बाद भी सुखदा से कभी उसकी मुलाकात होने का अवसर नहीं मिला था, जबकि तारापद सुखदा के राजनैतिक

जीवन की अग्रगति की खबर रखता रहा है। इसलिए इस समारोह में तारापद ने सुखदा को हठात् देखकर उसे अपने पूर्व परिचय की कोई सूचना नहीं दी थी।

इस वक्त तारापद को अपने इस व्यवहार के लिए पछतावा हो रहा था, क्योंकि समारोह में उपस्थित लोगों को तारापद से अपने पूर्व परिचय की सूचना खुद सुखदा ने दी थी। उस दिन समारोह में चर्चा के विषय 'साहित्य में सामाजिक न्याय' पर अपना भाषण शुरू करते हुए सुखदा ने कहा, "यदि समाज में न्याय होता तो शिक्षा विभाग का मंत्री—वह नहीं, प्रवीण शिक्षाविद और प्रख्यात साहित्यकार एवं एक और परिचय है उसका जिसे कहने में उसे गर्व है, उसका सहपाठी तारापद होता।

खुद को बेहद तुच्छ समझने लगा था तारापद, ऐसा सुनने के बाद। वह चाहता था कि अपनी गलती की क्षतिपूर्ति के लिए वह समारोह समाप्त होने के बाद सुखदा से मिलकर सौजन्यतावश कुछ बातें करेगा। किंतु समारोह खत्म होते ही मंत्री को चारों ओर से घेर लिया लोगों ने और सुखदा के लोगों की भीड़ में अपनी गाड़ी तक पहुँचने तक तारापद को फिर बातचीत का अवसर नहीं मिला। उसके बाद उस लड़के ने आकर सूचना दी कि वह जिस गाड़ी से आए थे, उसकी मरम्मत हो रही है।

तारापद ने कलाई घड़ी की ओर देखा एवं अपने क्रोध और खीझ को यथासंभव नियंत्रित करते हुए पास बैठे लड़के से पूछा, और कितनी देर लगेगी? उस लड़के ने कहा, आप बैठिए, मैं पता करके आता हूँ। तारापद समझ गया कि यह लड़का चला गया तो वह अकेला पड़ जाएगा और उसे अनिश्चित समय तक इंतजार करना पड़ेगा। इसलिए वह खुद भी उस लड़के के साथ चल पड़ा गाड़ी का काम देखने के लिए।

गाड़ी की मरम्मत का काम चल रहा था कॉलेज से कुछ ही दूरी पर बने डाकबंगला के पास। बंगले में मंत्री जी के ठहरे होने के कारण काफी भीड़ इकट्ठी थी। फाटक के बाहर जो गाड़ियाँ खड़ी थीं, उनके ड्राइवर मिलकर उस गाड़ी को ठीक करने की चेष्टा कर रहे थे। तारापद को देखकर एक छात्र नेता ने कहा, गाड़ी बस ठीक हो ही गई समझिए सर। अपनी कलाई घड़ी देखकर उसे कुछ कहने से पहले ही छात्र नेता ने उल्टे कहा, आप जाने के लिए चाहे जितने भी उतावले क्यों न हों, गाड़ी ठीक न होने तक हम रात को आपको जाने नहीं देंगे। चलिए, डाकबंगले में थोड़ा विश्राम कर लीजिए। तारापद नहीं चाहता था अंदर

जाकर मंत्री के कृपाप्रार्थियों की भीड़ में शामिल होना। फिर भी वह अंदर गया, किंतु मंत्री बरामदे में जिस ओर बैठी थीं उसके दूसरे सिरे पर जाकर बैठ गया। शायद सुखदा ने दूर से उसे देख लिया था, क्योंकि मंत्री का निजी सचिव युवा अफसर जाकर तारापद को बुला लाया। तारापद सुखदा के सामने रखी कुर्सी पर बैठ गया, लेकिन उन्हें घेर रखे लोगों की इतनी शिकायतें और सिफारशें थी कि सुखदा उसके साथ बातचीत नहीं कर पा रही थी। अंत में सुखदा उठकर खड़ी हो गई, सबसे बोली, आप लोग कल सुबह आइए। इस वक्त मुझे कुछ जरूरी काम है। युवा अफसर ने बड़ी मुश्किल से उन लोगों को वहाँ से हटाया, लेकिन वे लोग बरामदे से नीचे उतरकर वहां से अधिक दूर न जाकर भीड़ किए खड़े रहे।

सुखदा ने कहा, समारोह के बाद मैं आपसे बात करना चाहती थी, किंतु इतनी भीड़ में संभव नहीं हुआ। बहरहाल आप यहाँ आए, अच्छा लगा। कम से कम पांच मिनट एकांत में बैठकर बातें करेंगे। लेकिन एकांत संभव नहीं था, क्योंकि उसी वक्त सेक्रेटरी कई कागजात और फाइलें लेकर आ गया। जब सुखदा ने उससे कहा कि वह बाद में देखेगी, सेक्रेटरी बोला, मैडम, कम से कम एक फाइल तो देख लीजिए, क्योंकि इसे वापस ले जाने के लिए एक आदमी इंतजार कर रहा है। आखिरकार सुखदा को वह फाइल देखनी पड़ी।

चुपचाप बैठकर सुखदा की ओर देखते हुए तारापद ने सोचा, अद्‌भुत जीवन है इनका। कोई मौका नहीं मिलता इन्हें अकेले बैठकर घड़ी भर सोचने के लिए। इतने मान-सम्मान, क्षमता के बदले अंत में स्वीकार करना पड़ता है शीशे के घर में रहने की घुटन। फाइल से सिर उठाते हुए सुखदा ने कहा, मैं दो मिनट में यह कागज देख लेती हूँ। उसके बाद बातें करेंगे। सेक्रेटरी को चाय लाने के लिए भेजकर तारापद की चिंता को प्रतिध्वनित करते हुए सुखदा ने कहा, कोई उपाय नहीं घड़ी भर अकेले रहने का।

चाय आ गई। फाइल पर दस्तखत करके सुखदा ने सेक्रेटरी से कहा, इस फाइल को भिजवाकर चले जाओ, आज मैं और कोई कागज-पत्र नहीं देखूँगी। अति कुंठित हो सेक्रेटरी अपने कागजात लेकर वहाँ से चला गया। अब सुखदा और तारापद आमने-सामने बैठे थे हाथ में चाय का कप लिए। तीस साल की दूरी मिटाते हुए सुखदा ने कहा, आपसे एक लंबे समय के बाद मुलाकात हुई है, ना?

काफी देर बाद तारापद ने सुखदा का चेहरा अपनी नजर से देखा। समारोह के मंच पर और लोगों की भीड़ में सुखदा उसके लिए थी पद और प्रतिपत्ति की

एक निर्वैयक्तिक प्रतिनिधि। इस समय शहर से दूर, बाहर जमे अंधेरे के आश्रय में डाकबंगले के बरामदे में बैठी सुखदा थी तीस साल पीछे छूटी एक लड़की। सफेद होते बाल, झुर्रियाँ उभरते चेहरे से तारापद ने ढूँढ़ निकाला कॉलेज के दिनों की शांत, शर्मीली, हंसमुख सहपाठिन को।

इस उम्र में भी सुंदर लग रही थी सुखदा। मानो समय ने उसके चेहरे पर ला दिया था आत्मविश्वास का एक स्वच्छंद और स्वाभाविक सौंदर्य। तारापद अचानक सचेत हो गया कि सुखदा उसकी ओर देखते हुए अपने प्रश्न का उत्तर चाहती थी। झेंपते हुए उसने कहा, और यह मुलाकात भी ऐसी जगह होनी थी।

दोनों घड़ी भर चुप रहे। तारापद के दिमाग में अनेक रोमांचकारी कल्पनाएँ हिलोरे लेने लगीं। परिस्थिति को पूरी तरह अपने वश में लेने के उद्देश्य से बिना घबराए उसने कहा, सुखदा तुम्हें याद है—लेकिन उसे कुछ और कहने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि ठीक उसी वक्त वह छात्र नेता दोनों हाथों में चाय के कप लेकर हाज़िर हो गया और खुशी-खुशी बोला, गाड़ी पूरी तरह ठीक हो गई है। इस बार छात्र नेता एक कुर्सी खींचकर सुखदा की बगल में बैठ गया और सुखदा के साथ आँचलिक राजनीति पर चर्चा शुरू कर दी। चाय की अगली घूँट तारापद के लिए स्वादहीन थी और उसने चाय का कप नीचे रख दिया।

अब चलता हूँ। पुनः सबकुछ नपातुला यथानियम औपचारिक। तारापद ने कहा, मुझे काफी दूर जाना है। फिर मुलाकात होगी। सुखदा ने कहा, आप तो बहुत व्यस्त रहते हैं, आपसे तो मिलना ही मुश्किल है। छात्र नेता ने कहा, मैडम आप जब भी कहेंगी मैं सर को लेकर आपके पास हाजिर हो जाऊँगा। एक-दूसरे को नमस्कार करने के बाद तारापद सुखदा को और अपनी कल्पनाओं को डाकबंगले के बरामदे में छोड़कर नीचे उतर गया।

ठीक उसी वक्त न जाने कहाँ से आकर शुरू हो गई अप्रत्याशित आँधी। अचानक सूखे पत्तों और धूल से छा गया आसपास का माहौल। हवा से डोलने लगे पेड़-पौधे। बंगले के आसपास खड़े लोग वहाँ से भाग गए। सेक्रेटरी अपने उड़ने को तैयार कागज-पत्रों को संभालने में जुट गया। कहीं उसे और कुछ देर तारापद की जिम्मेदारी न संभालनी पड़ जाए, इसलिए छात्र नेता ने कहा, सर जल्दी से गाड़ी में घुस जाइए। लेकिन यह संभव नहीं हुआ, क्योंकि उसी क्षण आँधी के साथ मूसलाधार बारिश भी शुरू हो गई। बाध्य होकर तारापद को पुनः डाकबंगले के बरामदे में लौट आना पड़ा। छात्र नेता और वह फिर से सुखदा

के पास पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए। सुखदा ने कहा, आज समय पर घर पहुँचना आपके नसीब में नहीं है।

उसके बाद काफी समय चुप्पी में बीत गया। सभी लोग बारिश की ओर देखते हुए अपने-अपने में खोए हुए थे। तारापद को लगा मानो यह बिन बादल आँधी-बारिश उसके लिए विधि द्वारा निर्धारित थी, उसे सुखदा के साथ और कुछ क्षण बातचीत का मौका देना। किंतु वह समय इस वक्त पूरी तरह प्रकृति को समर्पित था, ऐसे वक्त में कुछ भी कहना मानो तोड़ देता किसी प्रकृति सिद्ध नैसर्गिक छंद को। तारापद के मन में एक अपूर्व प्रशांति की संवेदना संचरित हो गई। सुखदा की ओर देखते समय उसे लगा, मानो इस महिला को वह अति अंतरंग रूप से जानता है। तारापद ने अपने मन में उसके साथ एक समयातिक्रांत रिश्ते की कल्पना की, जो कभी घटित नहीं हुई थी। केवल समय ही ला सकता है मनुष्य के मन में एक ऐसी अघटित आत्मीयता का अतिंद्रिय सुखद स्मरण। तारापद ने खुद को समर्पित कर दिया उस काल्पनिक स्मृतिचारण में।

उस शांत परिवेश को बड़ी निर्ममता से तोड़ दिया सेक्रेटरी ने। हाथ में पुनः ढेर सारे कागज़ात लिए मंत्री की कुर्सी के पास खड़े होकर उसने कहा, मैडम और भी कुछ जरूरी कागजात थे। सुखदा ने उसकी ओर उपहास भरी निगाह से देखते हुए कहा, वेंकट, दो मिनट शांत बैठकर बारिश की ओर देखो। वेंकट बैठ गया, अपने कागज पत्रों में मन लगाया और मंत्री जी को सुनाई देने जैसी स्वगतोक्ति करते हुए बोला, यह बारिश फसल के लिए अच्छी है। कुछ समय पुनः खामोशी में बीत गया। बारिश रुकने की उम्मीद न देख छात्र नेता जाने के लिए उठकर खड़ा हो गया; बोला, मैं ड्राइवर को अच्छी तरह समझाकर जाऊँगा, आपको कोई परेशानी नहीं होगी। एक पल के लिए तारापद को लगा कि जब तक वह गाड़ी में सुरक्षित बैठ नहीं जाता, इस लड़के को रोककर रखेगा, लेकिन अगले ही क्षण उसने तय किया कि वह खुद को पूरी तरह समर्पित कर देगा सुखदा के समक्ष।

तारापद काफी कुछ कहना चाहता था, शायद सुखदा भी, किंतु हाथ में कागज-पत्र लिए वह आदमी उनके बीच दीवार-सा बैठा था। अंत में सुखदा ने ही समाधान किया उस समस्या का। बोली, वेंकट, आज मैं कोई काम नहीं करूँगी। बाकी के कागजात कल सुबह देखूँगी। इतना कहने पर भी वेंकट को वहाँ से उठते न देख सुखदा ने आगे कहा, अब तुम जाकर विश्राम करो। इच्छा न होने के बावजूद वह वहाँ से उठा और बरामदे की दूसरी दिशा में जाकर बैठ

गया जहाँ से वह उन लोगों पर नजर रख सकेगा और संभवतः कोशिश करेगा कि उन लोगों की बातचीत सुन सके।

कुछ देर पहले वाली मनोदशा पूरी तरह बदल दी थी उस असमय बारिश ने। फिर से 'सुखदा तुम्हें याद है' जैसी बात कहना अब संभव नहीं था तारापद के लिए। अब मानो कुछ भी व्यक्तिगत बातें नहीं की जा सकती थीं, बातचीत सिमटकर रह जाएगी बारिश के बारे में। उस बात का निर्णय भी सुखदा ने किया। कहा, मैंने तुम्हारी सारी किताबें पढ़ी हैं। उसकी किताबें किसी ने पढ़ी हैं, लेखक के लिए इससे प्रीतिकर बात और कुछ नहीं। तारापद ने सोचा था अब सुखदा उसकी किसी खास किताब के बारे में अथवा उसके लेखन के बारे में कुछ बोलेगी। किंतु सुखदा ने कहा, इस वक्त तुम सबसे अधिक स्वीकृत लेखक हो ना? स्वीकृति का कोई संबंध नहीं रचना के गुण से, तारापद ने कहा। बहरहाल, तुम्हें कैसी लगीं मेरी रचनाएँ?

यदि मैं कहूँ कि अच्छी लगीं, तो क्या उसका कोई मतलब है? हालाँकि यह भी सच है कि यदि मुझे वे सब अच्छी न लगी होतीं तो भला मैं उन्हें पढ़ती? या फिर भी पढ़ती क्योंकि लेखक कभी मेरा सहपाठी रहा है? तुम क्या सोचते हो?

और कोई समय होता या फिर भिन्न परिस्थिति होती तो इस तरह की बात से नाराज हो जाता तारापद। लेकिन तेज बारिश की चपेट में अतीत से बाहर निकलकर इस तरह साफ-साफ कहने वाली मित्र के सामने बैठकर मानो तारापद का मन विशाल हो गया था। ऐसे समय में सिर्फ आत्म-समीक्षा ही संभव था।

तुम ठीक कहती हो। मेरी रचनाएँ कैसी लगीं, एक ऐसे औचक प्रश्न का उत्तर आखिर क्या हो सकता है 'अच्छी लगीं, जैसी अति नगण्य उक्ति के सिवाय? दरअसल यह प्रश्न ही अर्थहीन था। क्योंकि किसी की रचनाओं के बारे में कहते समय उसे किस तराजू में तौला जाए, पहले यह बात तय करनी होगी।

तुम खुद क्या सोचते हो अपनी रचनाओं के बारे में?

अब तुमने मुझे एक जटिल समस्या में डाल दिया, कहा तारापद ने। इस बारे में गंभीरता से सोचना होगा। सुखदा की ओर तारापद ने देखा, वह मुस्करा रही थी। तारापद को लगा कि उसकी सारी साहित्यिक कृतियाँ पूर्णतः लीक से हटकर हैं। उसके पुरस्कार, सम्मान, अभिनंदन, फूल की मालाएँ और तालियाँ सब झूठे हैं। एकमात्र सत्य है बाहर की बारिश और सुखदा के सामने उसका बैठे होना।

अचानक बिजली चली गई। तारापद को लगा, हाथ बढ़ाकर सुखदा को छू सकता है और जा सकता है एक ऐसे अपार्थिव लोक में जहाँ साहित्य नहीं है, मंत्रित्व नहीं है, कुछ भी नहीं है सिवाय बारिश के। अंधेरे में उसे किसी का स्पर्श महसूस हुआ। उसकी कुर्सी के पास खड़े हो दासत्व और खुशामदभरी आवाज में वेंकट बोल रहा था, मैडम, बस एक मिनट में मैं पेट्रोमैक्स का इंतजाम करता हूँ।

पेट्रोमैक्स आ गया। वेंकट फिर से बिना बुलाए आकर उनकी बातचीत सुनने लगा। और बातचीत मुड़ गई तुच्छ विषय की ओर। यह तय हो गया कि तारापद रात को खाने के बाद बारिश बंद होने पर ही वहाँ से जाएगा। जब वेंकट इसकी व्यवस्था करने चला गया, तारापद ने कहा, तुम्हारा सेक्रेटरी हम लोगों से दूर नहीं रहना चाहता। सुखदा ने कहा, मैं जानती हूँ। सेक्रेटरी लोग ईर्ष्यालु औरतों जैसे होते हैं; पग-पग पर स्वामी की रखवाली करना इनका काम है। मुझसे किसने बात की, क्या कहा, मेरे घर, परिवार में कौन क्या है, इन सब बातों की जानकारी उन्हें चाहिए।

उस बात को प्रमाणित करने जैसी घड़ी में वेंकट लौट आया, मानो उसकी अनुपस्थिति में काफी कुछ विशेष घटना घटित हो जाएगी। बोला, मैडम सारी व्यवस्था हो गई है। मंत्री को पुनः ठीक है, तुम जाओ, कहना पड़ा और उसकी ओर देखकर सुखदा एवं तारापद अंदर ही अंदर कोई गुप्त मंत्रणा करने की तरह मुस्करा रहे थे, वेंकट यह भी नहीं समझ पाया।

सुखदा ने कहा, तो हम तुम्हारी रचनाओं के बारे में बातचीत कर रहे थे। आज तुमने जो व्याख्यान दिया, वह बेहद सारगर्भित था। अनेक नई-नई बातें सीखने को मिलीं उसमें। मुझे एक और लाभ यह हुआ कि मैं उन बातों में से कुछ बातें अपनी भावी भाषणों में उपयोग कर सकती हूँ। तारापद ने कहा, तुम्हारा भाषण भी तो काफी ज्ञानवर्धक था। राजनीतिक नेताओं से ऐसे भाषण की उम्मीद नहीं की जा सकती। सुखदा मुस्कराई; बोली, ओह, मेरा भाषण! यदि तुमने पहले कभी मेरा भाषण सुना होता तो जान जाते कि ऐसी एक ही तरह की बातों में थोड़ा बहुत बदलाव करके मैं सारे साहित्यिक समारोहों में कहती रहती हूँ। मेरे पास समय ही कहाँ है किताबें पढ़कर उनका तर्जुमा करके नई-नई बातें कहने के लिए? किंतु तुम्हारी बात अलग है।

तारापद ने सोचा, कहेगा हाँ, इस एक व्याख्यान के लिए मुझे कई देशी-विदेशी किताबें पढ़कर काफी नोट्स बनाने पड़े। दूसरे माहौल में वह ऐसा झूठ बोल सकता था। किंतु सीधे-सीधे बात कर रही सहपाठी के सामने बैठकर बारिश की ओर

देखते हुए कैसे कहे ऐसा अनावश्यक झूठ? उसने कहा, तुम्हारा सोचना सही नहीं है। हम भी उसी एक व्याख्यान को बार-बार इधर-उधर करके कह देते हैं। और जहाँ तक किताबें पढ़ने की बात है, यह सच है कि हमारे पास समय काफी है, पर इतनी किताबें पढ़ेगा कौन? किसी विदेशी पत्रिका से कोई लेख पढ़कर उसके आधार पर कुछ लिख देना या सभा-समितियों में व्याख्यान दे देना ही हमारे ज्ञान का उच्चतम प्रमाण है। आज के समारोह में मैंने जो कुछ कहा, उसे शायद कोई मेरे काफी दिनों का शोध समझ सकता है। लेकिन इस व्याख्यान को तैयार करने में मैंने पाँच मिनट का समय भी नहीं लिया। कभी कुछ पढ़ा था, कभी कहीं कुछ कहा या लिखा था, यह उसी की पुनरावृत्ति थी।

सुखदा ने कहा, किंतु तुम्हारी सृजनात्मक रचनाएँ तो तुम्हारी अपनी हैं। तारापद ने सूनी निगाह से सुखदा की ओर देखा। मानो आज उसे अनावृत्त करने की ठान ली हो सुखदा ने। किंतु तारापद कैसे इतनी आसानी से ढहा दे इतने सालों से, इतनी मेहनत और साधना से गढ़ा अपना साहित्यिक प्रासाद? बारिश के पानी में कैसे बहा दे अपना सम्मान, स्वीकृति और स्वयं का संपूर्ण अवलंबन? क्यों सुखदा को झूठ कहने का बाध्य होगा या उसके आगे खड़ा होगा पूरी तरह लुट-पिटकर? अपनी आत्मरक्षा का एकमात्र उपाय था सुखदा से पलटकर प्रश्न करना। तारापद ने कहा, तुम पहले अपने बारे में बताओ।

क्या जानना चाहते हो मेरे बारे में? यदि कॉलेज के समय से जानना चाहते हो तो संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है, फाइनल इयर में विवाह के बाद पढ़ाई बंद। दस सालों तक घर-गृहस्थी में बच्चों को पाला, उसके बाद राजनीति में शामिल हो गई, विधानसभा के लिए चुनी गई और कुछ समय तक उपमंत्री रहने के बाद अब मंत्री हूँ। बाहर रहकर देखा एक सरल, सहज और सफल क्रमविकास।

मंत्री के रूप में तुम्हारा अच्छा नाम है, तारापद ने कहा।

सुखदा बोली, मैं जानती हूँ। राजनीति में बने रहने के लिए कम से कम इतनी समझ तो रखनी ही पड़ती है। अपनी क्षमता, सामर्थ्य, समर्थन जाने बिना राजनीति नहीं की जा सकती। तुम क्या सोचते हो, मुख्यमंत्री ने जब मुझे कुछ ही दिनों बाद उपमंत्री से मंत्री का पद दिया, मुझ पर दया करके दिया? मुझे मंत्रीपद देने के सिवाय उनके पास और कोई चारा नहीं था, क्योंकि उस वक्त—देखो, मैं तुम्हें अपनी दलगत राजनीति के षड़यंत्र के बारे में बताने जा रही थी!

तारापद ने कहा, हमारे समसामयिक मित्रों में तुम्हीं सबसे ऊँचे पद पर हो।

मैं देर से राजनीति में आई। मुझे जितना कुछ मिला, उसका मुझे कोई अफसोस नहीं है।

हालाँकि राजनीति में सबकुछ संभव है, पर मैं इससे अधिक पाने के लिए चेष्टा करने को तैयार नहीं हूँ।

तुम्हें तो बहुत कुछ मिला है।

हाँ, मैं यह स्वीकार करती हूँ। क्षमता, स्वीकृति, सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक सुख, आर्थिक स्वतंत्रता सब कुछ। मेरे मकान के आगे हमेशा भीड़ रहती है। लोग हमेशा मेरी कृपा के प्रार्थी होते हैं। मुझसे मिलने, मेरी बातें सुनने को उतावले रहते हैं। कई संगठन, कई योजनाएँ, कई लोग मुझ पर निर्भर करते हैं। जब मैं उन्हें देखती हूँ, सोचती हूँ, बेचारे लोग! इनकी तुलना में मैं कितनी सौभाग्यशाली हूँ। मेरे पास तो सबकुछ है।

दोनों कुछ देर चुप रहे। बिजली अब तक नहीं आई थी। बुझ-सी रही लाइट को कोई फिर से जला गया। बारिश अभी तक हो रही थी अविराम गति से। बंगले में सारा कुछ शांत और स्तब्ध था। यहाँ तक कि वेंकट भी बैठा देख रहा था बारिश की ओर। इतने में हठात् तेज हवा से बरामदे पर बारिश की बौछारें पड़ने लगीं। किसी के कुछ कहने से पहले वेंकट ने आकर पेट्रोमैक्स बारिश से बचाकर रख दिया। इस मौके पर सुखदा ने कहा, लाइट कमरे में रख दो; हम अंदर जाकर बैठेंगे। अति कुंठित रूप से वेंकट उन्हें कमरे में बिठाकर बाहर चला आया; इस बार वे लोग वेंकट के बैठे होने की जगह से पूरी तरह ओट में बैठे थे। उस ओर देखकर तारापद ने कहा, विरह उत्कंठित स्थिति में पड़ गया बेचारा।

उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया सुखदा ने। यहाँ तक कि उसके चेहरे पर जरा-सी मुस्कान भी नहीं दिखाई दी।

इस वक्त वह गंभीर थी। पिछली बात की लीक पकड़कर सुखदा बोली, फिर कभी-कभी मुझे लगता है, मैं जितना भी सोचती हूँ कि मेरे पास सबकुछ है, सब निरर्थक लगता है। क्या तुम्हें कभी ऐसा लगा है?

याद करने की कोशिश की तारापद ने। हालाँकि जानबूझकर-कभी उसने ऐसा नहीं सोचा, परंतु कभी-कभार ऐसे विचार उसके मन में न आए हों, ऐसा भी नहीं था। यह सच है कि उसने कई किताबें लिखी हैं, पर कितना स्थायी मूल्य है उन रचनाओं का? ऐसी कौन-सी मौलिक बातें हैं उसकी रचनओं में जो

समय से परे टिकी रहेंगी? भले ही कोई दूसरा यह नहीं जानता, उसकी अनेक रचनाएँ तो विदेशी रचनाओं का चतुर अनुशीलन मात्र हैं। उसकी तथाकथित बौद्धिक रचनाएँ तो अल्पज्ञात मनीषियों की रचनाओं का सारानुवाद है। उसकी सारी कृतियाँ विभिन्न स्रोतों से एकत्र की गई छोटी-छोटी कतरनें हैं जो गोंद से जुड़े नवगुंजर हैं। उसके पाठक और आलोचक इस बात से अनजान हैं। किंतु वह खुद ही से कैसे नकार सकता है अपनी कारगुजारी? और यदि वह इस वक्त इसे स्वीकार न करे, और कभी ऐसा अवसर आ जाए अपने सत्य को अंगीकार करने का? फिर भी उसे साहस नहीं हुआ अपनी कमजोरी जाहिर करने का! सुखदा की बात का जवाब न देकर तारापद ने पलटकर सुखदा से ही सवाल कर दिया, तुम्हें कभी-कभी ऐसा क्यों लगता है कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है?

इस बात का जवाब बहुत आसान है, सुखदा बोली। वास्तव में सच यही है कि मेरा कुछ भी नहीं, पर मैं झूठ ही सोच रही हूँ कि सबकुछ मेरा है। क्या मैंने चाही थी ऐसी जिंदगी? कोई नहीं जानता कि मैं राजनीति में कैसे और क्यों आई। उस वक्त मेरे पति नौकरी करते थे और उनकी नौकरी में तरह-तरह की समस्याएँ आया करती थीं। उन्होंने तय किया कि यदि मैं उन दिनों क्षमता में रहने वाले राजनीतिज्ञों तक अपनी पहुँच बना लूँ तो उन्हें नौकरी करने में सुविधा होगी। मेरी जरा भी इच्छा नहीं थी इसमें। मेरी उम्र भी कम थी। राजनीति के नेताओं को मैंने जितना देखा था, जानती थी वे लोग क्या चाहते हैं। फिर भी अपने पति के उकसाने से मुझे दौड़ना पड़ा उनके पीछे। धीरे-धीरे मुझे अच्छे-बुरे का अनुभव हुआ, आत्मविश्वास बढ़ा, मैं समझ गई कि किसे कितना पास आने दिया जा सकता है और कैसे किसी को दूर रखा जा सकता है, किस चीज के लिए खुद को किस हद तक समर्पित किया जा सकता है इत्यादि। यह सब मेरे लिए एक खेल जैसा था और मुझे इसका चस्का लग गया। राजनीतिक पदों पर धीरे-धीरे मेरी उन्नति होने लगी। अंत में ऐसी स्थिति आई कि मेरे पति, जिन्होंने जबरन मुझे राजनीति में धकेला था, उन्हें मेरा राजनीति करना पसंद नहीं आया और जिस नौकरी की वजह से यह सब करना पड़ा, वह नौकरी भी उन्होंने छोड़ दी। क्या सीख मिली इस बात से?

कुछ देर चुप रहने के बाद खुद ही अपने सवाल का जवाब दिया सुखदा ने। मैं चाहूँ या न चाहूँ, सुखदा ने कहा, मेरी जिंदगी जिस तरह इतने मोड़ से होकर आज इस स्थिति में पहुँची है, वह मेरी ही जिंदगी है और इसे मुझे ही जीना

होगा। मैंने ऐसी जिंदगी नहीं चाही थी, अब यह कहने से क्या लाभ? मैंने जैसी जिंदगी चाही थी, वैसी जिंदगी मुझे मिली होती, उसकी भी कौन-सी प्रतिश्रुति थी? दूसरी ओर, क्या मैं निर्दिष्ट रूप से जानती थी कि तब मुझे किस तरह की जिंदगी की जरूरत थी? अब अतीत के बारे में सोचना आसान है, किंतु क्या तब मैं भविष्य के बारे में ऐसी बातें सोच सकती थी?

उसकी बातें सुनते हुए तारापद ने सोचा कि वह भी अपनी उपलब्धियों और अनुपलब्धियों की बातें सुखदा को कहकर अपने मन का बोझ हल्का कर लेगा; खोलकर रख देगा इतने दिनों से उसके मन के भीतर उलझे हुए धागे का गुच्छा। उसने सुखदा की ओर देखा। उसका चेहरा देखकर लगा, मानो सुखदा किसी और दुनिया में थी और इतनी सारी बातें जो उसने तारापद को अपने बारे में बताई थीं, वे तारापद के लिए नहीं थीं, वे थीं खुद अपने लिए अपनी स्वागतोक्ति। अब तारापद की आँखों की ओर देखकर सुखदा ने उसे पहचाना, कुछ मुस्कराई और बोली, अब तुम अपनी स्वीकारोक्ति सुनाओ। अपनी बात कैसे शुरू करे तारापद यह सोच ही रहा था कि बिजली आ गई। इतनी देर से उज्वल प्रकाश फैलाने वाला पेट्रोमैक्स हठात् बुझकर चला गया हमारी निगाह की ओट में। उनकी दृष्टि और चेतना से अदृश्य हो चुके डाकबंगले का कमरा, बरामदा, लोगबाग, वेंकट स्वामी पुनः मूर्त्त हो उठे अपनी अपनी जगह। तारापद बिना कुछ बोले चुप रहा और वेंकट ने आकर घोषणा की कि खाना तैयार है।

भोजन था अति औपचारिक, प्रीतिकर और वेंकट की उपस्थिति के कारण आमोददायक भी : सुखदा का व्यवहार अति सहज और मंत्रीसुलभ। कोई आभास नहीं था उसकी बातचीत व भावभंगिमा में कुछ देर पहले हुई व्यक्तिगत, भावपूर्ण, मार्मिक वृतांत का। तारापद ने सोचा, खाने के बाद फिर से डाकबंगले के एकांत बरामदे में वह और सुखदा पुनः लौट जाएंगे आधी बची बातचीत के गंभीरतम केंद्र में एवं तारापद खुद को मुक्त कर लेगा साल-दर-साल से किसी को न कह पा रहे अंतरंग चिंता के उत्पीड़न से। लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं। खाना खाकर बाहर बरामदे में आने तक बारिश पूरी तरह थम चुकी थी। धुँधली चाँदनी बिखरी हुई थी। ड्राइवर गाड़ी में बैठा इंतजार कर रहा था। वेंकट अपनी नोटबुक पढ़कर मंत्री जी को सुना रहा था, कल सुबह के क्या-क्या आवश्यक कार्यक्रम हैं।

सुखदा से बिदा लेकर तारापद गाड़ी में जाकर बैठ गया। ढेरों बातें अनकही रह गईं तारापद की। विदाई कुछ और व्यक्तिगत हुई होती तो उसे खुशी होती। मानो सारा कुछ अधूरा रह गया आज। गाड़ी ठीक हो गई थी और खा-पी लेने

के बाद ड्राइवर खुशमिजाज लग रहा था। उसने तारापद से बातचीत करने के उद्देश्य से कहना शुरू किया, सर, अब गाड़ी फर्स्टक्लास चलेगी। ड्राइवर को प्रश्रय न देते हुए तारापद चुप रहा, और शाम की घटनाओं को याद करने में खुद को मग्न कर लिया। सुखदा के साथ आज की आकस्मिक मुलाकात वायदों भरी थी। तारापद उससे जल्द ही मिलने की व्यवस्था करेगा और दूसरी बार मुलाकात होने पर एक-दूसरे के रिश्ते में रोमांस का ठोस संकेत देने की चेष्टा करेगा। उसने अपनी कल्पना को और भी अनियंत्रित रूप से पसरने दिया। उसका और सुखदा का रोमांचक रिश्ता इस वक्त शहर का नवीनतम अपवाद था। एक जाने-माने लेखक और मंत्री को लेकर हो रही निंदा तारापद को विशेष अप्रिय नहीं लगी। लेकिन अगले ही पल तारापद को लगा कि ऐसा कुछ भी घटित नहीं होगा। अब उसकी मुलाकात नहीं होगी सुखदा से, जैसे कि नहीं हुई थीं इतने सालों तक। और यदि दस साल बाद पुनः मुलाकात हो भी गई इसी तरह के किसी संस्थान में, तब तक दोनों और दस साल वयस्क होकर जरावस्था में पहुँच चुके होंगे। उस वक्त संभवतः उसकी गाड़ी खराब भी नहीं होगी। आसपास डाकबंगला नहीं होगा, मौसम सही होगा और कोई दूसरा जिज्ञासु स्वभाव का वेंकट स्वामी होगा। ऐसे अटपटे विचारों को तारापद ने जानबूझकर अपने मन से निकाल दिया और सोने की चेष्टा करते हुए अपना ध्यान साहित्यिक उपलब्धियों पर लगाया। उसकी आँखों के आगे वे सारे पुरस्कार उभरने लगे जो अभी तक उसे नहीं मिले थे। वह जिस श्रेष्ठतम पुस्तक की रचना करना चाहता था, उसका संयोजन उसे याद आ गया। उसने सोच लिया था कि उसकी षष्टिपूर्ति पर जो अभिनंदन-ग्रंथ प्रकाशित होगा, वह कैसा होगा। इन सारी बातों के साथ उसे याद आ गए साहित्य-जगत के उसके प्रतिबद्ध दुश्मन। उसने देखा कि किसी चतुर आलोचक ने पूरी निष्ठा के साथ उसकी सारी साहित्यिक चोरी का विवरण छाप दिया है और वह एक गण्यमान्य साहित्यकार की श्रेणी से खिसककर आ गया है एक तुच्छ सामान्य लेखक के स्तर पर। मानो किसी ने उसे एक ऊँचे मंच से खींचकर फेंक दिया हो नीचे कचरे में।

ऐसी अप्रीतिकर बात सोचते समय खुद को खुद ही अनुशासित किया तारापद ने और एक ऐसे छोटे से ग्रामीण कॉलेज में भाषण देने आए होने के कारण खुद ही को कोसा उसने। उसने निश्चय किया, जबकि वह जानता था कि उसका वह निश्चय क्षणिक है, कि वह फिर कभी ऐसे निमंत्रण स्वीकार नहीं करेगा। अब उसने खुद को ऊबड़-खाबड़ सड़क पर हिचकोले खाती गाड़ी को सौंप दिया था।

जाना अनजाना

एक इंसान का दूसरे इंसान को जितना समझना संभव है, उनके बीच आपस में उतनी समझ थी और इस बारे में कभी कोई संदेह नहीं रहा रमानाथ को। उसकी या सीमा के जीवन की कोई ऐसी घटना नहीं थी जो उनसे अनजान थी। मानो दोनों ने खुद को पूरी तरह खोलकर रख दिया था एक दूसरे के समक्ष; एक-दूसरे के स्वच्छ मन में झाँककर आसानी से सारी गोपनीय बातें जान लेते थे।

इसमें हालाँकि कभी-कभी नुकसान होता था रमानाथ का ही। गाहे-बगाहे दोस्तों के साथ बैठकी करके देर से घर लौटने पर झूठा स्पष्टीकरण देते समय वह आसानी से पकड़ में आ जाता था। दफ्तर के किस काम में व्यस्त रहकर ठीक कितना समय अधिक बैठा रहा इत्यादि अनेक मनगढ़ंत बातें सोचकर आने के बावजूद सीमा उसकी आँखों में झाँककर उसके सारे बहाने पकड़ लेती थी और वह किन-किन मित्रों के साथ, कहाँ-कहाँ क्या-क्या कर रहा था, उसका खुलासा करके रमानाथ को संकट में डाल देती थी।

कभी-कभी ऐसी परिस्थिति में रमानाथ को लगता था कि शायद सीमा में कोई अलौकिक शक्ति है। ऐसा उसने विवाह के कुछ दिनों बाद ही महसूस किया था। एक बार जब सीमा शयन-कक्ष की खिड़की से बाहर की ओर देखते हुए बैठी थी, रमानाथ दबे पैरों से अंदर घुसा उसे पीछे से पकड़ने के लिए। जैसे ही वह सीमा के करीब पहुँचा, सीमा ने कहा, क्या कुछ चाहिए? यह उसने अनायास ही कहा, मानो सीमा के सामने खुली खिड़की न होकर दर्पण हो। उस बात से रमानाथ चौंक गया था और कुछ भयभीत भी हुआ था।

फिर एक बार उनके घर दूर के कोई रिश्तेदार आए थे। उन्होंने डोरिया की जो कमीज पहनी थी, उसे देखकर रमानाथ को याद आया कि काफी साल पहले उसके पास भी इसी कपड़े की एक कमीज थी। उसे वह कपड़ा दिया था उन दिनों पाँच साल विलायत में रहकर लौटे एक मामा ने। उसकी वह कमीज काफी

पहले फट चुकी थी, किंतु इस सज्जन की कमीज नई थी। इसका मतलब, उसके मामा जरूर सस्ते दर के इस डोरिया के कपड़े का थान लेकर आए थे और इतने सालों तक उसमें से एक-एक टुकड़ा काटकर अपने बंधु-बांधवों को उपहार दिया था। मन में ऐसे विचार आते ही उसके चेहरे पर जरा-सी मुस्कराहट पसर गई थी। उसी वक्त सीमा की ओर देखा कि वह भी अपनी मुस्कान छुपाने की चेष्टा कर रही थी। सीमा के मन में भी ठीक उसी समय जरूर वह भाव उभरा होगा।

किसी लेखक ने कभी कहा था कि एक-दूसरे को पूरी तरह समझ लेना ही प्रेम की परिभाषा है। रमानाथ जानता था कि इस परिभाषा के अनुरूप सीमा और उसके बीच एक अखंड परिपूर्ण प्रेम था। जिस चीज को समझाने के लिए समय और भाषा की जरूरत होती थी, वे एक-दूसरे की ओर क्षण भर देखते ही उस बात को समझ जाते थे। खाने के टेबुल पर बैठकर एक चम्मच तरकारी मुँह में डालकर जब वह सीमा की ओर देखता था, उसके अनकहे प्रश्न का उत्तर देते हुए सीमा कहती, हाँ तरकारी में आज टमाटर नहीं पड़ा है। यूरिक एसिड बढ़ने की वजह से डॉक्टर ने टमाटर खाने को मना किया है।

पारंपरिक विवाह के बारे में कोई अच्छा-बुरा कुछ भी क्यों न कहे, रमानाथ के जीवन में सीमा आई थी एक वरदान की तरह। पहली बार उसे देखते ही वह उसके प्यार में पड़ गया था और जब वह यह बात सोचा करता था, तब इस निष्कर्ष में पहुँचता था कि यदि वह कभी स्वेच्छा से किसी से प्यार करके विवाह करता, तो सीमा से ही करता, और किसी से नहीं। हालाँकि कभी-कभी उसका मन भटककर किसी अन्य औरत के बारे में सोचा करता कि वह उसकी जीवन संगिनी होती तो कैसा होता। ऐसा सोचते ही उसके मन में सहसा एक अनजानपुलक उठने लगता, लेकिन जब वह उस औरत के हाव-भाव, स्वभाव, बातचीत इत्यादि पर ध्यान देता तो समझ जाता कि ऐसी औरत के साथ एक सप्ताह से ज्यादा गृहस्थी बसाना असंभव है। मन से पाप की चिंता दूर करके वह संकल्प करता था कि मन में ऐसी मानसिक परकीया को वह फिर कभी प्रश्रय नहीं देगा। सीमा और एकमात्र सीमा ही उसके जीवन-मरण, जन्म-जन्मांतर की संगिनी है। वह क्षमा याचना की दृष्टि से सीमा की ओर देखा करता था, क्योंकि उसे भय होता था कि शायद सीमा इस बीच उसका दुराग्रह समझ गई है।

यह बात हालाँकि सच है कि रमानाथ ही अपने जीवन की हर छोटी-बड़ी बात सीमा को विस्तार से बताया करता था। इसकी एक वजह यह भी हो सकती है

कि उसका और कोई नजदीकी मित्र नहीं था। रास्ते में, ऑफिस में, सहकर्मियों के बीच पूरे दिन जो-जो कुछ घटित होता था, उसका आँखों देखा विस्तृत विवरण वह रोजाना शाम को सीमा को सुनाया करता था। उसके अनेक मित्रों को न देखे होने के बावजूद सीमा उनके बारे में पूरी तरह जानती थी। एक दिन रमानाथ ने कहा, स्टाफ मीटिंग में मैनेजर सबको गाली-गलौज किया करते थे; आज उन्हें जैसा को तैसा मिल गया। सीमा ने कहा, तुममें किसी में तो साहस है नहीं, सुबोध बाबू ने ही उन्हें खरी-खोटी सुनाई होगी। जबकि सीमा ने ना तो मैनेजर, ना ही सुबोध बाबू को देखा था, पर बात सच थी। और एक बार रमानाथ को कहीं से एक पोस्टकार्ड मिला था : मेरा मँझला बेटा आदिकंद इंटरव्यू देने जा रहा है। वह तुमसे मिलेगा। तुम अवश्य उसकी यथासंभव सहायता करना। इस वक्त मैं बहुत व्यस्त हूँ। इति, तुम्हारा बालसखा, बूबूना। चिट्ठी पर सिर्फ रघुनाथपुर ही लिखा था। उस चिट्ठी को उलट-पलटकर देखते हुए कितनी ही कोशिश करने पर भी उसे बूबूना याद नहीं आया। किंतु सीमा ने क्षण में समस्या का समाधान कर दिया, ये जरूर तुम्हारे वे चैतन्यबाबू हैं। तुमने बताया था ना कि नौकरी छोड़कर गाँव में रहने लगे हैं, यह उन्हीं का बेटा होगा। वह बात शायद उससे बहुत दिन पहले रमानाथ ने कही होगी, क्योंकि इस वक्त उसे जरा भी याद नहीं आ रहा था, यह बूबूना उर्फ चैतन्यबाबू कब और कहाँ उसके बालसखा थे। उस बारे में चर्चा न करके रमानाथ ने पूछा, तुम्हें कैसे मालूम कि उनका नाम बूबूना है? सीमा ने कहा, चार-पाँच साल पहले एक और लड़का मिलने आया था मकरंद नाम का, यह जरूर उसी का छोटा भाई है।

उस दिन ऑफिस जाने को बरामदे में पैर रखा ही था कि सीमा आकर उसके सामने खड़ी हो गई, बोली, मैं कहे देती हूँ, तुम आज किसी भी समय अपने मैनेजर के पास मत जाना। रमानाथ चौंक उठा यह सुनकर। दो दिन पहले मैनेजर से उसकी कहा सुनी हो गई थी, लेकिन यह बात रमानाथ ने सीमा को नहीं बताई थी। कल काफी सोचने-विचारने के बाद उसने तय किया था कि आज किसी भी तरह हो मैनेजर के पास जाकर उसे अच्छी तरह सुनाकर आएगा। उसने यह बात सीमा से छुपा रखी थी, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। हालाँकि वह फिर मैनेजर के पास नहीं गया, लेकिन उस दिन दुपहरी में गया था अपने पास वाले कमरे में बैठने वाले सज्जन के पास। बिहारी लाल बाबू शांतशिष्ट गंभीर स्वभाव के थे और पढ़े-लिखे समझे जाते थे। कुछ ऊँच-नीच होने पर रमानाथ

उन्हीं के पास जाता था, क्योंकि दूसरे लोग हर बात को छोटा समझकर हवा में उड़ा देते थे, जबकि बिहारी लाल धैर्य रखकर ध्यान से सारी बातें सुनते थे और सूझ-बूझ भरा सुझाव देते थे। रमानाथ ने जब उनसे उस दिन की घटना बताई, बिहारी लाल ने कहा, आप तो मैनेजर को अच्छी तरह जानते हैं। दो दिनों बाद फिर से...। रमानाथ ने कहा, नहीं, मैं मैनेजर की बात से परेशान नहीं हूँ, उनके साथ तो इस तरह लगा ही रहेगा। मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी पत्नी को इस बात का पता कैसे चल जाता है।

अच्छा, आप उस बारे में पूछ रहे हैं? लंबे समय तक पति-पत्नी एक साथ रहने पर एक-दूसरे की इतनी बातें जान लेते हैं कि मुँह खोलकर कहने की जरूरत नहीं पड़ती। मानो दोनों का देह-मन एक हो जाता है। कई जगहों पर यह भी देखा गया है कि अंत में पति-पत्नी एक जैसे दिख रहे हैं।

यह कैसे संभव है, पूछा रमानाथ ने। बिहारी लाल ने कहा, आपकी गली के छोर पर जो महांतिबाबू रहते हैं, आप उन्हें कितने सालों से जानते हैं?

वाकई! बूढ़ा-बूढ़ी आज कल भाई-बहन जैसे लगते हैं। पहले महांतिबाबू रोगहा और पतले थे, उनकी पत्नी मोटी। महांतिबाबू के शरीर में माँस चढ़ने और उनकी पत्नी दुबली हो जाने पर दोनों समान दिखने लगे हैं। इसके अलावा आजकल दोनों एक-दूसरे की बातचीत की शैली का अनुकरण करते हुए एक जैसा व्यवहार भी करते हैं। इस वक्त दोनों का एक-मन एक जैसा शरीर है। ठीक ही कहते हैं बिहारीलाल। नसीब में हुआ तो रमानाथ और सीमा भी इस महांति-दंपत्ति की तरह ही हो जाएँगे एक दिन।

लेकिन यह सौभाग्य नहीं मिला। सिर्फ उनचास साल की उम्र में सीमा उसे छोड़कर चली गई। रमानाथ को लगा कि सीमा को यह मालूम था और उसने यह बात उससे छिपाकर रखी थी। और सारी बातें जान जाने की तरह सीमा को इस सबसे मूल्यवान बात की कोई भनक नहीं मिली थी। बाद में अनेक छोटी-छोटी घटनाएँ याद करने पर रमानाथ को अब कोई संदेह नहीं रह गया था सीमा के अंतर्धान होने को लेकर। मरने से पहले सारा कुछ व्यवस्थित कर गई थी सीमा। हालाँकि उसकी मौत अप्रत्याशित थी, पर वह कोई भी चीज अधूरी नहीं छोड़ गई थी। उसकी अपनी चीजें, बेटे का विवाह, किसे क्या देना है, किससे क्या मिलना है, छोटी-बड़ी सारी चीजों की व्यवस्था और समाधान कर गई थी वह। रमानाथ को कोई चिंता नहीं करनी पड़ी घर चलाने में सीमा की अनुपस्थिति में।

रमानाथ को याद आया कि एक बार किसी बात को लेकर अचानक सीमा ने कहा था, मैं कभी विधवा नहीं होऊँगी। उसने यह बात इतने गर्व और आत्मविश्वास से कहा था कि रमानाथ विचलित हो उठा। क्या हो सकता है इस बात का अर्थ? उसने डरते-डरते पूछा, इसका मतलब? सीमा ने कहा, इसका मतलब यह हुआ कि मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर सुहागन मरूँगी। रमानाथ यह बात भूल चुका था, लेकिन विपत्ति आई ठीक सीमा के कहे अनुसार। किसी दिन भी बीमार न पड़ी सीमा को तेज बुखार की वजह से अस्पताल ले जाना पड़ा। वहाँ भी उसकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। ढेरों जाँच करने के बावजूद डॉक्टर नहीं बता पाए कि उसे क्या बीमारी है। बहरहाल, बुखार कम न होने पर भी सीमा अक्सर खुद को खुश रखा करती थी और रमानाथ घबराने पर उसे आश्वासन देती थी। अस्पताल के बिस्तर पर लेटे हुए भी सीमा घर का पूरा हालचाल पूछा करती थी। रमानाथ दफ्तर से छुट्टी लेकर अधिकतर समय उसके पास रहता था, लेकिन जब उसने बेटे को बुलाने के बारे में उससे पूछा, सीमा ने मना कर दिया। बोली, उसे क्यों परेशान करोगे? वह क्यों नौकरी से छुट्टी लेकर इतनी दूर आएगा इतना खर्च करके?

दिन भर इधर-उधर दौड़-धूप करके रमानाथ थककर सो गया था सीमा के बेड के पास रखी कुर्सी पर। रात काफी बीत चुकी थी, नर्स दवा खिलाने आई थी। बत्ती जलाते ही उसकी नींद खुल गई। रमानाथ ने देखा, बाहर बारिश हो रही थी। सीमा बेड पर अति अनियमित रूप से साँस ले रही थी उस वक्त। नर्स ने सीमा के माथे पर हाथ रखकर देखा, रमानाथ को बोली, आप जरा इन्हें पकड़ लीजिए, दवा खिलानी है। रमानाथ कुर्सी से उठकर सीमा के करीब गया; बेड पर बैठकर उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। नर्स ने जब दवा खिलाने के लिए सीमा के मुँह में पानी का गिलास लगाया, सीमा के मुँह से हिचकी निकली। गिलास रखकर नर्स बाहर की ओर दौड़ी डॉक्टर को बुलाने। ऐसे में क्या करे, समझ न पाकर रमानाथ ने सीमा का सिर ठीक से संभालकर अपनी गोद में रखा और खिड़की से बाहर देखने लगा। बारिश तेज हो गई थी। कमरे में ठंडी हवा का एक झोंका आया। रमानाथ ने कलाई घड़ी की ओर देखा, रात के ठीक दो बजे थे।

रात के इस दो बजे के बारे में भी सीमा ने कभी कुछ कहा था रमानाथ को, लेकिन इस वक्त वह बात ठीक से याद नहीं थी उसे। शायद उसने कहा हो कि उसकी मृत्यु होगी ठीक इसी समय। सीमा के मरने के बाद उसकी कमी

स्वीकारने में काफी वक्त लग गया था रमानाथ को। पहले उसे लगा था कि सीमा के बगैर जीने का क्या लाभ? हर वक्त उसे याद आती सीमा की बातें, जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ, कब उससे क्या कहा था, कब उन लोगों ने क्या किया था। धीरे-धीरे सीमा की जुदाई भी अभ्यास में तब्दील हो गई। रोजमर्रा की जिंदगी ने उसे घेर लिया।

नौकरी से सेवामुक्त होने के बाद जब और कोई काम नहीं रहा, सीमा ने पुनः आकर रमानाथ के खाली समय पर कब्जा जमा लिया। मानो सीमा उससे कह रही हो, इतने दिनों तक मुझे चकमा देते रहे, पर अब कहाँ जाओगे? या जब कभी वह डॉक्टर द्वारा मना की गई चीजें खाने को होता, सीमा कहती, खबरदार! उसमें हाथ मत लगाना। आज कल रमानाथ को ठीक से नींद नहीं आती, आधी रात को बार-बार नींद खुद जाती है उसकी। फिर नहीं आती है नींद। एक दिन रात को नींद खुल जाने पर उसने उठकर देखा कि बाहर भीषण बारिश हो रही थी। उसने जाकर खिड़की बंद कर दी, और सोने से पहले घड़ी देखी, दो बजे थे। भय की एक शीत लहर संचरित हो गई उसकी पूरी देह में अस्ति पंजर और शिरा-प्रशिराओं से होकर।

रमानाथ ने तय किया कि अब वह सीमा के कपड़े और साड़ियाँ किसी और को दे देगा। अब तक उसने सीमा की चीजों को छुआ नहीं था। शायद उसके मन में एक ऐसा असंगत भाव था कि सीमा हठात किसी दिन घर लौटकर इन चीजों का उपयोग फिर से करेगी। समय बीतने के साथ रमानाथ ने उस बात से भी समझौता कर लिया और अलमारी खोलकर सीमा की चीजें उलटने पलटने लगा। उसके अन्य कामों की तरह अलमारी के अंदर सीमा के कपड़े भी करीने से रखे थे। उन्हें उठा-उठाकर देखते समय रमानाथ के मन में फिर से पुरानी बातें आकर उसे अस्त-व्यस्त करने लगीं। अपने मन को दृढ़ करके एक ताक की साड़ियाँ बाहर निकालते समय उसमें से एक लिफाफा नीचे गिर पड़ा।

लिफाफे पर किसी का नाम नहीं लिखा था और वह बंद था। उसे हाथ में लेकर कुछ देर बैठा रहा रमानाथ। कोई गैर जरूरी कागज या चिट्ठी-पत्री नहीं रखा करती थी सीमा। मरने से कुछ दिन पहले उसने अपने सारे पुराने कागजात खोलकर फाड़ दिए थे। इस लिफाफे के रह जाने का मतलब शायद सीमा इसे भूल गई है, या फिर उसने इसे फाड़कर फेंकना नहीं चाहा। इस लिफाफे ने रमानाथ को चिंता में डाल दिया। एक बार उसे लगा कि उसको खोलने का उसे

कोई अधिकारी नहीं है, खासकर तब, जब सीमा ने उसे जानबूझकर बंद रखा है। किंतु अंत में उसका कौतूहल जीत गया और उसने चाकू से उस लिफाफे को खोल दिया। अंदर कागज में सिर्फ दो पंक्तियाँ लिखी थीं : मैं गुरुवार को साढ़े तीन बजे नहीं, चार बजे पहुँचूँगा, उसी जगह। उसके बाद तीन क्रॉस के निशान के करीब सिर्फ 'सु' लिखा था। उसे पढ़ने के बाद उसके सीने में जो आवेग उठ रहे थे उन्हें नियंत्रित करके रमानाथ ने फोटो देखे। उस श्वेत-श्याम हर फोटो में पाँच लड़कियाँ थीं सीमा को मिलाकर। सबकी उम्र बीस-बाईस के लगभग होगी और सबने साड़ी पहन रखी थी। एक फोटो में पाँचों कैमरे की ओर देखकर मुस्करा रही थीं। एक दूसरे फोटो में वे लोग वृत्ताकार में बैठे थे। तीसरे फोटो में एक-दूसरे का हाथ पकड़कर बीच में रखे किसी चीज की ओर देख रही थीं; लेकिन उस फोटो में वह चीज साफ-साफ दिखाई नहीं दे रही थी।

कपड़े निकालकर अलग रखने का काम छोड़कर रमानाथ उठकर खड़ा हो गया। अलमारी बंद करके लिफाफा हाथ में लेकर वह अपने टेबुल के पास गया और फिर से नीले कागज के उस टुकड़े को ध्यान से देखने लगा। लिखावट सुंदर थी। ये अक्षर किसी लड़की के हो सकते हैं, लड़के के भी। नीले कागज का पैड जरूर किसी ने शौक़ से खरीदा होगा; लेकिन प्रेमपत्र न लिखना होता तो कोई क्यों खरीदेगा ऐसा कागज? हालाँकि कॉलेज में पढ़ने वाली लड़कियाँ भी उन दिनों अपनी सहेलियों को ऐसे कागज में चिट्ठियाँ लिखा करती थीं। इस बार रमानाथ ने उस कागज के नीले रंग की सघनता पर ध्यान दिया। गाढ़ा नीला रंग होता तो वह उसे अपरिपक्व उम्र की अनभ्यस्त पसंद मान लेता। लेकिन वह था हल्का उज्वल नीला जो कि आदर और अनुराग का रंग था। छोटे से कागज के टुकड़े में ही उभर आया था एक अप्रतिहत अनुभव का पल्लवित संदेश। रमानाथ की नजर चली गई फोटो की ओर। सीमा अद्भुत सुंदर लग रही थी फोटो में; उसकी सारी सहेलियों में अलग से पहचानी जा रही थी वह। विवाह के समय ठीक ऐसी ही दिखती थी सीमा। सीमा के उन दिनों के फोटो का एक अलग एलबम था। रमानाथ ने तय किया कि वे तीनों फोटो वह उसी एलबम में लगा देगा।

लेकिन उस चिट्ठी की दो पंक्तियों को लेकर वह चिंतित था। कौन हो सकता है यह 'सु'? जो 'कु' नहीं है? सुजाता, सुनीता, सुखदा, सुनंदा, या सुलता? सुजला, सुफला, सुहासिनी? या हो सकता है सुबोध, सुनंद, सुरेश, सुविमल, सुदर्शन। 'सु' अक्षर से पुरुषों के अधिक नाम मिलना मुश्किल है। पूरा नाम न लिखने का

मकसद क्या हो सकता है? घनिष्ठता का दावा या जासूसी नजरों को धोखा देने का सहज उपाय? यदि उसने कागज के इस टुकड़े को सीमा की अन्य चिट्ठियों के बीच देखा होता तो कोई भी असंगत विचार नहीं उपजा होता उसके मन में। लेकिन लिफाफे में बंद करके करीने से सुरक्षित रखे इन संक्षिप्त पंक्तियों ने उसे असमंजस में डाल दिया था। यह चिट्ठी निश्चित ही सीमा के लिए थी। यदि यह काफी दिन पहले की लिखी हुई है, सीमा ने आज तक इसे संभाल कर क्यों रखा था? उस कागज को हाथ में लेकर रमानाथ ने उसकी उम्र का अंदाजा लगाने की चेष्टा की। अच्छा कागज होने के कारण नया जैसा था, देखने पर किसी को लगेगा कि यह चिट्ठी बस अभी ही लिखी गई है। तो क्या यह संभव है कि सीमा को किसी ने यह हाल ही में लिखी थी, सीमा को परिपक्व उम्र में? बेटा बड़ा होकर बाहर चले जाने के बाद जब वह ऑफिस के लिए निकल जाया करता था, तब क्या करती थी सीमा घर पर अकेले रहकर इतने समय तक? उनके दफ्तर का सुबोध काफी बदनाम था लड़कियों के मामले में। यह नाम भी 'सु' से शुरू होता है। लेकिन सुबोध की लिखावट याद नहीं आई रमानाथ को।

छिः छिः, यह सब क्या सोच रहा है वह। क्या यह संभव नहीं कि सीमा की किसी सहेली ने लिखी हो साड़ी की दुकान पर मिलने को? सीमा की सहेलियों के नाम याद करने की कोशिश की रमानाथ ने, लेकिन 'सु' अक्षर से शुरू होनेवाला कोई नाम याद नहीं आया उसे। साढ़े तीन से चार का मतलब रमानाथ के ऑ. फिस में होने का समय है। सबसे सुरक्षित समय है यह। यूरोप में इस समय की परकीया प्रीति को कहते हैं लव इन द आफ्टरनून। किंतु कोई अशोभनीयता तो नहीं थी चिट्ठी में। एक सीधी-साधी बात थी। तो फिर तीन क्रॉस का मतलब क्या है? पहले से तय तीन प्रीति संभाषण, या तीन चुंबन, या तीन और कुछ। फिर से रमानाथ का शक्की दिमाग चला जा रहा है कुरुचिपूर्ण निर्णय की ओर। वह सीमा को देख रहा है, सज-धज कर खड़ी है साड़ी की दुकान के आगे किसी के इंतजार की मुद्रा में।

रमानाथ ने तय किया कि अब से वह उस चिट्ठी के बारे में नहीं सोचेगा। वह खा-पीकर सोने चला गया, लेकिन उसकी आँखों में नींद नहीं थी। उसकी आँखों के आगे उस नीले कागज के अक्षर बड़े-बड़े होकर दिखाई देने लगे। और भी दुश्चिंताएँ समाने लगी मन में। एक बार उसके चार दिनों के लिए घर से बाहर रहने के दौरान सीमा ने कैसे-कैसे बुरे कार्य किए होंगे। उसकी एक

काल्पनिक सूची बनाई रमानाथ ने। काफी दिनों पहले की अतिनगण्य घटनाएँ याद कर-करके सीमा के चरित्र संहार के उपादान उपलब्ध करा दिए उन्हें। एक बार अतिथियों के बीच बैठे होने के समय सीमा की छाती से उसका पल्लू सरक गया था। एक बार उसने जबर्दस्ती सीमा से अश्लील शब्द कहलवाए थे और जब बाद में उससे पूछा कि उसने ये शब्द कहाँ से सीखे, सीमा ने सिर्फ मुस्करा दिया था। विवाह के शुरुआती दिनों में जब वह उससे पूछा करता था कि पहले वह किसी को चाहती थी क्या, उसका सीधे-सीधे जवाब न देकर सीमा कहा करती थी, छिः, ऐसी बुरी बातें मुँह में क्यों ले रहे हैं?

उनींदी रात बिताने के बाद सुबह उसने सोचा कि बिहारी लाल बाबू से जाकर उस बारे में पूछेगा। पर क्या कहेगा उनसे? चिट्ठी दिखाकर पूछेगा, मेरी स्वर्गीय पत्नी का प्रेमी कौन हो सकता है? या पूछेगा, आपने सीमा के बारे में कभी कोई अफवाह सुनी है क्या? बिहारी लाल अति सज्जन व्यक्ति हैं। भले ही वे इस बारे में कुछ जानते होंगे, कहेंगे, क्या आप पागल हो गए हैं? देवी जैसी पत्नी के बारे में यह सब कुछ पूछ रहे हैं। नहीं, बिहारी लाल के पास जाने का सवाल ही नहीं उठता। उसने सोचा, यदि सीमा कुछ देर के लिए उसके पास लौट आती, उसी से वह पूछ लेता उस चिट्ठी का रहस्य। किंतु क्या वह सचमुच पूछ पाता? क्या वह उससे नहीं पूछ पाया था कि उसने वे अश्लील शब्द किससे सीखे थे? शायद सीमा ने उसे एक इतना सरल उत्तर दिया होता जिस पर वह विश्वास करने को बाध्य हुआ होता। बल्कि इस छोटी-सी बात के लिए उसे संदेह भरी निगाह से देखने के कारण सीमा रमानाथ के मन में कोई दोष भरने का लांछन लगा देती।

दिन प्रति दिन रमानाथ इसी चिंता में डूबा रहता। शुरू-शुरू में कभी-कभी उसे लगता था कि वह पत्र सीमा को उसकी किसी शरारती सहेली ने लिखा होगा। फिर धीरे-धीरे उसने ऐसा सोचना बंद करके सीमा को दोषमुक्त नहीं किया, बल्कि उसके अपराध के विषय में उसे कोई संदेह नहीं रह गया। जीवनभर प्रताड़ित होने के दुख और अपमान से उसका मन विचलित रहने लगा।

ऐसी मनःस्थिति में एक और घटना घटित हो गई जिससे उसका मानसिक संतुलन बिगड़ने की हालत पैदा हो गई। एक दिन उसने किसी पत्रिका में आधुनिक डायन-संप्रदाय के बारे में लेख पढ़ा। उस लेख के साथ एक तसवीर भी थी जिसमें कुछ लड़कियाँ घेरा बनाकर बैठी थीं और डायन बनने की प्राथमिक दीक्षा ले रही थीं। उस तसवीर को देखते ही रमानाथ को याद आ गया सीमा

की साड़ियों की ताक से लिफाफे में मिली तसवीर के बारे में। उस लिफाफे को लाकर अभिभूत होते हुए रमानाथ देखने लगा तीनों तसवीरों को।

ऐसा लग रहा था जैसे कि वे तसवीरें किसी निर्जन स्थान पर खींची गई थीं क्योंकि उसमें घास के मैदान के बाद दूर कोई जंगल दिखाई दे रहा था। शायद कोई पिक्निक करने की जगह थी। क्या ऐसी जगह पाँचों लड़कियाँ अकेले गई होंगी? उसे हठात् लगा कि इनके अलावा और भी कोई होगा वहाँ, फोटो खींचने वाला। क्या ये पाँचों किसी गोपनीय संगोष्ठी की सदस्या थीं और वह अवसर था उनकी गोपनीय दीक्षा लेने की शुभ घड़ी? किस तांत्रिक विन्यास के किस शक्ति चिह्न को घेरकर बैठी थीं वे लोग? कैसी दैवीय महिमा से उन्हें वश में कर रखा था किस मायावी मंत्र ने? रमानाथ को याद आई सीमा द्वारा उसे चमकृत किए जाने की अनेक अलौकिक घटनाएँ जो कि आम इंसान के लिए संभव नहीं। उसके मन की बात हमेशा सही पकड़ लेती थी सीमा। उसके पास पहुँचने से पहले ही मानो सीमा उसकी मौजूदगी का एहसास करके उसका इंतजार किया करती थी। अपनी आने वाली मौत का सही वक्त भी जानती थी सीमा। सीमा का एक-एक व्यवहार इस वक्त संदेहजनक लगा रमानाथ को। बैठकखाने में किसी से धीरे-धीरे बातें करना किसी गुप्तमंत्र का लेन-देन था शायद। कभी-कभी सीमा अपनी जिन सहेलियों के घर जाया करती थी, वे शायद उसकी डायन मंडली की सदस्या थीं। इन सदस्याओं के लिए शायद निर्धारित था कि वे कभी विधवा नहीं होंगी।

रमानाथ इन बातों को जितना सोचता, उतना ही उसका संदेह बढ़ता चला जाता कि अपने दांपत्य जीवन के अलावा एक समानांतर जीवन भी बिता रही थी सीमा। इस वैकल्पिक जीवन में सीमा के प्रेमी थे, गोपनीय समूह था, मिलने की एकांत जगह थी और सांकेतिक भाषा थी। जिस समय वह सीमा के पास नहीं होता था, उतना समय सीमा के जीवन में उसका कोई स्थान नहीं होता था। दूसरी तरह से देखा जाए तो सीमा के पूरे जीवन में रमानाथ एक गौण चरित्र मात्र था। सीमा स्वयं एक रहस्यमय जीवन बिताते हुए उससे मात्र कुछ क्षण अलग निकालकर रख दिया करती थी रमानाथ के लिए। रमानाथ का मन सीमा के विरुद्ध आक्रोश से भर गया। सीमा थी स्वेच्छाचारिणी, भ्रष्ट और रमानाथ उसे देते आया स्नेह, ममता, श्रद्धा के संपूर्ण अयोग्य थी।

ये सब बातें सोचते समय रमानाथ के मन में भय भी उपजता था। मानो सचमुच में सीमा की प्रेतात्मा उसके सामने खड़ी होकर सवाल करेगी कि क्यों

रमानाथ उसके बारे में इतनी गलत बातें सोच रहा है। नहाने के बाद पंखा के नीचे बैठकर अपने गीले बाल सुखाते समय सीमा की जो मूर्ति पहले उसे लुभावनी लगती थी, इस वक्त उस रूप ने उसके सामने आकर उसे त्रस्त और सिहरित कर दिया। वह तीस साल तक एक साथ घर-गृहस्थी बसाकर रहने वाली उसकी सीमा नहीं थी। वह थी डायन-सभा की सदस्या सीमा। वह थी प्रेमी के लिए सज-धजकर अभिसारिका मुद्रा में इंतजार करने वाली सीमा। रमानाथ को लगा, वह बिलकुल नहीं जानता, बिल्कुल नहीं पहचानता इस औरत को।

अंतिम चेतावनी

बीरेश्वर और श्रीहरि ने कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि वे फिर कभी मिलेंगे, वह भी एक ऐसी जगह। भले ही वे दोनों कभी एक ही राजनीतिक दल में थे; लेकिन बार-बार दल-बदल, दलीय गुटबाजी और नेतृत्व परिवर्तन से गुजरते हुए काफी दिनों से वे दोनों एक-दूसरे के शत्रुपक्ष में चले गए थे। इस वक्त उन्हें जिस चीज ने इकट्ठा किया था, वह था, इस समय सत्ता पर काबिज सरकार का विरोध और उसी के चलते इच्छा न होने के बावजूद उन्हें एक जगह इकट्ठा होने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त हुआ था।

इत्तफाक से दोनों उस राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री भी थे। दोनों पूर्व मुख्य-मंत्रियों की इस तरह मुलाकात होने के बारे में आम तौर पर सोचा नहीं जा सकता था, किंतु यह बात इसलिए आश्चर्यजनक नहीं थी, क्योंकि अभी तक राज्य के तेईस पूर्व मुख्यमंत्री जीवित और सक्रिय थे। बार-बार चुनाव, मंत्रिमंडल में फेर बदल और बारंबार नेतृत्व परिवर्तन की वजह से थोड़े ही समय बाद मुख्यमंत्री बदल जाते थे; यहाँ तक कि एक मुख्यमंत्री का कार्यकाल तो महज बहत्तर घंटे का था। इसलिए गाहे-बगाहे रास्ता-घाट में किसी भूतपूर्व मुख्यमंत्री से मिलना असंभव नहीं था। लेकिन जिस दिन पहली बार सुबह बीरेश्वर ने श्रीहरि को अपनी बगल वाली कोठरी से निकलते देखा, आश्चर्यचकित और सतर्क हो गया। पिछली रात किसी वक्त श्रीहरि को दूसरे जेल से इस जेल में स्थानांतरित किया गया था। सुबह आमने-सामने पड़ जाने पर बीरेश्वर ने श्रीहरि को नज़रअंदाज करके सामने की ओर देखने लगा। श्रीहरि भी कम नहीं था; उसने भी बीरेश्वर न पहचानने का ढोंग किया।

बीरेश्वर अक्सर श्रीहरि को खुद से छोटा समझता था, क्योंकि अधिक पैसेवाला होने के अलावा राजनीति में वह अधिक अनुभवी और क्षमताशाली था। वह चार महीने मुख्यमंत्री रहा, जबकि श्रीहरि रहा महज डेढ़ महीने; इसलिए वह

उसकी तरह पैसे इकट्ठे नहीं कर पाया। सबसे मुख्य बात यह थी कि बीरेश्वर ब्राह्मण था और श्रीहरि था नीच जाति का। एक ऐसे व्यक्ति को उसके समक्ष मानकर बगल वाली कोठरी में रखना बीरेश्वर को अपना सम्मान गिरने-सा लगा और इसमें वर्तमान सरकार की अवश्य कोई चाल होने-सा प्रतीत हुआ उसे।

प्रेस की स्वाधीनता पर अंकुश लगाने के लिए सरकार जो कानून लागू करने जा रही थी, उसका विरोध करने के कारण ही दोनों जेल में थे। चुनाव में पटखनी खाने के बाद काफी दिनों तक बिना किसी कार्यक्रम के विरोधी दलों ने चुप्पी साध ली थी और इंतजार में थे कि मौका मिलते ही फिर से जनता के सामने आने की चेष्टा करेंगे। उसी वक्त प्रेस बिल आने की वजह से वे लोग नींद से जगकर अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के प्रवक्ता बन गए और विभिन्न रूपों में बिल का विरोध करने लगे। राज्य के अलग-अलग इलाकों में आंदोलन शुरू हो गए और इसका नेतृत्व संभाला बीरेश्वर एवं श्रीहरि ने, हालाँकि अपनी-अपनी पार्टी की ओर से। जब दोनों स्वयं सत्ता में थे तब अखबारों को दबाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी, परंतु लोगों ने अपनी अमायिक विस्मरण शक्ति और क्षमता गुणों के कारण उन बातों को भूलकर दोनों का समर्थन किया और आंदोलन धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

मुख्यमंत्री ने पहले सोचा था कि यह आंदोलन खुद-ब-खुद थम जाएगा और इस संबंध में कोई कदम उठाने पर विरोधी नेताओं को नाहक ही राजनीतिक लाभ मिल जाएगा। लेकिन विपक्षी दलों का विरोध न थमने पर मुख्यमंत्री को बाध्य होकर उस बारे में सोचना पड़ा और उन्होंने डी.जी. पुलिस को बुलवाया उनसे सलाह लेने के लिए। मुख्यमंत्री अनिद्रा रोग से पीड़ित थे और अफसर यह जानते थे कि उनसे गुप्त और महत्वपूर्ण विषय पर विचार-विमर्श करने का सही वक्त रात को एक बजे के बाद होता है, इसलिए उनसे मिलने के लिए सारे अफसरों ने एक आसान तरीका निकाला था। वे देर रात तक क्लब में बैठकर शराब पीते थे और वहाँ से सीधे मुख्यमंत्री निवास चले जाते थे।

उस दिन रात को क्लब में डी.जी. साहब ने कुछ अधिक चढ़ा ली थी और वे नशे में धुत थे, लेकिन उस हालत में भी मुख्यमंत्री के पास जाने में उसे कोई संकोच नहीं था, क्योंकि वह था उनका खास आदमी। अपने कई उच्च अफसरों को सुपरसिड करके वह इस पद पर पहुँचा था। मुख्यमंत्री की कृपा से और वह इस अनुग्रह का ऋण चुकाता था तरह-तरह के गैरकानूनी काम करके। वह

मुख्यमंत्री के आदमी के रूप में जाना जाता था और यह रिश्ता उसके काम में विशेष सहायक होता था। इस गुंडा जैसे दिखने वाले पुलिस अधिकारी के चेहरे से लोग परिचित थे कि यह सामंजस्य सिर्फ चेहरे तक सीमित नहीं है। मुख्यमंत्री आवास के पुलिस व्यूह को भेदकर वह सीधे उनके शयन-कक्ष में चला गया। उस वक्त मुख्यमंत्री एक लुंगी पहने खाली बदन पलंग पर लेटे हुए थे और एक नौकर उनके पैर दबा रहा था। उनके पास ही रखी पहाड़ जैसी फाइलों पर उनका व्यक्तिगत सचिव दस्तख्त लेता जा रहा था। डी.जी. के आने पर उन्होंने अपने सचिव को बिदा कर दिया। डी.जी. ने जाकर उनके पैर छुए और अपने जूते उतारने के बाद पास ही रखी कुर्सी पर पलथी मारकर बैठ गया। मुख्यमंत्री ने पहले उसे जो काम दिए थे वे काम उसने किस तरह सुचारु रूप से संपन्न किया है, उसका ब्योरा दिया। मुख्यमंत्री मितभाषी थे। डी.जी. से उनकी रोजाना की बातचीत व घनिष्ठता के कारण दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझते थे। मुख्यमंत्री ने डी.जी. से मौखिक रिपोर्ट सुनने के बाद भगवान का नाम लेने की तरह सिर्फ इतना ही कहा, बीरेश्वर श्रीहरि। डी.जी. सारी बातें समझ गया और उठकर खड़ा हो गया। मुख्यमंत्री के पैर छूकर जाते हुए बोला, एक दिन में ठीक हो जाएगा! मुख्यमंत्री ने कहा, तोड़ने की जरूरत नहीं है। यह कहने का तात्पर्य था कि एक बार डी.जी. ने विरोधी दल के किसी आदमी का पैर तोड़ दिया था और उससे सरकार को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा था। डी.जी. वह बात अच्छी तरह समझ गया था; उसने बोला नहीं सर, तोड़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

मुख्यमंत्री के निवास से लौटकर डी.जी. क्लब चला गया, लेकिन क्लब का बार बंद हो चुका था। इसलिए वहाँ से वह सदर थाना का सरप्राइज इंस्पेक्शन करने चला गया। उसके ड्राइवर ने जाकर थाना के दरोगा को नींद से जगाया। दरोगा ऐसे निरीक्षण से परिचित था। डी.जी. को थाना के अंदर एक अलग कमरे में बिठाकर उसने मदिरापान की व्यवस्था कर दी। कुछ ही देर में ढाबा से लाकर खाने का इंतज़ाम भी कर दिया। रात के ढाई बजे दो सिपाही डी.जी. को सहारा देकर गाड़ी में बिठाकर उनके घर छोड़ आए।

सुबह ग्यारह बजे नींद से उठकर डी.जी. ने पहला काम किया, बीरेश्वर को फोन करना। गले को नर्म करके उसने कहा, सर, यदि आपके पास समय हो तो मैं आपके दर्शन करना चाहता हूँ। लेकिन बीरेश्वर इस धुरंधर आदमी की नस-नस पहचानता था, क्योंकि जब वह स्वयं सत्ता में था तब वह उससे तरह-तरह के

कुत्सित और जघन्य काम करवाता था। नेताजी ने भी स्वर मुलायम करके कहा, इसमें पूछने की क्या बात है? मेरा घर तो हमेशा खुला है तुम्हारे लिए। पर तुम डी.जी. बनने की खुशी में मिठाई लेकर आ रहे हो या वारंट लेकर? डी.जी. ने कहा, सर, आप तो हमेशा मजाक करने के मूड में रहते हैं।

जब डी.जी. पहुँचा, बीरेश्वर उसका इंतजाम कर रहा था। डी.जी. को देखकर बोला, बैठो-बैठो। क्या सुबह-सुबह कुछ चलेगा या सिर्फ चाय पीओगे? डी.जी. ने कहा, नहीं सर, डी.जी. बनने के बाद पूरी तरह छोड़ चुका हूँ। इतने सारे काम के लिए स्वास्थ्य तो ठीक रखना ही होगा। बिना लाग लपेट के बीरेश्वर ने कहा, चलो, अब बताओ मुख्यमंत्री से क्या संदेश लेकर आए हो। डी.जी. भी सीधे विषय वस्तु पर आते हुए बोला, हम लोग सर इस हंगामे से परेशान हो चुके हैं। आप कुछ दिनों के लिए बाहर चले जाइए। उस बात से भी गुस्सा न होकर बीरेश्वर ने कहा, भला मुझे भी कहाँ अच्छे लगते हैं ये हंगामे? पर क्या लोग मुझे जाने देंगे? मैं सोचता हूँ तुम्हारी यह सरकार गिर जाने पर कुछ दिनों के लिए गाँव जाकर विश्राम करूँगा। डी.जी. समझ गया कि बातचीत का स्वर और भाषा नर्म होने पर भी युद्ध शुरू हो चुका है। उसने कहा, नहीं सर, आप गाँव क्यों जाएँगे, दिल्ली में इतना बड़ा मकान है आपका, वहाँ जाकर आराम से रहिए।

अच्छा, दिल्ली में भाई साहब के घर पर? भला तुमसे कौन-सी खबर छुपी है?

आखिर कौन नहीं जानता साहब, आपका इतना बड़ा अखिल भारतीय परिवार है? सिर्फ दिल्ली में ही नहीं, बंगलौर में आपके पिताजी का मकान है, मुंबई मे चाचा का, कलकत्ता में ताऊ जी का।

बात यहीं खत्म करने के लिए बीरेश्वर ने कहा, तुम जाकर अपने मुख्यमंत्री से कह दो, इस वक्त शहर छोड़कर जाने का मेरा कोई इरादा नहीं है।

डी.जी. पुनः नर्म पड़ते हुए बोला, आप तो जानते हैं, मुख्यमंत्री किस तरह की जल्दबाजी मचाने वाले व्यक्ति हैं। इसके अलावा आजकल देश के सुरक्षा कानून इत्यादि से हाथ में कितनी क्षमता आ गई है। आप क्यों परेशानी में पड़ना चाहते हैं, मैं तो बस इतना ही कहना चाहता था।

बीरेश्वर ने कहा, ठीक है, समझ गया। जब तक तुम अपने लोगों को भेजोगे, मैं तैयार मिलूँगा। डी.जी. उठकर खड़ा हो गया। जाते समय बीरेश्वर की ओर मुस्कराते हुए देखकर बोला, लेकिन इस बार हम नटो को गिरफ्तार नहीं करेंगे।

यह सबसे दुखदायी समाचार था बीरेश्वर के लिए। राजनीतिक जीवन में उसे कई बार जेल जाना पड़ा था, लेकिन एक अलिखित समझौते के तहत उसके साथ

हर बार उसका नौकर नटो भी जेल जाता था। लोग इसको लेकर गंदी-गंदी बातें भी करते थे, किंतु जेल में प्रथम श्रेणी का कैदी बनकर रहते समय नटो उसका सारा काम कर दिया करता था, इससे जेलर को कोई परेशानी नहीं थी। यदि इस बार नटो को अरेस्ट नहीं किया गया तो बीरेश्वर के लिए वाकई सही दंड होगा।

घर लौटकर श्रीहरि के लिए अलग तरीका अपनाया डी.जी. ने। टेलीफोन उठाकर सीधे बोला, क्यों बे स्साले डोम, पहचाना मुझे? डेढ़ महीने के अंदर वह मुख्यमंत्री श्रीहरि से कोई फायदा उठाने में सफल नहीं हो पाया था और तब उन दोनों के बीच कोई खास संपर्क भी नहीं था। फिर भी श्रीहरि ने उसकी आवाज पहचान ली, मन ही मन क्रोधित भी हुआ, लेकिन शांत स्वर में बोला, आप कौन बोल रहे हैं? पहले कोई उसकी जाति के बारे में कहता तो श्रीहरि के सिर में पित्त चढ़ जाता था, किंतु आजकल ऐसी बात सुनने की आदत पड़ चुकी थी और ऐसी परिस्थिति में वह खुद का मिजाज ठंडा रखता था। उसे गुस्सा दिलाने में असफल होकर डी.जी. ने तय किया कि अब इस आदमी के पीछे वक्त बर्बाद करने से कोई लाभ नहीं। उसने फोन रख दिया।

उस दिन शाम को बीरेश्वर और श्रीहरि दोनों अरेस्ट हुए। उस वक्त बीरेश्वर के घर के सामने किराये पर लाए गए लोग, अखबार वाले और फोटोग्राफर इकट्ठे थे। बेचारे श्रीहरि को गिरफ्तार किया गया उसके टूटे-फूटे पार्टी कार्यालय से। श्रीहरि को उसी शहर के जेल में रखा गया, किंतु बीरेश्वर को भेज दिया गया कहीं दूर के जेल में, क्योंकि बीरेश्वर के राजधानी में रहने से दंगा भड़कने की आशंका अधिक थी। यदि मुख्यमंत्री ने यह सोचा था कि इन दोनों को गिरफ्तार कर लेने से समस्या का समाधान हो जाएगा, तो यह उनकी भूल थी। बीरेश्वर और श्रीहरि की गिरफ्तारी के बाद भी दंगे कम नहीं हुए। जब काफी दिनों तक आंदोलन चलता रहा और दोनों नेताओं को छोड़ने के लिए विरोधी दल ने मांग करनी शुरू कर दी, तब श्रीहरि को भी उसी जेल में भेज दिया गया जहाँ बीरेश्वर पहले से था।

राजधानी से उन दोनों को इतनी दूर जेल में भेजने का कारण था कि जहाँ तक संभव हो उन्हें राजधानी से दूर रखा जाए। इसके अलावा एक और महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि उस जेल का दायित्व जिस अफसर पर था, वह था एक पाजी। कैदियों को परेशान करके किस तरह नाको चने चबाया जा सकता है, उस बारे में उसे महारत हासिल थी। जब बीरेश्वर उसके जेल में पहुँचा था, जेलर

समझ गया था उसे क्यों उसके जेल में भेजा गया है। उस बारे में उसे और कोई निर्देश देने की जरूरत नहीं थी। उसने कुर्सी से उठकर अगवानी की, अपने ऑफिस के कमरे से सबको बाहर भेजकर उसे सम्मानपूर्वक बिठाकर बोला, मेरा सौभाग्य है कि आपकी चरणरज इस जेल में पड़ी। आप जितने दिनों तक यहाँ रहेंगे, चाहे महीने भर हो या पाँच साल, आपको कोई दिक्कत नहीं होगी। जब भी जरूरत पड़े मुझे खबर भिजवाएँ, मैं हाजिर हो जाऊँगा। उस वक्तव्य के बाद वह बीरेश्वर को प्रथम श्रेणी के कैदियों के लिए अलग से बने दो कमरों की ओर ले गया। बीरेश्वर को वहाँ छोड़कर आने के बाद जेलर नदारद हो गया।

उस जेल में प्रथम श्रेणी के कमरे मुख्य कैदखाने से कुछ दूर तार के घेरे में बने थे। दो कमरों के अलावा रसोई घर और पैखाना था। अपने कमरे में घुसकर पहले बीरेश्वर ने खाट, कंबल और चादर देखे, पैखाने में पानी आता है या नहीं देखा, खाट पर तकिया किस दिशा में रखा है, उसका अंदाजा लिया। कौन जाने यहाँ कितने दिनों तक रहना पड़े। जेलर उसे जिस वार्डर के हवाले छोड़ गया था, उसने बीरेश्वर से पूछा, क्यों सर, सब ठीक है ना?

बीरेश्वर ने दुबारा कमरे की सारी चीजों पर निगाह डालते हुए कहा, अभी तो ठीक ही लग रहा है, यदि कोई जरूरत पड़ी तो बताऊँगा। वार्डर ने कहा, आज आपको सामान्य कैदियोंवाला खाना दिया जाएगा; कल से आपके पास एक रसोइया आ जाएगा। इतना कहने के बाद वह वार्डन बीरेश्वर को वहाँ अकेला छोड़कर तार के घेरे के गेट पर ताला बंद करके चला गया।

दिन में ग्यारह बजे बीरेश्वर जेल आया था। अभी बारह बजे जेल की खाट पर अकेले बैठे-बैठे वह क्या करे यह समझ नहीं पा रहा था। वह इलाका जेल से बिलकुल अलग-थलग एक कोने में था। वहाँ से दीवार के अलावा और कुछ भी दिखाई नहीं देता था। कमरे के बाहर जो खुली जगह थी वह बगीचे के लिए थी, लेकिन इस वक्त वह जगह कोड़ी जाकर सूखी जमीन सी पड़ी थी। चारों ओर सन्नाटा पसरा था। बीरेश्वर ने अपनी चीजें खोलकर बाहर निकाल लीं। साथ में कुछ किताबें भी लाते तो अच्छा होता। वह पत्र लिखकर कुछ किताबें मँगवाएगा। इस वक्त और कोई काम न होने के कारण उसे भूख लग गई। उसने सुराही से पानी उड़ेलकर पिया। पानी शायद हफ्तेभर से बदला नहीं गया था, पेट में जाते ही उसका जी मिचलाने लगा। उस आदमी के रहते उसे पानी देख लेना चाहिए था। वह खाट पर लेटे-लेटे खाना आने का इंतजार करने लगा।

ऐसे में न जाने कब उसे नींद आ गई। नींद खुलने पर उसने देखा कि दोपहर के दो बज चुके हैं, किंतु किसी आदमी या खाने का दर्शन तक नहीं। प्यास लगने पर याद आया कि सुराही में बासी पानी है। उसने सुराही के पानी से हाथ-मुँह धोने के बाद बचा हुआ पानी नीचे उड़ेल दिया और खाने का इंतजार करने लगा। भूख से पेट उमेठने लगा था। इतने में वार्डर ने आकर प्रथम श्रेणी जेल का फाटक खोला चार बजे। उसे देखते ही बीरेश्वर नें गुस्से में उसे खूब खरी खोटी सुनाई। वार्डर के साथ खाना लेकर आया आदमी किसी पुराने अपराधी-सा दिख रहा था। उस आदमी के खाने की थाली कमरे में रखकर जाने के बाद वार्डर ने बीरेश्वर से कहा, उस आदमी के सामने मैंने आपसे कुछ नहीं कहा। आप यहाँ नए-नए जो हैं, यहाँ के रीति-रिवाज नहीं जानते। आगे से आप मुझसे ऊँची आवाज में बात मत कीजिएगा। ये जो आदमी आया था, काफी पुराना अपराधी है। उसे क्या मालूम कि आप मुझे खरी-खोटी सुना रहे हैं या उसे? पाँच खून करके वह जेल आया है। एक खून और करने में वह नहीं हिचकेगा।

ये सब बातें कहकर वार्डन ने बीरेश्वर को खूब डरा दिया और फाटक में ताला बंद करके चला गया। बीरेश्वर ने सूखी रोटी मुँह में डालकर देखा कि वह खाने लायक नहीं है। तब भी उसने भूख की वजह से दो रोटियाँ खा लीं। उसके बाद पानी पीने उठते समय उसे याद आया कि गुस्से में वह पानी भरवाने की बात तो भूल ही गया। वास्तव में उसे गुस्सा नहीं करना चाहिए था। शांत चित्त में होता तो पानी भरवाने के बारे में नहीं भूलता। अब वार्डन से मिलने की उम्मीद नहीं थी। वह पैखाने की बाल्टी से एक गिलास पानी भर लाया। वह पानी भी अच्छा नहीं था। परंतु उसे इतने जोर की प्यास लगी थी कि वह पूरा गिलास गटगटाकर पी गया। फालतू खाना खाकर, बदबूदार पानी पीकर बीरेश्वर ने मन ही मन सोचा, नहीं, इन स्साले छोटे लोगों पर गुस्सा करने से कोई लाभ नहीं। उस दिन शाम को जब वार्डन रात का खाना लेकर आया, उसने उससे अच्छी तरह ही नहीं, बल्कि खुशामद भरे स्वर में बातचीत की, पीने का पानी मँगवाकर रखा और बिस्तर पर पड़े फटे कंबल के बदले एक अच्छा कंबल देने को कहा। रात को सोने जाते समय उसे याद आया कि इस बार वह अपनी दवा लाना भूल गया है, इस बारे में घर लिखना पड़ेगा। उसे नटो की याद भी आ गई, क्योंकि रोजाना इस वक्त नटो उसके पैर दबा दिया करता था।

अगले दिन उसके लिए रसोइये का इंतजाम हो गया। जिस कैदी को इस काम पर लगाया गया था, वह नासमझ था। लेकिन पहली बार उसके हाथ का

बना खाकर बीरेश्वर को लगा कि वह अच्छा खाना बनाता है। वह खुश हो गया कि चलो अब खाने की अधिक परेशानी नहीं होगी उसे। लेकिन उस दिन रात को उस आदमी ने उसे जो खाना दिया, वह बिल्कुल भी खाने लायक नहीं था। बीरेश्वर वह खाना नहीं खा सका। उस आदमी से बात करने पर पता चला कि वह पूरा पागल था, कोई बात नहीं समझता था और जो भी जी में आता, करता था। बीरेश्वर ने तय किया कि वह जेलर से मिलकर इस समस्या का समाधान करेगा।

लेकिन जेलर से मिलना आसान नहीं था। वार्डन से यह बात कहने पर उसने कहा, आजकल साहब इंस्पेक्शन में व्यस्त हैं। दो दिन बाद मुलाकात होगी। यह सुनकर बीरेश्वर का पारा चढ़ गया। एक तुच्छ जेलर, कौन-सा लाट साहब है कि उसके पास मिलने का समय नहीं है। परंतु इन लोगों पर गुस्सा करने से कोई लाभ नहीं। उसने कहा, मुझे कागज, कलम लाकर दो, मैं दरख्वास्त लिखकर दूँगा। उस दिन रात को बीरेश्वर ने एक दरख्वास्त लिखा जिसमें उसकी असुविधाओं की एक लंबी सूची थी। दरख्वास्त देने के अगले दिन जब उसने दरख्वास्त के बारे में पूछा, वार्डन ने कहा, साहब के टेबुल पर रखा है कागज। परंतु आजकल उन्हें साँस तक लेने की फुरसत नहीं मिलती। फुरसत मिलते ही आपकी अर्जी पढ़कर उस पर आर्डर जारी करेंगे। बीरेश्वर ने मन ही मन कहा, स्साला जेलर।

और दो दिनों में बीरेश्वर का दिमाग खराब हो गया। बातचीत करने के लिए उसके पास कोई नहीं था सिवाय उस पागल आदमी के। इसके अलावा वह जो भी कुछ बनाकर खाने को देता है, अधिकतर खाने लायक नहीं होता। जेल के कर्मचारी आसपास नहीं फटकते। पहले जितनी भी बार वह जेल गया है, ऐसी हालत कभी नहीं हुई। उसका एक पूरा दल पकड़े जाकर एक साथ रहता था, नटो साथ होता था सेवा करने के लिए, हँसी-खुशी में दिन बीत जाते थे। इस बार उसकी व्यवस्था की गई है सॉलिटरी सेल में। हालाँकि उसे दिखाई नहीं देता था कि मुख्य जेल के अंदर क्या कुछ चल रहा है, पर वहाँ से जो हो-हल्ला सुनाई देता था, बीरेश्वर सोचता था कि सामान्य कैदी बनकर रहता तो अच्छा होता। वैसी परिस्थिति में श्रीहरि का वहाँ आना उसके लिए सुसमाचार होना स्वाभाविक था, लेकिन बीरेश्वर ने तय कर लिया था कि बगल वाली कोठरी में रहने वाले आदमी से वह दूरी बनाकर रखेगा।

भले ही वे दोनों अगल-बगल की कोठरी में रहते थे, एक ही पैखाने का इस्तेमाल करते थे और एक ही रसोइये के हाथ का बना खाते थे, पर एक-दूसरे की ओर देखते नहीं थे या फिर एक-दूसरे से बातचीत नहीं करते थे। कभी-कभी

श्रीहरि पैखाने में ज्यादा देर लगा देता तो बीरेश्वर खीझकर बाहर से दरवाजा खटखटाने लगता परंतु मुँह से कुछ बोलता नहीं था। बीच-बीच में वह बरामदेवाली खिड़की से झाँककर देखता था कि श्रीहरि अंदर क्या कर रहा है। श्रीहरि अधिकतर समय अपनी कोठरी की खाट पर आराम से लेटे हुए दिखाई देता। बीरेश्वर ने यह भी महसूस किया कि श्रीहरि खाने-पीने को लेकर उतना परेशान नहीं रहता है, जितना कि वह रहता है, श्रीहरि को जो भी कुछ मिलता वह बड़े संतोष के साथ खा लेता था। बीरेश्वर मन ही मन कहता, स्साला कंगला जो है। जिंदगीभर घर में भुक्खड़ ही रहते हैं ये लोग, इसलिए जो भी कुछ मिलता है, अच्छा क्यों नहीं लगेगा?

एक दिन सुबह बीरेश्वर को बुलावा आया जेलर के पास जाने के लिए। बीरेश्वर ने सोचा, शायद उसे छोड़ा जा रहा है, ऐसी कोई अच्छी खबर मिलेगी उसे। उसके मन में यह बात भी आई कि उसे छोड़ने के बाद यदि श्रीहरि को और कुछ दिन कैद करके रखा जाता है तो अच्छा होता। बीरेश्वर के जेलर के दफ्तर में आधा घंटा बैठने के बाद जेलर आया, बोला, सर बहुत काम है आज! आपके घर से न जाने क्या कुछ आया है, इसीलिए आपको कष्ट दिया। सिपाही ने एक खुला हुआ पैकेट लाकर बीरेश्वर के सामने रख दिया। बीरेश्वर के उसे ठीक से देखने से पहले जेलर ने उन चीजों पर एक बार हाथ फेर लिया। तरह-तरह की दवाइयों के साथ कई छोटी-बड़ी चीजें भी थीं, जैसे चाँदी की दँतखोदनी, कमर में बाँधने वाला मैगनेटिक बेल्ट, पन्नी में लिपटी एक छोटी भगवतगीता इत्यादि। एक आयुर्वेदीय दवा की शीशी खोलकर उसमें से कुछ सफेद चूर्ण अपनी हथेली में डालकर जेलर उसे नाक के पास ले गया, बोला, ऐसी चीजें कैदियों को नहीं देनी चाहिए, यह जहर है या नहीं कौन जाने? इस बार आपको दिए देता हूँ। आप घर पर लिख दें कि भविष्य में ऐसी अगड़म-बगड़म चीजें न भेजा करें। इतना कहकर जेलर उठकर खड़ा हो गया, मानो उसे कोई बहुत जरूरी काम हो, तुरंत बाहर निकल गया। बीरेश्वर जो इतने आपत्ति-अभियोग लेकर आया था, कहने का समय ही नहीं मिला। खासकर अंत में जेलर जो कुछ कह गया, वह बात उसके दिमाग में घुसकर उसे और कुछ कहने का मौका ही नहीं दिया।

अपने दड़बे में लौटकर बीरेश्वर ने सोचा, जेलर ने जो कहा अगड़म-बगड़म, उसका मतलब क्या है? घर से आई चीजों को एक-एक करके फिर से देखा बीरेश्वर ने, लेकिन उनमें अगड़म-बगड़म जैसी कोई चीज नहीं पड़ी नजर में। क्या

हो सकता है इस शब्द का अर्थ? क्या छोटे लोगों द्वारा उपयोग में आने वाली कोई चीज है? तब तो श्रीहरि को मालूम हो सकता है। दिनभर कुछ अच्छा नहीं लगा बीरेश्वर को। वह अद्‌भुत शब्द उसे बार-बार कचोटता रहा। अंततः उसने तय किया कि अपने मान-सम्मान की बलि चढ़ाकर वह श्रीहरि की मदद लेगा और वह क्या चीज है जानकर ही रहेगा।

श्रीहरि की कोठरी के आगे बरामदे में चहलकदमी करते हुए उसने सोचा कि किस तरह बात शुरू करे। श्रीहरि जरूर फैलने लगेगा यदि वह उसके पास गया, तो फिर ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाए। बीरेश्वर ने श्रीहरि के दरवाजे के पास कुछ खाँसते हुए बोला, आपके पास सिरदर्द की दवा है क्या? गनीमत थी कि श्रीहरि भी किसी से बात करने के लिए छटपटा रहा था। उसने बिना कोई भाव दिखाए कहा, आइए आइए, बाहर क्यों खड़े हैं? बीरेश्वर के अंदर जाकर बैठने के बाद उनके बीच इस तरह बातचीत शुरू हो गई मानो उनकी रोजाना मुलाकात होती थी और पिछले पाँच दिन उनके जीवन में आए ही नहीं। उस बातचीत के बीच फिर सिर दर्द की दवा की बात भी नहीं उठी, क्योंकि दोनों पक्ष जानते थे कि वह तो मौन तोड़ने का एक बहाना मात्र था। इस वक्त जिस काम से बीरेश्वर आया था उसकी भूमिका बाँधते हुए बोला, यह जेलर बहुत बदमाश है। श्रीहरि ने कहा, मैं जिस जेल से यहाँ आया हूँ, वहाँ के कैदियों से इस आदमी के बारे में सुना था। पक्का पाजी है। कहते हैं, पुराने दागियों से इसकी साठ-गाँठ है। रात में वह दागियों को चोरी करने के लिए छोड़ देता है। रात में वे लोग जितना माल लाते हैं आधा उनका होता है, आधा जेलर का। देख रहे हैं ना, कैसा सलूक किया जा रहा है यहाँ हम लोगों से। आखिर हम भी तो कभी मुख्यमंत्री थे! श्रीहरि ने कहा, वह सब भूल जाइए अब। जितने दिनों तक इस स्साली सरकार ने हमें जेल में रखा है, मुँह बंद करके पड़े रहना है। यहाँ से छूटने के बाद देखा जाएगा इस सरकार में कितनी ताकत है! बीरेश्वर ने कहा, यह बात तो सही है, जितने दिनों तक यहाँ हैं, शांति से ही रहेंगे। घर से कोई क्या चीज भेजता है, वह तो लेना ही होगा। श्रीहरि ने कहा, जेल के भीतर भला कैसी शांति? इन कुछ दिनों को अपना दुर्भाग्य समझकर बस सह जाना है।

बात सही दिशा में न जाते देख बीरेश्वर ने कहा, प्रथम श्रेणी के कैदी के हिसाब से हमारा कुछ तो अधिकार है। अखबार, किताबें, घर से कुछ चीजें आना,

इन्हें तो जेलर का कोई बाप नहीं रोक सकता। हमारे घर से जो कुछ आया, सब हमारा है। श्रीहरि ने कहा, क्या आपकी कोई चीज रास्ते में गायब हो गई? बीरेश्वर ने कहा, नहीं, ऐसा नहीं है, परंतु जेलर ने मेरी चीजों को अगड़म-बगड़म कहा। श्रीहरि ने कहा, कोई चीज खोई तो नहीं ना! आप घरवालों को लिख दीजिए कि अब से कोई कीमती चीज न भेजें। उसके बाद बात का रुख मुड़ गया राजनीति की ओर। इस वक्त के मुख्यमंत्री के विरुद्ध दोनों तरह-तरह की कलंकित बातें करने लगे। प्रेस बिल विरोधी आंदोलन के बारे में भी चर्चा हुई। श्रीहरि की कोठरी से निकलते वक्त भी बीरेश्वर के दिमाग से वह बात निकली नहीं थी। उसने दरवाजे के पास रुककर पूछा, अगड़म-बगड़म का मतलब क्या होता है? बिना कुछ सोचे विचारे श्रीहरि ने उत्तर दिया, शायद कोई खाने की चीज होगी!

इस तरह बीरेश्वर के संशय का कोई समाधान नहीं हो सका, लेकिन इसी बहाने श्रीहरि से उसकी बातचीत शुरू हो गई थी। अब वे लोग आपस में बातें करने लगे थे, जबकि वह बातचीत व्यक्तिगत स्तर तक नहीं पहुँची थी। शुरू-शुरू में विचार-विमर्श होता था राजनीति और देश के हालात के बारे में। धीरे-धीरे ये विषय भूलकर उन्होंने बातचीत शुरू कर दी जेल में सुविधा-असुविधा के विषय में, जैसे पैखाना साफ न होना, ठीक समय पर उन्हें खाना न मिलना, खाने में विटामिन और केलोरी की मात्रा कम होना इत्यादि। इस संबंध में वार्डन को बार-बार कहने के बावजूद व्यवस्था में कोई सुधार न होने पर उन्होंने तय किया कि वे लोग इसकी शिकायत सीधे-सीधे सरकार से करेंगे। बीरेश्वर को जेल के मैनुअल का अच्छा ज्ञान था और यहाँ जेल की नियमावली के किस-किस नियम का उल्लंघन हो रहा है, उसने उसकी एक सूची बना ली। अब इस विषय में सरकार को दरख्वास्त लिखकर उस पर दोनों ने दस्तखत करके जेलर के पास भेज दी।

दरख्वास्त पर नजर डालते ही जेलर के मन में हठात् डर घुस गया। कारण, वह उसके जेल की एक निरीक्षण रिपोर्ट जैसी थी। उसे और दो बार पढ़ने पर उसे भीषण क्रोध आया उन दोनों कैदियों पर। उसने उस कागज को फाड़कर टुकड़ा-टुकड़ा कर दिया। टेबुल पर रखी घंटी जोर से बजाते हुए अर्दली को पुकारा और प्रथम श्रेणी के दायित्व में रहने वाले वार्डन को हाजिर होने की सूचना भिजवाई। वार्डन आते ही उसने उसे दिल खोलकर लताड़ा, बोला, स्साले दो खद्दरधारियों को नहीं संभाल पाए? अब मैं खुद उनका ध्यान रखूँगा।

जेल में जेलर का एक निजी किचेन केबिनेट था। उसमें उसके कुछ गिनती के जेल कर्मचारी थे, जिन्हें वह पकड़ो कहते ही बाँधकर ले आते थे। उसमें जेल

के डॉक्टर को भी शामिल किया गया था, बगीचे से रोज़ाना साग सब्जी इत्यादि उसे उपलब्ध कराकर। किसी क़ैदी के आपे से बाहर होने पर उसे डॉक्टरी उपाय से किस तरह क्या करना होगा, वह डॉक्टर को पता था। नाक से खाना खिलाने, अकारण ही पैर की ओर से ढेरों सलाइन इंजेक्शन देकर कैदी को कई दिनों तक कष्ट में रखने में डॉक्टर उस्ताद था। इसके अलावा जेलर के हाथ में ढेरों चुने हुए दागी थे, जो उसके लिए थे वफादार कुत्तों की तरह। जेल में उनका सातों खून माफ था और कैदियों पर उनका राज चलता था। जेलर की कृपा से जेल के भीतर उनके लिए शराब, नशीली चीजें आदि पहुँच जाया करती थीं, उन्हें अच्छा खाना मिलता था, मुफस्सल के कम उम्र के कैदी उनकी सेवा करते थे। इन सारी सुविधाओं के बदले उनका काम था, जेलर की ओर से कैदियों को संभालना और जेलर के विरुद्ध कुछ होने पर उसका दमन करना। जेलर चाहता तो अपने दोनों वी.आई.पी. कैदियों के पीछे उन्हें लगा सकता था, किंतु उन गुंडों के शरीर में जितना जोर था, उतना ही कम विकास हुआ था दिमाग का। उन लोगों के द्वारा कोई दूसरा संकट खड़ा करने की संभावना रहती थी। इसलिए जेलर ने बहुत सोच-समझकर प्रथम श्रेणी के जेल के रसोइए को बदलकर वहाँ भिकारी को लगा दिया और एक हृष्टपुष्ट वार्डन को वहाँ की ड्यूटी दे दी।

भिकारी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी था और जेलर के खास-खास कामों के लिए दूत भी। वह पूरे जेल में बेरोक-टोक घूमा करता था और कैदियों के साथ-साथ जेल के सारे कर्मचारी उससे डरते थे। चोरी की चीजें जेल से बाहर भीतर करने में वह धुरंधर था। उस आदमी को प्रथम श्रेणी जेल में ले जाकर वार्डन ने पहचान करवा दी, कहा, आप लोग कहते थे रसोइया ठीक नहीं है, अब जेल का एक पुराना आदमी दिया जा रहा है। आगे से आपको कोई दिक्कत नहीं होगी। हालाँकि वह आदमी देखने में सही नहीं था, बीरेश्वर और श्रीहरि चुप रहे, क्योंकि उन्होंने पिछले आदमी के विरुद्ध तरह-तरह के आरोप लगाए थे। अब चौबीसों घंटे इस आदमी की देख-रेख में रहना पड़ेगा उन्हें; इसलिए उसे पोटकर रखना उचित होगा।

अब तक उन्हें जेल में रहते एक महीना हो चुका था। बाहर भले ही आंदोलन बंद नहीं हुआ था, एसेंबली की छुट्टी हो जाने की वजह से बिल पास करने का काम स्थगित हो गया था और इसलिए उत्तेजना शिथिल पड़ गई थी। फिर भी उन्हें छुड़वाने की कोई व्यवस्था होने जैसा लग नहीं रहा था। मानो सरकार जेल भेजकर पूरी तरह भूल गई थी उन दोनों को। आंदोलन धीमा पड़ने की वजह से

उनके दल के लोग और जनता कोई खबर ले नहीं रहे थे उन दोनों की। ऐसी परिस्थिति में बीरेश्वर और श्रीहरि ने तय किया कि और जितने भी दिन यहाँ रहना पड़े, किसी भी तरह शांति से रहेंगे।

बीरेश्वर आजकल श्रीहरि के साथ घुल-मिलकर रहता जरूर था, परंतु अपने मन से अब तक यह बात निकाल नहीं पा रहा था कि श्रीहरि एक छोटा आदमी है। जबकि पहले भी कई बार उसे जेल में रहना पड़ा है अवर्ण अछूतों के साथ। बहुत सारे लोगों की भीड़ में उनके साथ घुल-मिलकर रहने से कुछ पता नहीं चलता, लेकिन एक जेल में जब सिर्फ दो ही लोग रहते हों और उसकी बगलवाली कोठरी में किसी अछूत आदमी का रहना निश्चय ही मुख्यमंत्री की कुबुद्धि है। जब उसने श्रीहरि को पहली बार जाना, श्रीहरि एक सामान्य कार्यकर्त्ता और बाद में एक गौण नेता था। परिस्थितिवश कुछ दिनों के लिए मुख्यमंत्री बनने पर न जाने खुद को क्या मानने लग गया था श्रीहरि और बीरेश्वर को अपने बराबर समझने लगा था। बीरेश्वर को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। उसने तय किया कि जेल में रहने के दौरान वह इस छोटे आदमी का दौरात्म्य सह जाएगा, लेकिन एक बार बाहर जाने पर उसे दिखा देगा, किसकी जगह कहाँ है।

इस वक्त श्रीहरि की फिक्र छोड़कर भिकारी पर ध्यान दिया बीरेश्वर ने। पहले ही दिन से पता चल गया कि भिकारी उन लोगों की सेवा के लिए नहीं आया है, आया है जेलर का जासूस बनकर उन्हें परेशान करने। उनके अहाते में आने के बाद वहाँ का एक बंद कमरा खोलकर उसमें आसन जमा लिया उसने। उस कमरे में घुसे बिना भी बाहर से नजर डालकर बीरेश्वर ने देखा कि भिकारी की चीजें उनसे अच्छी हैं। कमरे में एक टेलीविजन भी रखा था भिकारी ने। हालाँकि उन दोनों ने सोचा था कि भिकारी उनकी रसोई बनाएगा, परंतु वास्तव में देखा यह गया कि भिकारी ने एक दूसरे कैदी को रसोई में लगाकर खुद सिर्फ देख-रेख करता है। पहले दिन जब वह नया आदमी रसोई बनाने आया, उससे कुछ जानने और उसे कुछ खुश करने के उद्देश्य से बीरेश्वर ने कहा था, क्या भिकारी बाबू, आप रसोई नहीं बनाएँगे? हमने सोचा था आपके हाथ से अच्छा-अच्छा खाने को मिलेगा। भले ही बीरेश्वर ने मुस्कराते हुए यह कहा था, रुक्ष स्वर में जवाब दिया भिकारी ने कि वह उन लोगों से दोस्ती करना नहीं चाहता। उसने कहा, सर मैं जाति से कायस्थ वैष्णव हूँ। सरकारी नौकरी करके खुद को बेच जरूर दिया है, पर मेरा भी तो जाति-धर्म है। मुझसे नीच जाति की सेवा नहीं हो पाएगी। यह

बात उसने ऊँची आवाज में श्रीहरि को सुनाते हुए कही थी। लेकिन श्रीहरि ऐसी उकसाहटों से परिचित था। उसने खुद को नियंत्रित कर लिया। वह जानता था कि ऐसी बातों में बात जोड़ने से परिणाम बुरा ही होगा। श्रीहरि के उसकी बात सुनकर विचलित न होने पर भिकारी ने बीरेश्वर से कहा, आपके लिए मैंने जो रसोइया ठीक कर दिया है, वह जाति का कंडरा (निम्न जाति) जरूर है, पर उसका हाथ अच्छा है। यह सुनकर बीरेश्वर का मुँह सूख गया। अछूत अवर्ण, हरिजन कहना फिर भी सही है, पर सीधे-सीधे जाति का नाम लेकर—उसके हाथ का बना खाना होगा सुनकर मन खराब हो गया और दूर से यह देखकर श्रीहरि कुछ खुश हो गया। भिकारी ने अपनी आवाज कुछ धीमी करते हुए कहा, मैं जानता हूँ सर कि आप ब्राह्मण हैं, पर आइन कानून के आगे हम क्या कर सकते हैं? ऐसी बात बोलने से तो जेल हो जाएगा। बीरेश्वर ने धीरे से सिर हिलाकर हामी भरी, जबकि उसे मालूम था कि वह जेल में है।

अब भिकारी विधिवत रूप से जुट गया था दोनों को परेशान करने के अलग-अलग तरीके निकालने में। दो जून की रसोई इस संबंध में उसका एक प्रधान माध्यम था। कभी खाना बिलकुल फीका होने पर उस बारे में आपत्ति करने से अत्यधिक नमक डालकर उसे पूरी तरह बेकार कर देता था। कभी-कभी सब्जी में अधिक मिर्च डालकर उनकी आँखों से आँसू बहा देता। इस संबंध में श्रीहरि की सहनशक्ति अधिक थी। उसे कुछ भी परोसने पर खा लेता था। बीरेश्वर के अक्सर खाने को लेकर मीनमेख निकलाने के कारण उसी के खाने में नमक-मिर्च की मात्रा कम-ज्यादा होती थी। उनके खाते समय भिकारी वहाँ खड़े होकर उनकी परेशानी देख आनंदित हो कहता, रसोई है आग-पानी का काम, पकने पर कैसी लगेगी, यह किसी के हाथ में नहीं होती।

उस बारे में वार्डन को कहने से कोई लाभ नहीं था, क्योंकि वह भी भिकारी से डरता था। एक बार जब भिकारी वहाँ नहीं था, वार्डन ने आहिस्ता से कहा था, किसी भी तरह भिकारी को अपने हाथ में रखिए। वह इतना बदमाश है कि उसके कारण एक बार एक कैदी ने आत्महत्या कर ली थी। जेल में सभी उससे डरते हैं।

बीरेश्वर और श्रीहरि दोनों को पहले भी जेल में रहने का अनुभव था और दोनों जानते थे कि जेल में तरह-तरह की दिक्कतें और कष्ट सहने होते हैं। पर किसी आदमी द्वारा जानबूझकर परेशान करने का यह नया अनुभव था। भिकारी

ने आजकल नया तरीका निकाला था उन्हें परेशान करने का। आधी रात को खूब जोर से रेडियो बजाकर वह उन लोगों को सोने नहीं देता था। उनके कमरों की साफ-सफाई और मरम्मत करवाने के बहाने चार दिनों तक उसने उनकी चीजें बाहर डालकर झुंडभर लोग लाकर वहाँ काम करवाया। उन लोगों को बगीचे में टहलते देख उसने वहाँ वृक्षारोपण के बहाने खाद फैला दी, जिसकी वजह से अब वे लोग खुली जगह में टहल नहीं सकेंगे। इन सबके अलावा भिकारी का एक प्रधान अस्त्र था उन लोगों को सुना-सुनाकर गाली-गलौज करना। वह रसोइये के पास जाकर ऊंचे स्वर में 'ये स्साले नेता देश को खा जाएँगे' जैसी सुप्रतीत, किंतु दोनों कैदियों के लिए अप्रीतिकर बातें कहा करता था।

एक दिन बीरेश्वर ने भिकारी से कहा कि उसकी तबीयत ठीक नहीं लग रही। उस दिन भिकारी डॉक्टर को बुला लाया। डॉक्टर ने जो इंजेक्शन दिया, उसका दर्द पाँच दिनों तक रहा। इस घटना के बाद बीरेश्वर ने तय किया कि अपना मान-सम्मान भूलकर वह श्रीहरि से आत्मीयता रखेगा। श्रीहरि भी इसी के इंतजार में था। बहुत कम समय में दोनों एक-दूसरे से काफी घुल-मिल गए और यह जुगत लगाने लगे कि किस तरह भिकारी को काबू में लाया जा सकता है। श्रीहरि ऊपर से इतना बुड़बक जरूर दिखाई देता था, पर था वह बड़ा धूर्त। भिकारी के अनजाने श्रीहरि ने रसोइया को अपने हाथ में रखने की चेष्टा की, खुद भी छोटी जाति का होने की दुहाई देकर। इसमें वह सफल रहा और भिकारी के उकसाने और निर्देश देने के बावजूद उन लोगों के खाने-पीने में कोई परेशानी नहीं हुई। दुर्भाग्य से यह बात भिकारी से अधिक दिनों तक छिप नहीं पाई। उसने उस रसोइये को बदलकर किसी दूसरे बदमाश रसोइये को लाकर लगा दिया। उन दोनों को सुनाते हुए बोला, तुम लोग डाल-डाल चलोगे तो मैं पात-पात चलूँगा।

अब भिकारी ने एक नई ज्यादती शुरू कर दी, पानी का नल समय-असमय अपनी इच्छा से बंद करके। पानी के नलों की चाबियाँ कहाँ होती हैं, भिकारी को मालूम था और कभी-कभी बीरेश्वर या श्रीहरि के पैखाना में होने पर भिकारी पानी बंद कर दिया करता था। इसके बाद वह बिजली भी नियंत्रित करने लगा और गर्मियों में दोपहर के समय पंखें बंद करके उन लोगों को यथासंभव कष्ट देने लगा। बीरेश्वर और श्रीहरि समझ गए कि जेल से छुट्टी न मिलने तक उनकी मुक्ति नहीं उस पाज़ी व्यक्ति के चंगुल से।

इस बीच फिर से एसेंबली शुरू होने पर प्रेस बिल पर चर्चा हुई और विरोधी आंदोलन भड़क उठा। लोगों को अचानक याद आया कि दो भूतपूर्व मुख्यमंत्री इसी वजह से जेल में हैं। इसके लिए मुख्यमंत्री पर दबाव बनाया गया और इस संबंध में वे कार्रवाई करने को बाध्य हुए। वहाँ के जिला कलेक्टर को मुख्यमंत्री का फोन आया कि वे स्वयं जाकर दोनों क़ैदियों को मनाएँ और उनसे कहें कि वे लोग अपना आंदोलन वापस लेने का आश्वासन दें तो उन्हें जेल से छोड़ दिया जाएगा। जब उनके पास यह सूचना आई कि कलेक्टर साहब उनसे मिलने आने वाले हैं; बीरेश्वर बेहद खुश हुआ। किंतु श्रीहरि ने कहा, आप समझे नहीं, उनको गरज है। तभी वे लोग हमारे पास आ रहे हैं। इसी वक्त हमें अड़कर बैठ जाना है। बीरेश्वर ने कहा, यहाँ का जेलर जैसा है, कौन जाने फिर कभी किसी बड़े हाकिम से मिलना होगा या नहीं, क्या यह मौका छोड़ दें? श्रीहरि बोला, सीधे-सीधे कह देंगे कि जब हमारी मांगें पूरी नहीं होतीं तो हम किसी भी तरह की बातचीत के लिए तैयार नहीं हैं।

भले ही राजनीतिक चालबाजी में भाग लेना उसके काम के अंतर्गत नहीं आता था, मुख्यमंत्री के आदेशानुसार कलेक्टर ने खुद को तैयार किया बीरेश्वर और श्रीहरि से बातचीत करने के लिए। इसके लिए उसे प्रेस कानून और प्रस्तावित बिल को शुरू से पढ़ना पड़ा। वास्तव में वह कानून अति कठोर और निर्मम था। साथ ही पूरी तरह जन विरोधी भी। वह जानता था कि यदि बीरेश्वर और श्रीहरि उससे उस कानून की विभिन्न धाराओं के बारे में चर्चा करेंगे, तो तर्कपूर्वक उसका समर्थन करना उसके लिए मुश्किल हो जाएगा। जेलर ने कलेक्टर को खबर भेजी थी कि बीरेश्वर और श्रीहरि कह रहे हैं कि वे लोग एक मांग-पत्र लिखकर भेजेंगे, यदि सरकार उस मांग को मान लेती है तभी जाकर वे लोग कलेक्टर से बातचीत करेंगे। कलक्टर को आशंका थी कि उस मांग-पत्र में वे लोग जरूर प्रस्तावित कानून की तमाम धाराओं पर आपत्ति उठाएँगे और उसकी आड़ में उसके साथ बातचीत करना ठुकरा देंगे।

बीरेश्वर और श्रीहरि से प्राप्त मांग-पत्र को बेहद झिझक के साथ खोला कलेक्टर ने। उस छोटे से पत्र के नीचे दोनों के हस्ताक्षर थे। पत्र में प्रेस कानून का कोई उल्लेख नहीं था। उसमें एक मात्र मांग यह थी कि भिकारी नायक का तबादला उस जेल से कहीं और कर दिया जाए।

तमाशबीन

बस की सबसे पिछली सीट पर आराम से बैठकर फिर से किताब पढ़ने में ध्यान लगाया संबित ने। सड़क उतनी अच्छी नहीं थी और गाड़ी की डगमगाहट में पढ़ना मुश्किल था, परंतु अन्य लोगों की निरर्थक बातचीत में शामिल न होकर अलग रहने के लिए वह किताब थी एक सहज बहाना। उसके मित्र इस वक्त एक नेता की दलगत राजनीति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म हस्तकौशल के बारे में चर्चा कर रहे थे। और उस विषय में जरा भी रुचि नहीं थी संबित की। वह अक्सर इसी तरह अलग-थलग रहा करता था अपने सहकर्मी से। तभी वे लोग उसे घमंडी समझते थे। किंतु उसकी प्रकृति और मनोवृति वैसी ही थी और वह उससे संतुष्ट था। उसे गर्व था कि जब अन्य संवाददाता छोटी-छोटी समस्याओं में उलझे रहते थे, तब वह विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं पर पढ़ने लायक तेजतर्रार लेख लिखा करता था और सत्ता पर काबिज लोगों की तीखी आलोचना करने से पीछे नहीं हटता था। इसलिए वह बेहद अप्रिय था, लेकिन उसके लेख की कोई उपेक्षा नहीं कर पाता था।

बाहर दोपहर की तेज धूप थी, किंतु वातानुकूलित मिनी बस के अंदर आराम था। उनकी यात्रा की सारी व्यवस्था की थी सरकार ने। बस में ठंडा पानी और फ्लास में चाय भरी थी। उन लोगों की सुविधा-असुविधा का ध्यान रखने के लिए उनके साथ जा रहा था एक जनसंपर्क अधिकारी। भाँड़ जैसा दिखने वाला वह अफसर इस काम के लिए पूर्णतः उपयुक्त था। एक कर्त्तव्यनिष्ठ एयर हॉस्टेस की तरह वह समय-समय पर उन्हें पीने का पानी और चाय देता था और उनके मनपसंद गीतों का टेप बजाकर सुनाता था। फिर भी संतुष्ट नहीं थे संवाददाता। चाय के साथ सिर्फ बिस्कुट देखकर एक ने कहा, क्या साहब, आजकल बाजार में काजू-बादाम नहीं मिलते हैं क्या? हालाँकि वह अच्छी तरह जानता था कि काजू-बादाम जैसी चीजें साथ नहीं आई थीं, भाँड़ ने अपने पैर के पास रखे बक्से

में बड़ी बारीकी से ढूँढ़ने के बाद कहा, सर, सरकारी गेस्ट हाउस का काम ऐसा ही होता है; मुझसे कहा था कि काजू का पैकेट रख दिया है, पर कहाँ है? अब किसी अच्छे होटल से चाय के साथ की चीजें लेनी होंगी। सरकारी काम पर विश्वास नहीं रहा। भाँड़ जानता था कि जब संवाददाता छोटी-छोटी बातों पर सरकार की आलोचना करें, तब उनके हाँ में हाँ मिलाना चालाकी का काम है। इस तरह काजू-बादाम के अभाव की समस्या सरकारी असमर्थता पर थोपते हुए भाँड़ ने कहा, पर ठंडी बियर मैंने खुद रखवाई है; उसमें किसी तरह की गड़बड़ी नहीं हो सकती। अपनी जेब से बोतल-ऑपनर निकालकर उसने कहा, आप लोग जब कहेंगे निकाल दूँगा।

जागरण का विशेष संवाददाता, जो कि असमय में चाय पीने पर विश्वास नहीं करता था, बोला, तो फिर देर किस बात की है? बस के अंदर भले ही धूप नहीं हैं, लेकिन बाहर तो गला सूखने की हालत है। उसने अभी-अभी चाय पी थी। 'दैनिक सबेरा' वाले ने कहा, अभी तो सिर्फ साढ़े दस ही बजे हैं।

किंतु जब भाँड़ ने आइस बॉक्स से बियर की एक ठंडी बोतल निकालकर सबको दिखाई, किसी को कोई शिकायत नहीं रही। अति कुशलता के साथ गिलास में बियर डालकर उसने एक-एक करके सबकी ओर बढ़ा दिया, और बोला अच्छा हुआ आप लोगों ने शुरू कर दिया, वरना तली हुई मछली ठंडी हो जाती। 'वार्ता' के संपादक ने पहले एक घूँट बियर पीकर कहा, यहीं हमें इतना खिला रहे हो, दोपहर में लंच मिलेगा या नहीं? भाँड़ ने कहा, अवश्य मिलेगा सर, फॉरेस्ट बंगले में उसका इंतजाम किया गया है। उसकी चिंता न करें। 'जनमत' ने कहा, वहाँ जंगल में अच्छा खाना मिलेगा या उसी गेस्ट हाउस जैसी व्यवस्था है? भाँड़ ने कहा, सबकुछ मिलेगा सर। मुख्यमंत्री जी ने स्वयं कंजरवेटर को कहा है। हमें सिर्फ ठीक समय पर पहुँचना भर है।

सुबह सात बजे सबको निकलना था, किंतु सभी अपनी-अपनी खुशी से पहुँचे और 'वार्ता' के संपादक के न पहुँचने के कारण अंत में बस उनके घर तक गई। इस तरह उन लोगों ने राजधानी छोड़ी करीब नौ बजे। भाँड़ ने हिसाब लगाकर देखा कि उन्हें जहाँ शाम तक पहुँचना था, अब पहुँचना संभव नहीं। फॉरेस्ट बंगले में लंच के लिए रुकने के बाद उससे आगे और चार घंटे की यात्रा करने में रात जरूर हो जाएगी। अच्छा हुआ, रात को उन्हें खिला-पिलाकर सुला देगा; आज उन्हें शहर के भीतर घूमना नहीं पड़ेगा।

राजधानी से चार सौ किलोमीटर दूर उस कम परिचित छोटे से शहर में सांप्रदायिक दंगा भड़क गया था पंद्रह दिन पहले। उस दंगे में तेरह लोग मारे गए थे, अनेक घायल हुए थे, दुकान, बाजार, बस्ती में आगजनी से काफी नुकसान हुआ था। वहाँ से जो रिपोर्टें आईं थीं, उनसे पता चलता था कि पुलिस की लापरवाही से ही ऐसे हालात पैदा हुए थे। दंगे के कारण कुछ दिनों तक ऐसा माहौल था कि बाहर के लोग, यहाँ तक कि राजधानी के अखबार वाले भी वहाँ जाने से डरते थे। स्थानीय प्रशासन के विरुद्ध तरह-तरह के आरोपों के बावजूद सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की थी और एक जाँच-आयोग बिठाने की मांग भी ठुकरा दी गई थी। इसकी वजह से वहाँ के प्रशासन ने इस समय निर्भय होकर शांति बनाए रखने की ओट में शहर के लोगों पर दमन लीला शुरू कर दी थी। दंगे के आतंक से उबर रहे लोग अब पुलिस की यातना सहने को बाध्य थे। अब उस बारे में अखबारों में खबर छपने पर मुख्यमंत्री ने तय किया कि वे राजधानी से कुछ संवाददाताओं को वहाँ भेजेंगे; वे लोग खुद ही जाकर देख आएँ कि दंगा-फसाद खत्म होने के बाद वहाँ किस तरह अमन चैन लौट आया है। राजधानी से दस संवाददाता सरकारी व्यवस्था में जा रहे थे दंगा प्रभावित क्षेत्र को अपनी आँखों से देखकर उसके बारे में लिखने के लिए। संबित ने सोचा नहीं था कि जागरण, जनमत, सकाल के संवाददाताओं के साथ उसे भी निमंत्रण मिलेगा। लेकिन मुख्यमंत्री एक चतुर राजनीतिज्ञ थे। वे जानते थे कि ऐसे सरकारी दौरे पर गए संवाददाता ऐसा कुछ नहीं देख पाएँगे जो उनके विरुद्ध जाए। इसके अलावा तटस्थ और स्वतंत्र संवाददाता के तौर पर मशहूर संबित जैसे लोग वहाँ से लौटकर यदि आँखों देखा हाल प्रस्तुत करेंगे तो वह सरकार के पक्ष में ही जाएगा।

बियर पीते हुए संबित ने दूसरों की ओर देखा। सभी पूरी तरह मस्त होकर पीने में जुटे थे। भाँड़ एक हाथ में अपना गिलास संभाले हुए चलती बस में सबके आगे तली हुई मछली का प्लेट दिखाता जा रहा था। पूरा दृश्य संबित की आँखों में चुभ रहा था, किंतु उनका साथ देने के सिवाय उसके पास और कोई चारा नहीं था। वरना सभी उसे घमंडी कहेंगे। उसे अपने लेखन के लिए हमेशा दूसरे संवाददाताओं के निशाने पर रहना पड़ता था। दूसरे लोग जब सरकार की गलतियों से आँखें मूँद लेते थे अथवा हल्के से उनकी आलोचना करते थे, संबित उसके लिए प्रयोग करता था कठोर से कठोरतम भाषा। इसके लिए संवाददाताओं के बीच उसे तरह-तरह की बातें सुननी पड़ती थीं। एक बार किसी ने उससे कहा

था, कॉलेज के दिनों में हड़ताल करके जब हम लोग जेल जाया करते थे, तू क्या करता था याद है? तू लाइब्रेरी में बैठकर पढ़ा करता था। कागज, कलम लेकर आलोचना करना बहुत आसान है। यदि साहस है तो क्यों नहीं खुद ही जाकर विरोध में शामिल होता है?

कई मर्तबा इस बात को लेकर तर्क-वितर्क होता है कि एक संवाददाता का कर्त्तव्य क्या है? उसके सामाजिक दायित्व क्या हैं? अखबार का फोटोग्राफर क्या करेगा—खुद को आग लगाकर आत्मदाह करने वाले आदमी का फोटो खींचेगा या जाकर उसे बचाएगा? बुद्धिजीवियों को कहाँ तक सक्रियता दिखानी होगी, यह अब तक तय नहीं हो पाया है। बुद्धिजीवी हमेशा यही चाहते हैं कि घटनास्थल पर पर्यटक की तरह पहुँचकर आंदोलन में शामिल होंगे, वहाँ बहुत कम समय रहक़र, आंदोलन की तैयारी और परिणाम का जरा भी कष्ट न सहकर, उसके रोमांच का उपभोग करेंगे और वहाँ से सुरक्षित लौट आएँगे। संबित अक्सर इस बारे में सोचता है, पर कभी कोई समाधान नहीं ढूँढ़ पाता इस सवाल का। इस वक्त तली हुई सरकारी मछली खाकर बियर पीते-पीते उसके सिर में फिर से यही सवाल उठा, लेकिन उसने जबरन इस बात को अपने मन से दूर कर दिया।

फॉरेस्ट बंगले में बस पहुँची दोपहर ढाई बजे। वन विभाग ने वाकई बहुत अच्छी व्यवस्था की थी खाने-पीने की। एक दिन पहले वहाँ पहुँचकर विभाग के एक वरिष्ठ अफसर ने स्वयं सारा इंतजाम किया था। पिछली रात जंगल में चिड़ियों का शिकार किया गया था और हिरन मारकर लाया गया था। और बियर की बोतलें ठंडी की गई थीं बर्फ में। डायनिंग रूम के टेबुल पर सफेद चादर बिछी थी और डाकबंगले के बरामदे में खाकी पोशाक पहनकर जंगल के कुछ गार्ड आदेश का इंतज़ार कर रहे थे। संवाददाताओं के समूह के आराम से बैठ जाने पर भाँड़ ने कहा, कुछ भी कहिए साहब, आप वन विभाग की व्यवस्था में मीनमेख नहीं निकाल सकते। उसके बाद वन विभाग के बाबुओं पर सारी जिम्मेदारी सौंपकर भाँड़ भी आराम से बैठ गया। क्षणभर में गिलास में ठंडी बियर और प्लेट में माँस पहुँच गया सबके सामने। गर्मियों की गर्मी और यात्रा की थकान भूलने के लिए सबने उसमें ध्यान दिया एवं बातचीत सीमित हो गई थी ड्रिंक की ठंडक और माँस के स्वाद पर। डेढ़ घंटे तक यह सिलसिला जारी रहा और जब यह देखने में आया कि उनमें से कोई भी उठने की मनोदशा में नहीं है, जंगल के अफसर ने आकर भाँड़ से धीरे-धीरे कहा, और बियर नहीं है। तुरंत ही भाँड़ का नशा उतर

गया। वह उठकर खड़ा हो गया और एक जिम्मेवार व्यक्ति के अंदाज में बोला, सर खाना ठंडा हो रहा है; आइए चलिए, डायनिंग रूम में। 'जनमत' ने अपने गिलास में बचा ड्रिंक एक साँस में पी लेने के बाद बोला, क्यों स्साले खाने-खाने की रट लगाए हुए हो? कौन आया है यहाँ खाने? तुम स्साले सोच रहे हो हमें इस तरह खिला-पिलाकर सरकार को सुहाने लायक बातें लिखवा लोगे, है ना? वह और भी कुछ कहना चाहता था, भाँड़ ने कहा, क्या बात कर रहे हैं सर? मैं तो सिर्फ देर हो गई है, इसलिए कह रहा था। उसने जंगल के अफसर को धमकाने के स्वर में कहा, अब हम डायनिंग रूम में नहीं जा सकते। यहीं प्लेट में लाकर दे दो।

अपना गिलास नीचे रखते हुए संबित ने मन ही मन सोचा, क्या सच में वह इन लोगों से अलग है? बस के एक कोने में बैठकर किताब पढ़ने से क्या वह खुद को अलग कर सकता है दूसरों से? क्या वह घर पर बैठकर विरोधी लेख लिखता रहे या उतर जाए सड़क पर मुँह में नारे और हाथ में झंडा लेकर? यह साहस उसमें नहीं है। यदि उसमें यह साहस होता तो क्या कॉलेज की हड़ताल के समय वह लाइब्रेरी में बैठकर किताबें पढ़ता? बियर के नशे में ये बातें सोचते हुए संबित ने अपने हाथ में लिए प्लेट से खाना शुरू कर दिया। 'जनमत' ने खाते समय सरकार को और भी गाली देने लगा। इस तरह खाना-पीना काफी देर से समाप्त हुआ और उन सबके बस में बैठने तक साढ़े पाँच बज चुके थे। अब पता चला कि 'जागरण' बस में नहीं है। भाँड़ ने जाकर बाथरूम में उल्टी करके पड़े आदमी को उठाया और कुछ लोगों की मदद से उसे ले जाकर बस में बिठा दिया।

बस अपने गंतव्य स्थल पर पहुँची रात को आठ बजे के बाद। संबित सो गया था, उसने आँखें खोलकर देखा कि बस शहर में घुस रही थी। छोटे शहर का एक लक्षण होता है कि वहाँ की बत्तियाँ रात को धीमी-धीमी जलती हैं, रात में सड़क पर लोगों की आवाजाही कम हो जाती है और एक उदास-उदास-सा भाव पूरे शहर में छा जाता है। बस रुकी एक ऐसे ही शहर के केंद्र गाँधी चौक पर, जहाँ गाँधी जी की मूर्ति साफ-साफ नहीं दिख रही थी, लेकिन सामने होटल का निअन साइन-बोर्ड साफ दिख रहा था। उस चौक की छोटी-छोटी दुकानों के बीच जो तीन मंजिला इमारत थी, वह था अर्धवृत्ताकार पार्क होटल। होटल के नाम का संबंध शायद चौक पर गाँधी जी की मूर्ति के चारों ओर लोहे के घेरे में बने छोटे से फूल के बगीचे के तथाकथित पार्क से था। होटल की सारी खिड़कियाँ

चौराहे की ओर खुलती थीं और कमरों की बत्तियों के कारण बस के अंदर से वह होटल कोई प्रसिद्ध ऐतिहासिक महल लग रहा था। काफी सोचने के बाद संबित को याद आया कि वह होटल दिख रहा था रोम के टूटे कलिसिअम-सा, जिस पर बैठकर प्राचीन रोम के दर्शक रंगभूमि पर सिंह द्वारा इंसान को खाने के दृश्य का उपभोग किया करते थे।

बस रुकने पर भाँड़ ने सबको आधी नींद से जगाया और होटल के भीतर ले जाया गया। यह उस शहर का एकमात्र ऐसा होटल था जिसमें इस तरह के किसी दल को ठहराया जा सकता था। सबके रहने के लिए बीच वाली मंजिल में दस कमरों का इंतजाम किया गया था। निचली मंजिल का एक कमरा पूरा खाली कराकर वहाँ पीने की व्यवस्था की गई थी। सबको यथाशीघ्र तैयार होकर निचली मंजिल पर आने को कहकर भाँड़ होटल के मैनेजर के साथ मिलकर व्यवस्था में जुट गया। सिर्फ चालीस हजार की जनसंख्या वाले इस छोटे से शहर में कभी कोई उत्तेजनापूर्ण घटना नहीं घटी थी, यह सांप्रदायिक दंगा होने तक। सैकड़ों वर्षों से हिंदू और मुसलमान शांति से रहते आए थे और किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था कि वे लोग एक-दूसरे के जान-माल पर धावा बोलेंगे। यह घटना संभव हुई थी बाहर से आए दो पक्षों के नेताओं और गुंडों के उकसाने से और उस वक्त इस होटल के अलग-अलग कमरे बन गए थे उनके मंत्रणा कक्ष।

निचली मंजिल के एक ऐसे ही कमरे में बैठकर इस वक्त वे लोग रात्रिभोज से पहले के ड्रिंक का सदुपयोग कर रहे थे। यदि वे लोग शाम होने तक पहुँच गए होते तो उसी दिन दंगा प्रभावित इलाकों में जाकर कम से कम कुछ देख सकते थे। अब यह काम सुबह ही करना होगा। संबित नीचे न जाकर अपने कमरे में बैठकर इस यात्रा के बारे में सोच रहा था। उसे अकेले आकर अपनी सुविधानुसार स्वतंत्र रूप से उस परिस्थिति का अवलोकन करना चहिए था। सरकारी व्यवस्था में एक शराबी दल के साथ आकर एक ऐसे गंभीर विषय का क्या मुआयना किया जा सकता है इतने कम समय में? दरअसल सबसे अच्छा तो यह हुआ होता कि वह दंगे की खबर मिलते ही यहाँ आ गया होता। उसने ऐसा क्यों नहीं किया? वह तुरंत यह जवाब दे सकता है कि उस वक्त उसे एक जरूरी काम था। लेकिन वह जानता था कि उसके मन में दंगा प्रभावित इलाके में जाने का भय था। उसने खिड़की के पास खड़े होकर चौक वाली गाँधी जी की मूर्ति की ओर देखा। धीमी रोशनी में गाँधी जी का चेहरा साफ दिखाई नहीं

दे रहा था। किंतु कोई अस्पष्टता नहीं थी हाथ में लाठी लिए नूआखाई की ओर जा रही मूर्ति की उन्मत्त चाल में। दंड मिले होने-सी मनःस्थिति लिए वह खिड़की के पास से लौट आया और नीचे जाकर अपने मित्रों का साथ दिया।

फिर से उसी दिन वाली स्थिति दोहराई जा रही थी वहाँ। 'जनमत' और भी अधिक कटु और अश्लील भाषा में सरकार को गरिया रहा था, जबकि सभी जानते थे कि लिखते समय वह सरकार का समर्थन ही करेगा। हाथ में गिलास लिए 'जागरण' अपनी कुर्सी पर सो गया था। अन्य लोग स्कॉच ह्विस्की और सूचना विभाग की प्रशंसा कर रहे थे। उनमें से कोई भी उस दंगे की बात नहीं कर रहा था, जिसके लिए वे लोग इतनी दूर आए थे।

'दैनिक सुबह' ने खिड़की से दिख रही गाँधी जी की मूर्ति की ओर सबका ध्यान खींचते हुए कहा, इतने वर्षों से खड़े-खड़े थक जाने के बाद गाँधीजी ने यह क्या किया? उसकी वह आख्यायिका सबको मालूम थी इसलिए सबने चिल्लाकर कहा, हम जानते हैं, तुम चुप रहो। लेकिन 'दैनिक सुबह' चुप नहीं रहा। उसने सबको चुप कराते हुए कहा, उनके पैरों के पास रोजाना रात को जो आदमी सोने आता था, उससे गाँधी जी ने कहा, बेटे! मैं खड़े-खड़े थक चुका हूँ, मेरे लिए एक घोड़े का इंतजाम करो। उस आदमी ने उनकी बात सुनकर सुबह-सुबह जाकर मंत्री जी से यह बात बताई। मंत्री जी रात को उसके साथ गाँधी जी के पास पहुँचे। मंत्री जी को देखकर गाँधी जी ने उस आदमी से कहा, बेटे! मैंने तुमसे घोड़ा लाने को कहा था, तुम यह गधा कहाँ से उठा लाए? उस पुराने चुटकले को सुनकर कोई आमोदित नहीं हुआ, किंतु 'दैनिक सुबह' हँसते-हँसते लोटपोट हो गया।

खाना-पीना खत्म हो जाने के बाद भाँड़ ने खबर दी कि मिनी बस खराब हो गई है, इसलिए कल उन लोगों को पुलिस की जीप में घूमने जाना होगा। संबित समझ गया कि यह पूर्व परिकल्पित है। 'जनमत' ने कहा, स्साले खबरदार, हम पुलिस की जीप में जाएँगे जरूर, परंतु हमारे साथ पुलिस वाले न हों! भाँड़ ने कहा, सर पुलिस जाती आपकी सुरक्षा के लिए। लेकिन यदि आप मना कर रहे हैं तो पुलिस विभाग के ड्राइवर के सिवाय और कोई नहीं होगा जीप में। यदि कुछ होगा, तो देखा जाएगा। बहरहाल, मैं तो रहूँगा ही आप लोगों के साथ।

अपने कमरे में आकर कपड़े बदलने के बाद सोने की कोशिश की संबित ने। लेकिन दिनभर की थकान और ड्रिंक करने के बावजूद उसे नींद नहीं आ रही थी। घड़ी देखी, रात के बारह बजे थे। न सोया तो कल दिन में काम नहीं कर

पाएगा। उसी तरह बिस्तर पर लेटे-लेटे करवट बदलते हुए उसे नींद आ ही रही थी कि अचानक किसी की चीख से उसकी नींद उचट गई। हड़बड़ाकर उठकर उसने कमरे की लाइट जला दी और खिड़की के पास जाकर बाहर देखने लगा। बाहर चाँदनी बिखरी हुई थी और सबकुछ साफ दिखाई दे रहा था। गाँधी जी की मूर्ति के पास दो पुलिसवालों ने एक आदमी को पकड़ रखा था। वह आदमी क्या कर रहा था कुछ सुनाई नहीं दे रहा था, किंतु उसके हाव-भाव से आतंक प्रकट हो रहा था। उस आदमी ने याचनाभरी दृष्टि से खिड़की की ओर देखा। पुलिसवालों ने उसे लाठी उठाकर पीटना शुरू कर दिया और वह आदमी मर गया-मर गया कहकर चिल्लाते हुए नीचे गिर गया। दोनों पुलिसवाले उसे नीचे से उठाकर, उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए एक गली में ले गए।

स्तब्ध हो खड़ा रह गया संबित। उसे क्या करना चाहिए था? दौड़ते हुए नीचे जाकर वह पुलिसवालों को रोक सकता था। चिल्लाकर होटल के लोगों को जगाकर पकड़ सकता था दोनों पुलिस को। उसने खिड़की से झाँककर दोनों ओर देखा। होटल की सारी खिड़कियाँ खुली थीं। हालाँकि और किसी की लाइट नहीं जल रही थी, शायद उसी की तरह सभी उस आदमी की चीख सुनकर खिड़की के पास आकर खड़े हुए होंगे, पर किसी ने कोई कार्रवाई नहीं की उसी की तरह। संबित ने बाहर की ओर झाँका। इस वक्त कोई नामोनिशान नहीं था पलभर पहले घटी उस घटना का। चाँदनी में पार्क झलक रहा था। हाथ में लाठी लिए गाँधी जी खड़े थे। सबकुछ शांत था। बिस्तर पर लौटकर उसने फिर से सोने की चेष्टा की। इस बारे में उसे कुछ-न-कुछ करना ही होगा। सुबह दूसरे साथी भी जरूर इस बात को उठाएँगे और वह अन्य विषयों की जाँच करने के साथ-साथ इस घटना की भी छानबीन करेगा। अपने लेख में वह इसका खास तौर पर उल्लेख करेगा और अपना वर्णन शुरू करेगा इस आधी रात के आतंक से। अपने लेख के कुछ वाक्य उसने मन ही मन तैयार भी कर लिए। किंतु भाषा का कोई भी प्रयोग समर्थ नहीं था उस आदमी के आतंक को साकार करने के लिए। संबित ने सोने की चेष्टा की, लेकिन उस आदमी की चीख फिर से उसके अंतःस्थल को बींध गई। अपनी निष्क्रियता से घृणा करके बिस्तर पर लेटा रहा वह।

सुबह सभी इस तरह मिले मानो पिछली रात कुछ हुआ ही नहीं। संबित ने सोचा वह स्वयं इस बात को उठाएगा, लेकिन उसे संकोच हुआ कि पलटकर उसी से सवाल किया जाएगा कि उसने तुरंत सबको जगाकर वह बात क्यों नहीं

बताई। उस आदमी की चीख अपनी-अपनी खुली खिड़की से किसी और ने नहीं सुनी होगी, यह संभव नहीं है। हो सकता है, सभी उसी तरह सोच रहे थे, मैं क्यों दूसरों के आगे दोषी बनूँ, कुछ न बोलकर चुप रहना ही बेहतर है। तो फिर संबित दूसरों से किस गुण में अच्छा है? इस वक्त और कोई उस बात को नहीं उठा रहा था, अतः संबित के लिए उस बारे में लिखना भी संभव नहीं होगा। वह किस तरह उस घटना के बारे में लिखकर सारी दुनिया को बताएगा अपनी नामर्दानगी के बारे में? ये सारी बातें सोचते समय अचानक उसके मस्तिष्क से उस आदमी की चीख निकलकर चली गई। संबित कुछ देर किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा बैठा रह गया।

जैसी उम्मीद की जा रही थी, उनकी जाँच सही तरीके से हो गई। पुलिस की जीप गली में घुसते समय देखा गया कि मकानों में महिलाओं और बच्चों के सिवाय और कोई नहीं है, मर्द काम पर जा चुके हैं। महिलाओं ने कहा कि वे दंगे के बारे में कुछ नहीं जानतीं। जो मकान जल गए थे, वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। दुकान-बाजार के लोगों ने कहा, सब ठीक-ठाक है। एक आदमी कुछ कहना चाहता था, उससे उसका नाम पूछने पर वह वहाँ से भाग गया। पत्रकारों ने नोटबुक में सब लिख लिया, फोटो खींचे, समझ गए कि हालात नियंत्रण में हैं। अब कोई दंगा-फसाद नहीं है यहाँ। थाने में जाकर उन्होंने जान-माल की हानि का ब्यौरा लिख लिया, थानेदार से यह आश्वासन मिल गया कि शहर में अमन-चैन लौट आया है। होटल थाने से ज्यादा दूर नहीं था। थाने के पास जीप छोड़कर वे लोग पैदल ही लौट आए। बस अब तक ठीक हो चुकी थी। अपना-अपना दायित्व पूरी निष्ठा से संपन्न करने की संतुष्टि लिए सभी घर लौट आए।

घर लौटकर मानसिक संकट में पड़ गया संबित। लाख कोशिश करने के बावजूद वह अपने मन से उस रात की घटना को निकाल नहीं सका। उस असहाय आदमी की चीख रह-रहकर उसे परेशान करने लगी। वह अखबार के लिए अपनी रिपोर्ट लिखने बैठ गया, किंतु एक पंक्ति तक नहीं लिख सका। उसे अपनी समझ पर संदेह हुआ। वह सोने चला गया, किंतु 'मर गया-मर गया' के आर्त्तनाद से उसकी नींद टूट गई।

उसने मन लगाकर अपने संवाददाता मित्रों द्वारा लिखे गए लेखों को ध्यान से पढ़ा। सबने पुराने अखबारों में छपी खबरों की पुनरावृत्ति ही की थी और लिखा था कि हालात सामान्य हो चुके हैं। पुलिस की दमन लीला के बारे में जो आरोप

लगे थे, उस बारे में किसी ने कुछ नहीं लिखा था। दरअसल उस एक दिन की सरकारी-यात्रा में पता भी क्या पड़ने वाला था उस बारे में? सिर्फ किसी एक के लेख में सरकार की थोड़ी-बहुत आलोचना थी; वह था 'जागरण' का संवाददाता।

कुछ दिनों तक संबित के मन का संतुलन बिगड़ा रहा। पुलिस से मार खा रहे उस आदमी की चीख समय-असमय आकर उसे विचलित करने लगी। किसी के साथ उस बारे में चर्चा कर लेता तो शायद उसे शांति मिल जाती, लेकिन अपनी कमजोरी वह कैसे किसी के आगे कहे। अंत में जब उसकी मनःस्थिति असहनीय होने लगी, एक दिन सुबह वह 'जागरण' के दफ्तर में गया। वहाँ के संवाददाता से कई विषयों पर चर्चा की, लेकिन संबित द्वारा अनेक संकेत देने के बावजूद उस संवाददाता मित्र ने उस दिन की रात के बारे में कुछ भी नहीं कहा। अंततः संबित ने तय किया कि वह उससे सीधे-सीधे पूछेगा। उसने कहा, उस दिन आधी रात को गाँधी चौक पर मैंने दो पुलिसवालों को एक आदमी को पीटते हुए देखा था। जब संबित उससे यह बात बता रहा था, उस आदमी की चीख पुनः सुनाई दी। संबित ने पूछा, क्या आप इस बारे में कुछ जानते हैं?

काफी देर तक उस संवाददाता ने कोई जवाब नहीं दिया। अंत में बेसब्र होकर संबित पुनः सवाल पूछने ही वाला था कि उसने उत्तर दिया; नहीं, मैंने ऐसा कुछ नहीं देखा। उसके जवाब ने और भी चिंता में डाल दिया संबित को। क्या उसने स्वयं ऐसा कुछ नहीं देखा था और वह सारी अनुभूति उसके नशाग्रस्त मन का विलास मात्र था? ऐसा सोचने पर उसका मन कुछ आश्वस्त हो गया, किंतु उसी क्षण उसने फिर से वह चीख सुनी। संबित ने पूछा, क्या आप सच कह रहे हैं? संबित को बाहर तक छोड़ने आते समय उसने कहा, सच उतना ही होता है, जितना हम सह सकें।

घर लौटते समय काफी थका-थका सा और उदास लग रहा था संबित। वह खा-पीकर बिस्तर पर लेट गया। नींद आते समय उस चीख ने फिर उसे उत्पीड़ित किया, उसने तय किया कि वह दुबारा वहाँ जाकर इस समस्या का समाधान करेगा। उसे पता लगाना होगा, उस दिन रात में उस आदमी का क्या हुआ। उसे यह कठोर सत्य सहना ही होगा।

वह गाड़ी लेकर चल पड़ा। शहर छोड़ने के बाद खराब सड़क शुरू हो गई और बेमौसम बरसात होने लगी। फिर भी संबित ने तय किया कि वह कहीं रुकेगा नहीं। बीच में एक जगह ऱास्ता भूल जाने पर उसे काफी दूर से फिर

लौटना पड़ा। उसके बावजूद धैर्य खोए बिना संबित आगे बढ़ता चला गया, उस सच्चाई से रूबरू होने के लिए।

जब वह उस शहर में पहुँचा, आधी रात हो चुकी थी और चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ था। गाँधी चौक से होटल की ओर देखकर उसने सोचा, पहले आराम कर लिया जाए, जो कुछ करना होगा कल सुबह करेगा। लेकिन अगले ही क्षण उसने तय किया कि वह इसी वक्त थाना जाकर पुलिस से उस बारे में पूछताछ करेगा।

थाना के सामने गाड़ी रोककर वह उतरा और अंदर चला गया। टेबुल के पास दो पुलिसवाले बैठे थे। संबित ने पहचान लिया कि उस दिन रात को इन्हीं दो पुलिसवालों को उसने देखा था चौक पर। पुलिस ने संबित से पूछा, क्या चाहिए? संबित बोला, सात दिन पहले गाँधी चौक पर मैंने देखा था दो पुलिसवाले एक आदमी को मारते हुए ले जा रहे थे। मैं जानना चाहता हूँ कि आखिर क्या हुआ उस आदमी का। एक अन्य पुलिसवाला उसकी ओर देखकर मुस्कराया, किसी रजिस्टर के पन्ने पलटने के बाद बोला, यहाँ तो ऐसी कोई घटना नहीं घटी। संबित ने कहा, मैंने यह अपनी आँखों से देखी थी। दोनों पुलिसवाले उठकर खड़े हो गए, सिर पर टोपियाँ पहनीं, हाथों में लाठियाँ पकड़ीं, संबित से बोले, चलो हमें दिखाओ वह जगह।

थाने से पैदल चलकर वे लोग गाँधी मूर्ति के पास गए। पुलिसवाले ने कहा, अब बताओ, क्या देखा था? संबित बोला, मैंने तुम दोनों को देखा था, एक आदमी को मारते हुए ले जा रहे थे। दोनों पुलिसवाले उसके करीब आ गए और उनमें से एक ने लाठी उठाई। संबित को अब जो चीख सुनाई दी वह उसकी अपनी थी। उसने चारों ओर देखा, कहीं कोई नहीं था। उसने देखा, होटल के एक कमरे की लाइट जली। दोनों पुलिसवालों ने मिलकर उसे लाठियों से मारना शुरू कर दिया और वह 'मर गया-मर गया' कहकर नीचे गिर पड़ा। दोनों पुलिस ने उसे नीचे से उठाया। उसने दुबारा होटल की खिड़कियों की ओर देखा, लेकिन वहाँ से कोई आश्वासन नहीं मिला। पुलिसवाले उसे खींचते हुए एक पतली-सी गली में ले गए जहाँ से अब उसे होटल की खिड़की दिखाई नहीं दे रही थी।

भृत्य

सुबह दफ्तर जाने के लिए निकल ही रहा था कि सुधाकर को उसकी पत्नी ने कहा, गनीमत है, अब कल से इतनी जल्दी दफ्तर नहीं जाना पड़ेगा। सुधाकर ने सिर घुमाकर अपनी पत्नी की ओर देखा। घर से निकलते समय इसी तरह कोई कड़वी बात कहकर उसका मिज़ाज खराब कर देना रेणुका का स्वभाव है। सुधाकर ने सोचा, शायद रेणुका ने आज तक ऐसी भी बात नहीं कही होगी जिसमें उसके प्रति एक प्रच्छन्न आलोचना न रही हो। दांपत्य संबंध को लेकर पति-पत्नी की बातचीत हमेशा दोहरे अर्थों वाली हुआ करती थीं; उसमें कहा कुछ जाता था, अर्थ कुछ और समझा जाता था। रेणुका के उससे बातचीत करते समय सुधाकर के दिमाग में एक छुपा हुआ शब्दकोश रहता है उन बातों का वास्तविक अर्थ निकालने के लिए। अति सहज, सरल, सीधी-सी बात, किंतु उसमें हमेशा सुधाकर के लिए निहित रहती थी अनेक तरह की कुटिल व्यंजनाएँ। रेणुका कहती, आज हरीशबाबू के घर की नींव पड़ गई। सुधाकर व्याख्या करता : तेरे सभी दोस्तों ने हरीश की तरह मकान बनाना शुरू कर दिया है; तू इतना नालायक है कि अब तक जमीन का एक टुकड़ा तक जुगाड़ नहीं कर सका। रेणुका कहती, दफ्तर से लौटते समय सब्जियाँ देखकर खरीदना। सुधाकर अनुवाद करता : दुकानदार जानते हैं कि तू एक नंबर का बुड़बक है; इसीलिए वे लोग अपना रद्दी सामान तुम्हें बेचने के इंतजार में बैठे रहते हैं। इत्यादि-इत्यादि।

कोई और दिन होता तो वह कुछ खीझकर कम से कम चेहरे पर रेणुका की उस बात की एक मौन मृदु प्रतिक्रिया दी होती, किंतु आज उसका मन वाकई खराब है। आज था ऑफिस के बड़े साहब का आखिरी दिन। उनके रिटायर होने के बाद उनकी जगह कौन आएगा, तय नहीं हुआ था और उस बारे में तरह-तरह की बातें सुनाई दे रही थीं; लेकिन वह सुधाकर की चिंता का विषय नहीं था। उसकी समस्या थी, साहब के उसके जीवन से निकल जाने की बात सोचने से

उसके मन में उपजती थी शून्यता। बीस साल से अधिक समय उसने समर्पित कर दिया था इस मुनीम के पास। उसके भले बुरे, सुख-दुख, अभाव-असुविधा के कर्ताधर्ता विधाता थे उसके बड़े साहब और उन पर अपना समय, जीवन और भाग्य को छोड़कर अब तक पूरी तरह निश्चिंत था सुधाकर।

आज सुधाकर को वह दिन याद आ गया जब उसने पहली बार नायक साहब के पास काम करना शुरू किया था। एक बदमिजाज, कटुभाषी और अभद्र अफसर के रूप में जाने जाते थे नायक साहब, इसलिए उनके पास कोई भी प्राइवेट सेक्रेटरी अधिक दिनों तक नहीं टिक पाता था। कहते हैं, एक बार उनकी डाँट सुनकर किसी कर्मचारी को हार्ट अटैक आ गया था। कुछ दिनों तक उनके पास काम करने के बाद प्राइवेट सेक्रटरी तरह-तरह का बहाना बनाकर लंबी छुट्टी लेकर चले जाते थे। इस तरह की प्रक्रिया में कई बार अदला-बदली के बाद सुधाकर की तैनाती हो गई नायक साहब के पास। उसे इस काम के लिए इसलिए चुना गया था क्योंकि सुधाकर शांत और निरीह स्वभाव का था, गधे-सा खटता था एवं चाहे जितनी भी दिक्कत क्यों न हो, वह छुट्टी लेकर जाने वाला इंसान नहीं था। शुरू-शुरू में तो सुधाकर को भी दिक्कत हुई नायक साहब का दमन सहने में। जिस दिन ज्वाइन करने के बाद पहली बार वह साहब से मिलने गया, नायक साहब उसे नीचे से ऊपर तक देखकर सिगरेट का कश दो बाद खींचने के बाद, राख झाड़ते हुए उससे बोले, मैंने तुम्हें अपने पास बुलाना नहीं चाहा था, इसलिए तुम्हारी बदनसीबी का जिम्मेवार मैं नहीं हूँ। पर हाँ, यदि तुम छुट्टी मांगोगे, छुट्टी तो मिलेगी नहीं, उल्टे तुम पर कार्रवाई की जाएगी। हालाँकि ऐसी बातों से उसका मन खराब हो गया, फिर भी चेहरे पर मुस्कराहट लाने की चेष्टा करते हुए सुधाकर ने कहा, नहीं सर, छुट्टी क्यों लूँगा? साहब के कमरे से बाहर निकलकर जब वह प्राइवेट सेक्रेटरियों के बैठने वाले कमरे में गया, दूसरे लोग उसका इंतज़ार कर रहे थे। पहले कभी नायक साहब से अपमानित हुए एक आदमी ने उससे पूछा, स्साले नायक ने तुमसे क्या कहा? हड़बड़ाकर सुधाकर ने झूठ कहा, मैंने पहले कहाँ और किसके साथ काम किया है, उस बारे में पूछा। एक अन्य भुक्तभोगी ने पूछा, कार्रवाई-फार्रवाई करने की बात तो नहीं कही उन्होंने? उसकी झूठ पकड़ी गई है सोचकर सुधाकर का चेहरा लाल पड़ गया; उसने चेहरे से पसीना पोंछते हुए कहा, नहीं, कार्रवाई की बात क्यों उठेगी? सुनने वाले ने कहा, चलिए ठीक है, देखिए कब तक़ टिकते हैं इस बदमाश के पास!

सुधाकर सिर्फ टिका ही नहीं, उस आदमी के साथ काम करते-करते उसने बिता दिए बीस साल से अधिक। इस बीच नायक साहब का तबादला विभिन्न विभागों में हुआ, पदोन्नति हुई, लेकिन उन्होंने सुधाकर को नहीं छोड़ा। दूसरे विभाग में जाते समय वे सुधाकर को साथ ले गए; जब सुधाकर का प्रमोशन होना था, उसके लिए नया पद सृजित किया गया। मानो दोनों थे एक विधि-निर्दिष्ट आजीवन जोड़ी और एक के बिना दूसरे का काम नहीं चलता था।

यह लंबा समय सुख और दुख में बीता था सुधाकर के लिए। नायक साहब वाकई एक बदमाश इंसान थे और सबके साथ बुरा व्यवहार करते थे। वे जहाँ काम करते थे, नितांत आवश्यक न होने पर कोई उनके पास जाता नहीं था। फलस्वरूप उनसे जिसको काम होता था, वह सुधाकर से जाकर कहता था, क्योंकि सिर्फ सुधाकर ही नायक जी का सबसे अपना और नजदीकी आदमी था एवं साहब तक अर्जी पहुँचाने का एकमात्र माध्यम था। इसलिए नायक जहाँ काम करते थे, उस ऑफिस में सुधाकर की धाक जमी हुई थी। जो भी व्यक्ति नायक साहब से मिलना चाहता, सभी सुधाकर के जरिये जाते थे। कोई कितना ही बड़ा उद्योगपति या अफसर क्यों न हो, नायक से मिलकर लौटते समय सुधाकर से अवश्य मिलते थे और 'कैसे हैं सुधाकर बाबू, सब ठीक-ठाक है ना?' कहना नहीं भूलते थे। यह बात उसे अच्छी लगती थी और इस व्यवस्था का विशेष रूप से उपभोग करता था सुधाकर।

हालाँकि दुनिया में कोई भी चीज मुफ्त में नहीं मिलती। हर चीज की कीमत होती है और हर आनंद के साथ उतना ही दुख भी जुड़ा रहता है। दफ्तर में एक क्षमता संपन्न व्यक्ति होने के लिए सुधाकर को न केवल अधिक समय काम करना पड़ता था, बल्कि उसे काफी झेलना भी पड़ता था—साहब का गुस्सा, गाली-ग़लौज, फाइल फेंकना और दुर्व्यवहार इत्यादि। अधीनस्थ कर्मचारी को परेशान और लांछित करने के सारे कौशल मालूम थे नायक जी को। कभी-कभी वे जरूरी काम है कहकर सुबह आठ बजे दफ्तर पहुँचने को कहते थे सुधाकर को। एक बार देर से आकर भयंकर रूप से तिरस्कृत होने के बाद सुधाकर समय का ध्यान रखने लगा था और ठींक आठ बजे दफ्तर पहुँच जाता था। लेकिन साहब उन दिनों में दस बजे दफ्तर आते थे। सुधाकर यह समझता था कि उसे पहले आने को कहा जाता था सिर्फ परेशान करने के लिए। ठीक उसी तरह, साहब काफी देर तक दफ्तर में बैठते थे और सुधाकर को बिना काम के अंत तक बैठना पड़ता था। इसके अलावा साहब से नाहक ही डाँट खानी पड़ती थी

रोज-रोज। अति कटु, रुक्ष और उच्च भाषा और स्वर में नायक गाली देते थे और हर बार सुधाकर सोचता था कि आज ही लंबी छुट्टी लेकर चला जाएगा।

उग्र स्वभाव के जो अफसर अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ इतना कठोर व्यवहार करते हैं, वे भी मन में अपनी क्रूरता के लिए एक सीमारेखा रखते हैं। वह सीमारेखा निर्भर करती है अधीनस्थ व्यक्ति की सहनशीलता के परिणाम पर। नौकरी की शुरुआत में यह एहसास हुआ था नायक जी को। एक बार एक प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलाकर उसकी ओर दस का नोट फेंकते हुए बोले, पाँच लिफाफे। कृत्यकृत्य होकर नोट उठाकर ले जाने के बदले उस लंबे-चौड़े चेहरे वाले युवक ने उनके सामने तनकर खड़े होकर उनकी आँखों में सीधे-सीधे देखा। मन में अचानक घुसे डर का दमन करके नायक उसे कोई गाली देने की सोच ही रहे थे कि उस युवक ने उल्टा उनसे कहा, यह सरकारी काम नहीं है। इतना कहकर युवक वहाँ से चला गया। कुछ पल चुपचाप बैठे रहे नायक साहब। गनीमत थी कि उस युवक ने उनकी ओर अंगुली दिखाकर उस नोट को उठाकर जेब में रखने को नहीं कहा! जुगत लगाकर उस युवक का तबादला करवाकर नायक ने एक दूसरा प्राइवेट सेक्रेटरी रख लिया उस बार और खुद को एक सीख भी दी थी कि किसी आदमी को डाँटने से पहले उस आदमी की शक्ति, सामर्थ्य और सहनशीलता की सीमा परख लेनी चाहिए। शायद इसी आसान-सी सीख की वजह से दुनिया के बेचारे लाचार गोबरगणेश जैसे लोग ही अक्सर डाँट और मार के शिकार होते हैं। जैसे सुधाकर।

उम्र और अनुभव से नायक यह भी जानते थे कि केवल भर्त्सना और दंड देकर नहीं, बल्कि किसी पर एहसान करके भी उसे खरीदा हुआ नौकर बनाया जा सकता है। इस उपलब्धि को सुधाकर पर लागू करके वे सोचते थे कि वे शत-प्रतिशत सफल हुए हैं। गाली, धमकी, दफ्तर में अधिक देर तक बिठाकर रखना, जरूरत पर छुट्टी न देना, सी.आर में अच्छी राय न देने के साथ ही बीच-बीच में सुधाकर को अनुगृहीत भी करते थे। जब साहब ने सुधाकर के घर पर सरकारी टेलीफोन लगवाने की व्यवस्था करवाई थी, निहाल हो गया था सुधाकर। वह निम्न श्रेणी के कर्मचारियों की कॉलोनी में रहता था और सिर्फ उसी के घर पर टेलीफोन लगने की खबर उसने रेणुका को दी थी, रेणुका खुशी से गदगद क्या होगी, बोली, अब तो आधी रात को भी साहब का काम करने की सुविधा हो जाएगी तुम्हें! वाकई समय-असमय साहब उसे टेलीफोन पर ढूँढ़ा करते

थे। अक्सर साहब टेलीफोन पर ही उसे डिक्टेशन देते थे। सुधाकर टेलीफोन के पास ही अपनी नोट-बुक और पेंसिल रखकर साहब के फोन का इंतजार किया करता था। एक बार जब वह फोन पर नहीं मिला, साहब ने उससे कहा, मैं सोचता हूँ अब तुम्हारे घर का टेलीफोन कटवा दूँगा। वह टेलीफोन सुधाकर के लिए कॉलोनी में उसकी प्रतिष्ठा का एक प्रतीक था। उसे खोने की आशंका से सुधाकर ने सोचा कि वह साहब के आगे घिघियाएगा, लेकिन उसके मुँह से भय, विनय और अनुरोध मिला एक 'सर' शब्द ही निकला।

उस बार टेलीफोन नहीं कटा, लेकिन उसी दिन से नायक साहब उस धमकी को अस्त्र के रूप में व्यवहार करने लगे। टेलीफोन न कटने के कारण सुधाकर हर महीने साहब के प्रति ऋणी रहता था। इसी तरह सुधाकर को बीच-बीच में खुशी देने और ऋणी बनाने के लिए नायक जब विदेश जाते तो सुधाकर की बीबी के लिए परफ्यूम लाकर देते थे, समय से पहले सुधाकर की पदोन्नति हो जाती थी और सुधाकर सबसे ज्यादा ओवरटाइम पाता था। यहाँ तक कि एक बार सुधाकर बीमार पड़ने पर ऑफिस के सभी लोगों को विस्मित करते हुए वह उसके घर जाकर उसे देख आए थे। दस बार गाली देने के बाद उससे पूछते थे, तुम्हारे बेटे का एडमिशन हो गया ना? गाली-गलौज़ सुनने के बाद मुँह सुखाए बैठे होने के समय सहसा थोड़ी-सी मुस्कान पसर जाती थी सुधाकर के चेहरे पर और वह कृत्य-कृत्य हो जाता था।

हालाँकि इस वक्त पिछले बीस साल की बातें याद करते समय सुधाकर के मन में वे सामान्य सुखद स्मृतियाँ न आकर आते थे अति अप्रीतिकर और पीड़ादायक अनुभव। जैसे कि एक बार किसी आगंतुक को साहब के पास भेजने के पाँच मिनट बाद ही साहब का बुलावा आ गया। सुधाकर के उनके कमरे में घुसते समय आगंतुक बाहर निकल रहा था। उसके चेहरे से लग रहा था कि उसकी मुलाक़ात ठीक से नहीं हुई थी। नायक साहब कमरे में तमतमाए हुए बैठे थे। सुधाकर को देखते ही उनका गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया। बोले, इस आदमी को मेरे पास भेजने के लिए तुमने उससे कितने रुपए लिए थे? एक-एक करके सब पर विजिलेंस लगा दूँगा। सुधाकर ने कहा, नहीं सर...। उसे बोलने का मौका न देकर नायक ने पूछा, इस आदमी को कैसे मालूम पड़ा कि उसकी फाइल मेरे पास है? नायक ने वह फाइल सुधाकर पर फेंक दी और बोले, यह फाइल अलमारी में बंद करके रखना; मेरे न कहने तक फाइल नहीं निकलेगी।

स्साले सोचते हैं, पैसे देकर सबको खरीद लेंगे। ब्लडी बास्टर्ड! अंतिम शब्द शायद उस व्यापारी के लिए कहे गए थे, पर कहे गए थे सुधाकर को ही। सुधाकर नीचे से फाइल उठाकर अलमारी में बंद करके अपने कमरे में चला गया। अब तक उसकी कनपटी जल रही थी और बड़ी मुश्किल से उसने अपने आँसुओं को रोके रखा था। मन ही मन सोचा, नहीं, इस बार वह जरूर छुट्टी लेगा।

बाथरूम जाकर अपना मुँह धोने के बाद अपनी सीट पर लौट आया, लेकिन उस अपमान के बारे में किसी को कुछ नहीं बताया। उस दिन घर लौटकर रेणुका को सारी बातें बता दी सुधाकर ने। काफी दिनों से उसने रेणुका को नायक साहब की बातें बतानी छोड़ दी थीं; उसकी वजह थी, नायक का नाम सुनते ही रेणुका गुस्सा करने लग जाती। उनके साथ काम करने के दिन से सुधाकर ऑफिस से देर से घर लौटता था और उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया था। जितनी भी देर घर पर रहता, उतनी देर बच्चों से बातें, घर-गृहस्थी की बातें न करके सुधाकर अक्सर अपने साहब के बारे में ही कहता रहता था और यह बात रेणुका के लिए पूर्णतः विसंगत एवं खीझभरी होती थी। शुरू-शुरू में वह नायक साहब द्वारा उसे डाँटने-फटकारने वाली बातें भी रेणुका को बताया करता था, किंतु वे बातें सुनकर रेणुका कहती थी, ठीक हुआ, तुम तो उनकी इतनी प्रशंसा किया करते थे, उनका गुणगान करते थे? अब समझ में आया ना? इसलिए कुछ दिनों बाद सुधाकर ने पत्नी को अप्रीतिकर घटनाएँ बतानी बंद कर दी, सिर्फ साहब की मीठी बातें कहने लगा। किंतु जिस दिन सुधाकर दफ्तर से मुँह सुखाकर लौटता था, रेणुका साफ-साफ समझ जाती थी कि आज साहब की डाँट पड़ी है। वह सुधाकर से कहती, क्या बात है, आज साहब की मीठी बातें तो नहीं बताई!

कभी-कभी खीझकर सुधाकर सोचता था, अब से वह साहब की बातें पत्नी को नहीं बताएगा। लेकिन यह कैसे संभव था? न केवल उसके दफ्तर का समय, बल्कि उसके पूरे जीवन को अपने वश में रखने वाले प्रभु की बातें बिना बताए वह कैसे रह सकता था? साहब के दौरे पर जाना, साहब की बीमारी, साहब के बेटे को नौकरी मिलने, साहब के कमरे की चीजें बदलने, साहब ने अपने किस सहकर्मी को सख्त पत्र लिखा—ये सब अति महत्वपूर्ण बातें वह कैसे अपने मन में दबाकर रख सकता था? किंतु रेणुका उसकी हर बात की लीक पकड़कर सुधाकर की ही गलती निकाला करती थी। कहती, साहब का कुत्ता बीमार पड़ने पर तुमने उसके लिए जितना समय दिया था, मुनू को जॉन्डिस होने पर उतना

समय उसके पास नहीं बैठे होगे। अथवा, तुम्हारे साहब की पदोन्नति होने पर तुम खुश होकर भगवान को प्रसाद चढ़ाते हो, मिठाई बाँटते हो। क्या हमें उनकी तनख्वाह का हिस्सा मिलेगा? इत्यादि।

रेणुका नायक जी पर एक और बात को लेकर नाराज थी, जो कि उसने सुधाकर को कभी नहीं बताई थी। कई साल पहले जब एक बार सुधाकर बीमार था, साहब उसे देखने उसके घर गए थे दोपहर में। घर पर रेणुका के सिवाय और कोई नहीं था और बेचारा सुधाकर कमजोर होकर बिस्तर पर पड़ा था। साहब को बिठाकर रेणुका ने उन्हें चाय दी थी; साहब ने सुधाकर का कुशल क्षेम पूछा था और कुछ दिक्कत होने पर उन्हें बताने के लिए कहा था। उनके जाने के लिए उठने पर रेणुका उन्हें बाहर तक छोड़ने गई थी। उस वक्त उसे अकेला पाकर नायक साहब ने उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे अपनी ओर खींचने की जरा-सी चेष्टा की थी। रेणुका द्वारा कोई प्रतिक्रिया दिखाने से पूर्व अपना हाथ हटाकर जल्दी-जल्दी वहाँ से निकल गए।

कुछ देर पहले नायक ने उसके साथ अति शालीनता से बातचीत की थी और खतरनाक इंसान होने की कुख्याति वाले व्यक्ति द्वारा वैसा शांत-शिष्ट व्यवहार देखकर रेणुका अपने पूर्व मनोभाव के कारण खुद को दोषी समझ रही थी। वे बिलकुल बुरे नहीं लगे थे और यदि उन्होंने सुधाकर के सामने उसके कंधे पर हाथ रखा होता तो शायद वह स्वयं उनकी ओर कुछ झुककर उनके प्रति पहले किए गए मानसिक अन्याय की एक दैहिक क्षमा-प्रार्थना मांग लेती। लेकिन इस तरह लोगों की नजरें बचाकर चोरी छिपे उसकी मजबूरी का लाभ उठाकर उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे ऐसा अशिष्ट संकेत देना रेणुका को अत्यंत अश्लील लगा था। उसने सोचा था कि तुरंत जाकर यह बात सुधाकर को बता देगी। किंतु उस वक्त सुधाकर मरा हुआ-सा बिस्तर पर पड़ा था और उससे ऐसी भर्त्सना सुनने की हालत में नहीं था। उसके ठीक होने के बाद उसको यह बात बताने का मौका ही नहीं मिला। कोई घटना घट जाने के कुछ दिनों बाद उस घटना के भुक्तभोगी को भी वह घटना अलग लगने लग जाती है। रेणुका को उस दिन का प्रसंग अब उतना अश्लील और अपमानजनक नहीं लग रहा था, जितना उसे उस दिन लगा था। बल्कि कभी-कभी वह कल्पना करती थी कि यदि उस वक्त वह खुद उनसे जरा-सा टिक गई होती, तो क्या हो जाता! उसने तय कर लिया था कि अब वह इसकी चर्चा सुधाकर से कभी नहीं करेगी। सुधाकर की मति-गति से अच्छी

तरह वाकिफ होने के कारण वह जानती थी कि इस पर सुधाकर की प्रतिक्रिया क्या होगी। शायद सुधाकर कहता, तुमने अपनी बातचीत और भाव-भंगिमा से ऐसा कुछ किया होगा, जिसकी वजह से उन्होंने ऐसा करने का साहस किया। या फिर रेणुका को अपने और साहब के संबंध के बीच खींचकर लाने की चेष्टा करके कहता, नहीं-नहीं, तुम उन्हें ग़लत समझ रही हो। उनकी कोई बुरी मंशा नहीं रही होगी। बल्कि उन्हें दुबारा घर पर बुलाओ, देखना कितने अच्छे व्यक्ति हैं। बहरहाल रेणुका ने वह बात सुधाकर के आगे कभी नहीं उठाई, जबकि वह खुद उस घटना को अपने मन से दूर नहीं कर पा रही थी।

जब सुधाकर ने घर जाकर साहब द्वारा उस पर रिश्वत लेने का इल्जाम लगाने की बात रेणुका को बताई, उसने कहा, अच्छा हुआ। मैं क्या कहती थी तुमसे? इस बदमाश आदमी के साथ काफी काम कर चुके, अब किसी दूसरे विभाग में तबादला करवा लो। लेकिन तुम्हें तो वहीं स्वर्ग मिलता है। जाकर उन्हीं के तलवे चाटो, ऐसे गाली-गलौज सुनते रहो। सुधाकर उदास होकर दूसरे कमरे में जाकर बैठ गया। लेकिन रेणुका की बात उतने में पूरी नहीं हुई थी। उसने सुधाकर के पास जाकर पूछा, क्या वाकई तुमने उस आदमी से रिश्वत ली थी, साहब से उसकी मुलाकात करवाने के लिए?

सुधाकर को यह भी याद आया कि काफी दिनों पहले, एक बार किस तरह साहब ने उसे 'तू' कहा था। तब कुछ ही दिनों पहले उसने नायक साहब के पास ज्वाइन किया था। मंत्री जी के पास शायद कोई जरूरी नोट तुरंत जाना था; डिक्टेशन लेकर, उसे टाइप करके, साहब के दस्तखत करवाकर उसे भेज दिया था। टाइप करते समय दुर्भाग्य से उसमें एक बहुत बड़ी गलती रह गई थी। जब मंत्री जी के पास से फाइल वापस लौटी, नायक साहब ने देखा कि मंत्री जी ने स्वयं उस गलत जगह पर लाल स्याही से गोला बनाकर, एक साथ कई प्रश्न चिह्न के निशान लगाकर नोट के नीचे व्यंग्यभरी टिप्पणी लिखकर उसे एक उपहास का पात्र बना दिया था। उस बार बड़ी ही अकथनीय भाषा में सुधाकर के चौदह पुश्तों का उद्धार करने के बाद अंत में नायक जी ने उससे कहा था, लगता है, तू मेरी नौकरी लेकर मानेगा?

उन दिनों घर लौटने के बाद सुधाकर रोजाना अपने दफ्तर के काम का एक विस्तृत ब्योरा दिया करता था रेणुका को। तब तक रेणुका ने नायक के बारे में इतनी विपरीत राय नहीं बनाई थी और उस दिन की घटना के बारे में सुनकर

सुधाकर को बोली थी, साहब के रंग-ढंग कोई अच्छे नहीं लग रहे। तुमने तो पहले ही कहा था कि उनके पास कोई टिक नहीं पाता। तुम छुट्‌टी-फुट्‌टी लेकर किसी और के पास तबादला क्यों नहीं करवा लेते?

लेकिन सुधाकर ने न तो छुट्‌टी ली और न ही तबादले के लिए कोशिश की। एक तो वह दयालु स्वभाव का था और सोचता था कि छुट्‌टी मांगना साहब की फटकार के लिए तैयार रहने जैसा है। दूसरी बात यह थी कि उसे अपनी सहनशीलता पर अगाध विश्वास था। छोड़ो, साहब ने गुस्से में किसी दिन कुछ कह दिया; उस बात को पकड़े रहने से क्या फायदा? घर पर रेणुका से साहब के बारे में बातचीत करने पर वह उसे यही समझाया करती थी अक्सर। जब रेणुका उसे पहले के दुर्व्यवहार की बातें याद दिलाती, सुधाकर बोलता, यह तो ठीक है, पर उस बार किस तरह साहब ने मेरे भविष्य निधि के फंड का पैसा एक ही दिन में दिलवा दिया था? किंतु रेणुका संतुष्ट नहीं होती थी, उल्टे कहती थी, क्या वह उनके बाप का पैसा था? तुम्हारे पैसे थे, तुम्हें मिले, साहब को क्यों इतना श्रेय दिया जा रहा है इसके लिए?

रेणुका के इतना कहने पर भी नायक साहब को नहीं छोड़ पाया सुधाकर। साहब की खीझ, क्रोध, गाली-गलौज, दंड, दुर्व्यवहार के बावजूद उनका आज्ञाकारी बना रहा वह। जब साहब की पदोन्नति हुई, वह खुश हुआ; साहब के तबादले का नोट ऊपर से अस्वीकृत होकर लौट आने पर उसे कष्ट हुआ। साहब की बेटी की शादी की सारी जिम्मेवारी उसने अपने सिर पर ले ली थी। सेवानिवृत्ति के अंतिम दिनों में जब साहब ने उसे छोटे-छोटे नोट और पत्र लिखने का दायित्व सौंपा, उसने सोचा कि उसने किला फतह कर लिया है। खूब परिश्रम और बुद्धि लगाकर लिखे उसके पत्रों को जब साहब मन लगाकर पढ़ते थे, सुधाकर कृत्य-कृत्य हो जाता था और जब साहब किसी कारण से उस पर नाराज होते थे, वह दिन सुधाकर के लिए बन जाता था नीरस और उदासी भरा।

जब नायक साहब की सेवानिवृत्ति की तारीख निकट आई, सुधाकर के सुख-दुख की सीमा में उस दिन की परछाईं पड़ने लगी। साहब उस पर खुश होते तो वह सोचता, हाय, बड़ी जल्दी उसके सुख के दिन बीत जाएँगे! साहब के उसे डाँटने पर वह सोचता, अभी और दो महीने इस राक्षस के पास काम करना पड़ेगा; या, चलो सिर्फ दो ही महीने की तो बात है, उसके बाद मैं कहाँ, तुम कहाँ!

लेकिन आज ऑफिस में साहब के अंतिम दिन उसके मन में ये सब चिंताएँ नहीं थीं। उसकी सोच, चैतन्यता, मन-मानस, अंतरआत्मा को घेरकर बैठा वह

आदमी मानों उसे एकाकी और अनाथ करके चला जा रहा हो। साहब के कागज-पत्र सहेजते समय, उनकी विदाई समारोह में बैठकर उनके प्रति की जा रही अहेतुक प्रशंसाएँ सुनते समय सुधाकर को लग रहा था, नायक साहब जैसे स्वस्थ, तंदुरुस्त और कर्मठ व्यक्ति को सिर्फ उम्र की दृष्टि से सेवानिवृत्त कर देना सरकार द्वारा घोर अन्याय है।

उस दिन शाम को साहब के विदाई समारोह के बाद वह सीधे घर न जाकर सड़क पर टहलता रहा काफी समय तक लक्ष्यहीन-सा। टहलते-टहलते अचानक घड़ी में दस बजते देख वह घर लौट गया। मानो रेणुका उसका इंतजार कर रही थी। घर में घुसते ही रेणुका बोली, आज बड़े साहब का सारा काम खत्म करके आए हो ना? चलो, अब चैन से सोना। खा-पीकर सुधाकर सोने चला गया, पर उसे नींद नहीं आई। करवट बदलते हुए रात कटने के बाद सुबह उठकर वह तैयार हो गया, पर उसका मन नहीं किया ऑफिस जाने को। यदि रेणुका उसके पीछे न पड़ी होती, तो वह छुट्टी लेकर उस दिन घर पर रह गया होता; किंतु उसे ऑफिस जाना ही पड़ा। अब तक नए साहब नहीं आए थे और नायक साहब की अनुपस्थिति में उनके पुराने निजी स्टाफ एक हँसी-खुशी के माहौल में थे, लेकिन सुधाकर को कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। ऑफिस की छुट्टी होने से पहले वह नायक साहब के घर चला गया।

नायक साहब उसके इंतजार में बैठे थे। उसे देखते ही कुछ खीझते हुए, उसका मज़ाक उड़ाने के लहजे में बोले, क्या सुधाकर बाबू, ऑफिस में काम ज्यादा पड़ गया था? मैं तो सुबह से आपकी राह देख रहा हूँ। हमेशा की तरह आदतन माफी मांगते हुए सुधाकर ने झूठ ही कहा, मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं थी सर, इसलिए देर से दफ्तर गया था। नायक जी ने पहले की तरह उसकी झूठ पकड़ ली, बोले, ठीक है। कल से दफ्तर जाते समय सुबह इधर से ही होकर जाना। उसके बाद नायक जी ने कहा, मुझे बैंक में एक पत्र भेजना है; लिखो। सुधाकर ने देखा कि वह अपना डिक्टेशन बुक नहीं लाया है। जेब से एक टुकड़ा कागज निकालकर उस पर डिक्टेशन लेते-लेते साहब के और कुछ कहने से पहले उसने कहा, कल से मैं नोटबुक साथ लेकर आऊँगा सर।

साहब का काम पूरा करके घर लौटने तक आज भी सुधाकर को देर हो गई थी। उसने सोचा था कि रेणुका को पता नहीं चलेगा कि वह नायक साहब के घर गया था। लेकिन उसका चेहरा देखकर रेणुका समझ गई। सुधाकर ने

सोचा था कि झूठ कहकर निकल जाएगा, लेकिन वह साहस नहीं कर पाया। वह रेणुका को कैसे क्या कहे सोच ही रहा था कि रेणुका ने पूछा, पुराने साहब का सारा काम पूरा करने में और कितने दिन लगेंगे? अब से यदि दो-दो साहब तुम्हारे सिर पर बैठ जाएँगे, तब तो घर पर तुम्हारे दर्शन ही नहीं होंगे! सुधाकर ने उसे समझाने की मुद्रा में दार्शनिक भाव से कहा, अफसर के रिटायर्ड होने पर उन्हें कोई नहीं पूछता; इसलिए मैंने सोचा, चलकर साहब से मिल ही लिया जाए। रेणुका बोली, और कोई न पूछे तो क्या हुआ, तुम्हारे जैसा प्रभुभक्त हनुमान जिसके साथ होगा, उसे फिर कैसी चिंता? सुधाकर बोला, उनके कुछ छोटे-छोटे काम बचे हैं; एक-दो दिन में खत्म हो जाएँगे।

एक-दो दिन नहीं, दफ्तर जाने के रास्ते नायक साहब के घर से होते हुए जाना सुधाकर की रोजाना की आदत बन गई थी। इसके लिए उसे एक घंटा पहले घर से निकलना पड़ता था और दो किलोमीटर अधिक साइकिल चलानी पड़ती थी। नायक उसे जो भी काम देते थे, उसे ऑफिस में बैठकर पूरा करना पड़ता था। नायक इस वक्त उसी सरकारी मकान में रहते थे और लुक-छिपकर किसी व्यापारिक संस्था के लिए काम करते थे; उस संबंध में जो भी कुछ लिखने-लाखने, टाइप करने का काम होता था, वह नायक साहब सुधाकर से ही कराते थे। एक बार सुधाकर के कोई पत्र देर से टाइप करके देने पर नायक ने उसे धमका दिया था। बीच में सुधाकर से कहा था, काम जरा बढ़ने दो, मैं तुम्हें कुछ रुपए देने की व्यवस्था करूँगा। सुधाकर ने अति दृढ़ता से सिर हिलाकर कहा था, नहीं सर, आपने मेरे लिए जितना कुछ किया है, काफी है; अब से रुपए-पैसों की बात मुझसे मत कहिएगा।

सचमुच में नायक ने फिर कभी रुपए देने की बात नहीं उठाई, लेकिन सुधाकर जब तक उनके पास गया, वे पहले की तरह उससे बुरा व्यवहार करने लगे। सारा कुछ उसी पुराने ढर्रे पर चल पड़ा। गाली-गलौज, बीच-बीच में मीठी बातें, फिर डाँट-फटकार। दफ्तर में जिस नए साहब ने कार्यभार संभाला था, उनसे जितना कम संभव था, उतना कम संपर्क रखा था सुधाकर ने। वह ठीक समय पर दफ्तर जाता था, दफ्तर का काम ठीक से करता था, लेकिन उसके जीवन को जिस विराट पुरुष ने घेर कर रखा था, वे नए साहब न होकर, नायक साहब ही थे। कुछ दिनों तक लगातार उस बारे में सुधाकर से हुज्जत करने के बाद रेणुका ने कहा, नायक साहब के मरने पर ही तुम्हारे सिर से उनका भूत

उतरेगा। सुधाकर ने कहा, शुभ-शुभ बोलो, क्यों ऐसी बुरी बात कह रही हो उस अच्छे इंसान के लिए।

एक दिन सुबह नायक साहब के घर पहुँचने पर सुधाकर ने सुना कि पिछली रात हार्ट अटैक होने पर उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया है। यह सुनते ही हठात् उसका सिर चकरा गया। किसी तरह ऑफिस फोन करने के बाद वह साइकिल से अस्पताल के लिए चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर, हृदय रोग विभाग ढूँढ़ने के बाद जब वह वार्ड में गया, वहाँ नायक साहब की पत्नी और बच्चे उदास बैठे हुए थे। नायक साहब को इंटेन्सिव केअर में रखा गया था और वहाँ सबका प्रवेश निषेध था। नायक के परिवार वालों को नमस्कार करके वह सिर झुकाए खड़ा रहा और कुछ देर बाद बाहर चला आया। वह साइकिल लेकर अस्पताल से बाहर निकल ही रहा था कि उसे नायक साहब के एक आत्मीय मिल गए। उन्होंने उसे बताया कि बचने की उम्मीद बहुत कम है। सुधाकर को लगा, मानो अब उसमें खड़े रहने की ताकत नहीं बची। वह साइकिल के साथ-साथ पैदल चलते हुए घर तक पहुँचा। उस वक्त तक उसके शरीर में जैसे कि जान नहीं बची थी।

उसने रेणुका से कहा कि तबीयत बिगड़ने की वजह से वह दफ्तर से चला आया है। कपड़े बदलकर वह बिस्तर पर जाकर लेट गया। साँस लेते समय उसके सीने में दर्द हो रहा था। सीने पर हाथ रखकर उसने रेणुका से कहा, मुझे घुटन-सी हो रही है; तुरंत किसी डॉक्टर को फोन करो।

स्वाती आएगी

स्वाती आएगी दो महीने तीन दिन बाद।

दुबारा उस पत्र को पढ़ा भास्कर ने। यह पत्र जिस दिन आया था, उसने हिसाब लगाकर देखा था, स्वाती आएगी दो महीने अठारह दिन बाद। इस बीच उसने कितनी बार उस पत्र को पढ़ा था, उसका कोई हिसाब नहीं। वह बार-बार उस पत्र को पढ़ता, मानो बार-बार पढ़कर वह उस पत्र से कोई नया मर्म निकालेगा। लेकिन वह पत्र अति संक्षिप्त और सीधा-सीधा होने के साथ ही पूरी तरह व्यंजनारहित था। फिर भी भास्कर उससे कोई नया अर्थ निकालने की कोशिश कर रहा था और सोचता था कि हर बार फिर से चिट्ठी पढ़ते समय मानो वह स्वाती के कुछ और नजदीक हो गया हो।

पत्र के प्रारंभ में कोई संबोधन नहीं था। स्वाती ने लिखा था कि मैं पाँच नवंबर को तुम्हारे शहर जा रही हूँ स्कॉलरशिप के लिए इंटरव्यू देने। शाम को राजधानी एक्सप्रेस से पहुँचूँगी। पर तुम स्टेशन मत आना। क्योंकि वहाँ मुझे लेने के लिए मौसी के घर से कोई न कोई आया होगा। मैं उसके हाथों अपना सामान भेजकर, कोई बहाना बनाकर दो घंटे के लिए तुम्हारे पास आकर वहाँ से मौसी के घर चली जाऊँगी। तुमसे ढेरों बातें जो करनी हैं। तुम खुद को फ्री रखना। बाकी की बातें मुलाकात होने पर। उसके नीचे चार क्रॉस के निशान थे। और उसके नीचे एक पंक्ति लिखी थी : यदि किसी कारणवश उस दिन जाना न हो सका, मैं तुम्हें सूचित कर दूँगी।

वह पत्र एक अति सामान्य, लाइनदार कॉपी से फाड़े गए गुड़ीमुड़ी कागज पर लिखा गया था। किंतु स्वाती का सुलेख साफ और सुंदर था और हर अक्षर था उसके आत्मविश्वास भरे व्यक्तित्व का प्रतीक। उस पत्र को आँखों के सामने रखते समय मानो स्वाती का स्वाभिमानी चेहरा दिख जाता था पंक्तियों के अंतराल से। उस पत्र का एक-एक शब्द उसे कंठस्थ हो जाने के बावजूद भास्कर उसे

बार-बार लिफाफे से निकालकर पढ़ता और फिर करीने से तहकर लिफाफे में रख लेता। पहले वह लिफाफा उसके टेबुल पर रहता था, लेकिन एक दिन भास्कर को सहसा यह भय हुआ कि यदि प्राकृतिक आपदा से उसके टेबुल में आग लग गई तो यह पत्र भी जल जाएगा। इसलिए उस दिन से वह उसे ले जाकर अलमारी की उस खास दराज में रख आया जिसमें वह अपने शेयर सर्टिफिकेट्स, चेक-बुक, लाइसेंस इत्यादि जरूरी कागजात रखा करता था। जबकि दिनभर में कई बार अलमारी खोलकर पत्र निकालकर उसे पढ़कर फिर से वहीं रखना सुविधाजनक नहीं था, पर भास्कर निश्चिंत था कि वह पत्र वहाँ पूरी तरह सुरक्षित रहेगा।

वह पत्र उसके लिए वाकई एक अमूल्य संपदा था। पत्र पाने के बाद उसने लिफाफा खोलकर नीचे डाल दिया था दूसरे फटे कागजों के साथ। पत्र तीन बार पढ़ने के बाद उसकी इच्छा हुई लिफाफा को देखने की। उसने लिफाफा नीचे से उठा लिया। उस पर पता भी तो स्वाती के हाथ से लिखा था! लिफाफे पर से काल्पनिक धूल पोंछकर उसने पत्र उसमें रख लिया। उस पर सिर्फ उसका ही पता लिखा था, और कुछ नहीं। डाक टिकट पर एक अस्पष्ट मुहर लगी थी, जो पढ़ी नहीं जा रही थी। उसके पते में कोई गलती नहीं थी और पत्र सही समय पर आ गया था। भास्कर ने मन ही मन डाक विभाग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की थी, वह पत्र सही सलामत उस तक पहुँचाने के लिए। बहुत-से जरूरी पत्र खो जाते थे। भास्कर को यह सोचते समय कष्ट हो रहा था कि यदि किसी कारण से उसका यह पत्र उसके पास न पहुँचा होता तो?

वह पत्र अति आकस्मिक था भास्कर के लिए, जिस तरह था उस बार ट्रेन में जाते समय स्वाती से अचानक मुलाकात हो जाना। लंबी रेलयात्रा के समय सुबह प्लेटफार्म पर उतरकर वह इधर-उधर डोल रहा था, खिड़की के पास बैठी उस लड़की का चेहरा उसे परिचित-सा लगा। जहाँ तक उसे याद आया, वह लड़की शर्मीली थी, क्लास में चुपचाप बैठी रहती थी, किसी से बात नहीं करती थी। उसका नाम शायद स्वाती था। यह पचीस साल पहले की बात है। उसने भले ही शादी नहीं की थी पर उसके दोस्त-यार इस समय कॉलेज में पढ़ने वाले, नौकरी करने वाले बच्चों के बाप बन चुके थे। उसी तरह उसके साथ की लड़कियाँ शायद नानी भी बन चुकी होंगी।

प्लेटफॉर्म के सिरे तक जाकर वह पुनः लौट आया था उस कंपार्टमेंट के सामने से होता हुआ। इस बार सीधे-सीधे उस लड़की के चेहरे की ओर देखने

का साहस नहीं हुआ उसे; कनखियों से देखकर वह निश्चिंत हो गया कि यदि वह लड़की उसकी पुरानी सहपाठिन नहीं होगी तो उसकी छोटी बहन जरूर रही होगी। अगले स्टेशन पर उतरकर वह फिर से उसी कंपार्टमेंट के सामने चहलकदमी करने लगा, मानो अपने संदेह का एक सही फैसला चाहता हो वह। उसकी इस समस्या का समाधान कर दिया था स्वाती ने अगले स्टेशन में। प्लेटफॉर्म पर उतरकर उसके उसी कंपार्टमेंट के सामने किताब की दुकान में पत्रिकाएँ देखने का बहाना करते समय उस लड़की ने हाथ के इशारे से उसे अपने पास बुलाया। उसकी ओर कुछ कदम आगे बढ़ाने के बाद भास्कर ने अपना कुर्ता खींचकर ठीक किया और सिर के बाल सँवारने के लिए सिर पर हाथ फेर लिया, जबकि वह जानता था कि यह सब करते समय वह और भी लापरवाह हो गया है। वह लड़की मानो उसके मन की बात समझ गई थी; वह पास जाने पर मुस्कराते हुए उससे कहा, तुम मुझे जो समझ रहे हो, मैं वही हूँ।

भास्कर खुद को तेजबुद्धि, हाजिर जवाब और चतुर समझता था, किंतु इस वक्त उसने मान लिया कि वह हार गया है। उस लड़की के नाम के बारे में उसे संदेह था, लेकिन वह सहसा आप और तुम के द्वंद्व को काट नहीं पाया। पर अपनी घबराहट को यथासंभव नियंत्रित करके उसने सवाल और जवाब मिले स्वर में कहा, लॉ कॉलेज! स्वाती बोली, बिलकुल ठीक। सौ में सौ। पर और सवाल पूछकर मैं तुम्हें फेल नहीं कराऊँगी। मैं जानती हूँ कि तुम मेरा नाम भूल चुके हो। मेरा नाम स्वाती है। भास्कर के मुँह से अगली बात नहीं निकली, लेकिन उसके सौभाग्य से उसी वक्त ट्रेन ने रेंगना शुरू कर दिया। 'अगले स्टेशन में आऊँगा' कहकर जल्दी-जल्दी अपने कंपार्टमेंट की ओर चला गया भास्कर।

स्वाती आएगी एक महीने सत्रह दिन बाद।

नहीं, उसके गिनने में कोई गलती नहीं है, क्योंकि कैलेंडर सामने है और नवंबर महीने की पाँच तारीख पर गोला बना है। रोज सुबह उसके इंतजार का एक-एक दिन कम होता जा रहा है, लेकिन दिन अति अलसाई गति से गुजर रहे थे, ऐसा उसे लग रहा था। कैलेंडर के पन्ने पर वह अंगुली फेर लाया; काश किसी मंत्र के बल पर वह पंचांग से अड़तालीस दिन उड़ा देता!

वह उठकर गया और अलमारी खोलकर पत्र निकाल लाया। कल रात दस बजे अंतिम बार उसने उस पत्र को पढ़ा था। वह अपने टेबुल के पास जा ही रहा था कि किसी ने दरवाजे की घंटी बजाई। दरवाजा खोलकर भास्कर ने देखा

बाहर ब्लाइंड स्कूल के दो बच्चे हाथ में चंदा खाता लेकर खड़े थे। ऐसे लोगों को वह मना करके तुरंत दरवाजा बंद कर लेता था।

लेकिन आज उसके हाथ में स्वाती का पत्र था और यह पत्र कागज उसमें भर देता था सारी सुखद संभावनाएँ। उसने दोनों बच्चों को दस रुपए दिए और दरवाजा बंद कर लिया आहिस्ता से।

टेबुल के पास बैठकर पत्र पढ़ते समय उसने अपने चारों ओर निगाह डाली। उसकी किताबें वगैरह सही जगह पर थीं, किंतु उन्हें और भी करीने से रखा जा सकता है। जिस दिन उसे स्वाती का पत्र मिला, उसे पढ़ने के बाद उसकी निगाह पड़ी थी टेबुल पर बिखरी चीजों पर। उसने तुरंत टेबुल-क्लॉथ खींचकर उसकी सिलवटें ठीक कर दी थी और किताबें आदि सही जगह पर रखने में जुट गया था। उसके बाद उसका ध्यान गया था दूसरे कमरे की अस्तव्यस्तता को ठीक करने की ओर। काफी दिनों से मकान की लिपाई-पुताई नहीं हुई थी; मकान मालिक उसका अनुरोध तरह-तरह के बहाने बनाकर टाल देता था। उसने तय किया कि वह खुद पैसे खर्च करके मकान ठीक-ठाक करवाएगा। यह खर्च मकान के किराये से काटेगा या नहीं, यह बाद में देखा जाएगा।

उसने तुरंत मकान का काम शुरू करवा दिया। उसके बाथरूम का जो दरवाजा टूट गया था, उसे भी बदलवाना सही समझा उसने। पर लिपाई-पुताई करने वाले और दरवाजा मरम्मत करने वाला बढ़ई बीच-बीच में काम बंद कर देते थे। वह उन पर खीझ उठता था, गाली-गलौज करता था, और उस दौरान मानसिक दबाव में रहता था। अंततः सारे काम खत्म हो गए, सिर्फ नहानघर रह गया बिना दरवाजे का। भास्कर घबरा रहा था कि स्वाती के आने से पहले तक भी वह काम पूरा नहीं हो पाएगा। इस तरह की दुश्चिंता में रहते समय एक दिन सुबह आकर बढ़ई ने आधे-घंटे में वह दरवाजा ठीक-ठाक करके लगा दिया और इस तरह मकान की मरम्मत करवाने की चिंता छोड़कर अब दूसरी चिंता में मन लगाया भास्कर ने।

जैसे उसका शयन-कक्ष और बिस्तर कमरे की दीवारें अब सफेद साफ-सुथरी दिख रही थीं और भास्कर ने लगभग यह तय कर लिया था कि अपने बिस्तर पर वह किस रंग की चादर बिछाएगा। उसने दोनों तकिये हाथों में लेकर परखा। किसी-किसी को ऊँचा तकिया पसंद है। उसे स्पॉन्डिलाइटिस होने पर डॉक्टर ने उसे बहुत ही पतली तकिया लगाने को कहा था। स्वाती कैसा तकिया लगाती

होगी? वह मन ही मन स्वाती को अपने बिस्तर पर लेटे होने की कल्पना कर रहा था, जबकि वह कोई दावा नहीं कर रहा था उस तरह का दिवास्वप्न देखने का। आखिर वह स्वाती को जानता ही कितना था अपने शयन कक्ष में लाने के लिए? लेकिन वह पुनः स्वाती के पत्र की उस पंक्ति के बारे में सोच रहा था, 'बाकी की बातें मुलाक़ात होने पर'। उन चंद शब्दों में मानो हर तरह की संभावना की बात की ओर संकेत किया था स्वाती ने उसके लिए।

हालाँकि यह सोचते समय उसके मन में उत्तेजना के साथ ही कुछ आशंका भी पैदा हो रही थी। एक दिन वो भी था जब अपने सामर्थ्य पर कोई शक नहीं था भास्कर को। लेकिन आजकल कभी-कभी उसका शरीर उसके शरीर की इच्छाओं से ताल न मिला पाकर उसे दुखी कर देता था। यह बात याद आने पर उसका मन खराब हो गया। उसने जबरन उस चिंता से खुद को दूर किया और स्वाती की बातें याद कीं।

अगले स्टेशन पर उतरकर स्वाती के पास जाकर कैसी बातचीत करके परिस्थिति को पुनः कैसे अपने नियंत्रण में लाएगा, उसकी योजना बनाई भास्कर ने। उनकी अचानक मुलाकात और रिश्ते का पूरा श्रेय अपने हाथ में ले लिया था स्वाती ने। किंतु इस बार स्वाती का सामना करते समय अप्रतिभ नहीं रहेगा वह। उसके पास जाकर पूरे आत्मविश्वास से बोलेगा, तुम्हें, आपको नहीं, न पहचानने का कारण था कि जब हम सबकी उम्र बढ़ रही है, तुम वैसी की वैसी होः कम उम्र जैसी और सुंदर! प्लेटफॉर्म पर उतरने से पहले वह हाथ-मुँह धो लेगा और बाल भी सँवार लेगा।

लेकिन स्वाती ने उसे यह मौका नहीं दिया। कंपार्टमेंट्स के अंदर ही अंदर आकर वह भास्कर के सामने खड़ी हो गई और बोली, मैंने सोचा तुम्हें क्यों कष्ट दूँ! इतनी मानसिक तैयारी के बावजूद भास्कर को पुनः किंकर्तव्यविमूढ़ कर दिया स्वाती ने। भास्कर के पास बैठते हुए बोली, सामान के नाम पर मेरे पास सिर्फ यह थैला है। सोचा, दूसरे स्टेशन तक का इंतजार क्यों किया जाए?

घड़ी देखने पर भास्कर को लगा कि ऑफिस जाने का समय हो चुका हे। उसने जल्दी-जल्दी वह चिट्ठी ले जाकर सही जगह रख दी और जाने को तैयार हो गया।

स्वाती आएगी चार सप्ताह बाद।

भास्कर ने इस बीच लिफाफे में एक पॉकेट कैलेंडर भी रख दिया था। वह हर बीते दिन पर क्रॉस का निशान लगाता जा रहा था। आज लिफाफा खोलकर

चिट्ठी पढ़ते समय वह आठ तारीख पर निशान लगाने के बाद बाकी बचे दिन गिनने लगा।

क्रॉस का निशान लगाते समय उसे याद आया कि स्वाती के पत्र में भी क्रॉस के चार निशान हैं। उसका नाम स्वयंसंपूर्ण, सुंदर और आभिजात्यपूर्ण था; किंतु बहुत भारी। सभी निश्चित रूप से उसे स्वाती के नाम से पुकारते होंगे या फिर लेखा कहकर। संभवतः उसका कोई और भी बुलानेवाला आसान-सा नाम होगा, जैसे रिमझिम या झिलमिल! इस बार वह उससे पूछ लेगा उसका वह छोटा-सा हल्का नाम क्या है और कोशिश करेगा कि वह उसे उसी नाम से पुकारे।

उस पत्र में उन चार क्रॉस के निशान को भास्कर ने पुनः एक बार देखा। हस्ताक्षर में मानो वह स्वाती के स्वयं को देख पा रहा था, याद किया, इस तरह के चार क्रॉस के निशान भी उसी तरह सीता का पूर्णतः व्यक्तिगत अभिज्ञान था। और अनेक प्रकार के क्रॉस चिह्नों में से मानो आसानी से पहचाने जा सकते थे स्वाती के हाथ से बने दो छोटी-छोटी रेखाओं के आपस में काटने के चिह्न। उसे सहसा याद आया कि पश्चिमी देशों में इन क्रॉस चिह्नों का उपयोग चुंबन के प्रतीक के रूप में किया जाता है। क्या शब्दकोश में यह होगा? 'एक्स' अक्षर निकालकर शब्दकोश में ढूँढ़ा भास्कर ने। यह अक्षर जिस तरह अज्ञात का परिचायक है, उसी तरह चुंबन का भी। चार क्रॉस, चार बार चुंबन। क्या कहना चाहती है स्वाती? बाकी की बातें मुलाकात होने पर?

उसका मन एक अवश्यंभावी पुलक से भर गया और उसने गिलास में पानी लेकर दवा की गोली खा ली। उसका देह-मन स्वस्थ रहे स्वाती के आने के दिन। ताकि वह जी-जान से स्वाती की आवभगत कर सके उन दो घंटों के मूल्यवान समय में। क्या खिलाएगा वह स्वाती को? वह तो चाय पीने का समय होगा। वह नौकर को बाजार भेज देगा और अपने हाथों से चाय बनाकर पिलाएगा स्वाती को। इस बीच कई बार चाय बनाकर उसने परख लिया था अपने चाय बनाने के सामर्थ्य को। बुरी नहीं लगती थी उसे अपने हाथ की बनाई चाय। चाय बनाने की सारी चीजें ठीक-ठाक हैं या नहीं, यह भी उसने जाँच ली थी।

उसने सोचा था घर की लिपाई-पुताई कराने में काफी वक्त लग जाएगा, परंतु वह तो कब का पूरा हो चुका था। सारी चीजें करीने से रखने के बाद अब कमरा ठीक-ठाक लग रहा था। फिर भी, कहीं कोई कमी रह गई है, ऐसा भास्कर सोच रहा था। अभी हाल ही में कॉलिंग बेल ठीक से नहीं बजी। भास्कर ने जाकर बार-बार उस बेल को बजाया; बेल ठीक से बज रही थी। यदि स्वाती

के आने वाले दिन फिर से खराब हो गई या बिजली चली गई उस दिन? नहीं, वह तो घर का दरवाजा खुला रखकर इंतजार कर रहा होगा। नहीं तो घर के बाहर जाकर खड़ा होगा स्वाती के आने के इंतजार में। पर वह घर की चाबी जेब में रखना नहीं भूलेगा; कहीं बाहर वाला दरवाजा खुद ब खुद बंद हो गया तो!

भास्कर के मन में ऐसी अनेक छोटी-छोटी चिंताएँ थीं, जैसे वह स्वाती को क्या खिलाएगा। चाय के साथ कुछ देना आसान है, लेकिन यदि वह स्वाती को और कुछ देर रुकने को राजी कर ले? अंधेरा हो जाने पर क्या वह उसे ड्रिंक के लिए पूछेगा? क्या स्वाती ड्रिंक लेती होगी? वह तो स्वास्थ्य को लेकर काफी सजग है। उस बार ट्रेन में और एक कप पीने से मना कर दिया था।

उसकी बगल में बैठने की जगह बनाकर उस दिन ट्रेन में स्वाती ने कहा था, तुम सोच रहे होगे, मैं अचानक क्यों तुम्हारे पीछे पड़ गई, क्यों? भास्कर ने कहा, नहीं-नहीं, बल्कि मुझे जाना चाहिए था तुम्हारे पास। लेकिन अगले स्टेशन से पहले मुलाकात होना संभव है, यह बात मेरे दिमाग में नहीं आई थी। स्वाती बोली, उसका कारण है, कौन किसके लिए कितना जरूरी है। यदि तुम मुझसे तुरंत मिलना जरूरी समझते, तो तुम्हारे दिमाग में खुद ब खुद यह बात आ गई होती। भास्कर ने कहा, इसका मतलब तुमने इस मुलाकात को अधिक जरूरी समझा। स्वाती ने कहा, अवश्य; भला इसमें कोई शक़ है? तुम सोच रहे होगे क्यों, ऐसा क्या जरूरी था? मैं शुरू में ही कहकर तुम्हारे सारे संदेह दूर कर देती हूँ। कॉलेज में पढ़ते समय तुम्हारे प्रति मुझमें एक तरह की कमजोरी थी।

भास्कर की अस्थिमज्जा से होकर एक अभूतपूर्व पुलक का सिहरण फैल गया। उसने स्वाती की आँखों में झाँका। कोई भी रिश्ता नहीं था इस लड़की से उसका कॉलेज के दिनों में। उन्होंने शायद एक-दूसरे से बातचीत भी नहीं की थी किसी दिन। स्वाती उसकी ओर देखकर मंद-मंद मुस्करा रही थी। क्या यह एक चंचलमति लड़की का प्रमोद परिहास था उसके लिए? या वाकई स्वाती के लिए उसमें कोई खासियत थी अतीत में?

स्वाती आएगी अठारह दिन बाद।

उसके आने का दिन जितना करीब होता जा रहा था, भास्कर को लगता था कि आखिरी समय में कोई न कोई दिक्कत आ जाएगी और स्वाती नहीं आएगी। हो सकता है इंटव्यू की तारीख टल जाए। स्वाती के साथ कोई और भी आ जाए। कुछ नहीं तो उस दिन ट्रेन इतनी रात को पहुँचेगी कि बहाना बनाकर दो घंटों

के लिए उसके पास आना संभव नहीं होगा। उसे आशंका थी, स्वाती की कोई चिट्ठी और आएगी उसे यह सूचित करने के लिए कि किसी कारण से वह नहीं आ पा रही है। हर रोज़ वह सोचता था, डाकिया आकर उसके हाथ में स्वाती के न आ पाने का टेलीग्राम बढ़ा देगा। हर टेलीफोन उठाते समय डर लगता था कि स्वाती का स्वर उससे कहेगा, इस बार नहीं आ पा रही हूँ; फिर कभी देखूँगी।

उस दिन पत्र जेब में रखकर वह ऑफिस गया। ऑफिस के काम के बीच में भी तो वह पत्र पढ़ सकता है! स्वाती के आने के बारे में सोच-सोचकर आजकल वह ठीक से काम नहीं कर पाता था। उसके सॉलिसीटर कंपनी में बहुत काम रहता था, सारे काम पिछड़ गए थे, क्योंकि वह फाइल खोलकर घंटों बैठा रहता था; उसके सिर में कुछ भी नहीं घुसता था सिवाय स्वाती के खबर के।

मन में हर क्षण स्वाती के साथ एक काल्पनिक बातचीत लगातार चलती रहती थी। स्वाती क्या बोलेगी, वह उसका क्या जवाब देगा, उसके बाद उनकी बातचीत का रुख किस ओर जाएगा, इत्यादि इत्यादि। स्वाती के साथ अपने रिश्ते को महज दो घंटों में कैसे संकुचित करके रख सकता है, वह इसकी कल्पना तक नहीं कर पा रहा था। स्वाती से उसका संपर्क न तो पत्रों के आदान-प्रदान से होता था, ना ही टेलीफोन में बातचीत करके। कभी-कभी वह फोन पर स्वाती का नंबर मिलाता था, उस ओर घंटी बजती थी, लेकिन जैसे ही कोई रिसीवर उठाकर बात करता, वह तुरंत लाइन काट देता था। उसे टेलीफोन करने या पत्र लिखने को निश्चित रूप से मना किया था स्वाती ने। उसने उससे यह भी कहा था कि कभी भी खुद टेलीफोन नहीं उठाती। फिर भी भास्कर उसका नंबर बार-बार डायल करता था और स्वाती के घर से टेलीफोन की घंटी सुनकर ही संतुष्ट हो जाता था।

स्वाती से उसका संपर्क सिर्फ वह रेलयात्रा थी, और कुछ नहीं। लेकिन उस दिन की कुछ घंटों की सह-यात्रा में अपने बारे में सबकुछ बता दिया था स्वाती ने। एम.ए. करने के बाद एक साल के लिए लॉ करने के दौरान उसकी शादी हो जाना, कुछ दिनों बाद लेक्चरर की नौकरी करना, पति से पटरी न खाना इत्यादि इत्यादि। उतनी देर तक भास्कर महज एक श्रोता था और स्वाती के पूछने पर अपने बारे में थोड़ा-बहुत बताया था। उन लोगों ने एक-दूसरे का पता और टेलीफोन नंबर ले लिया था, लेकिन स्वाती ने जोर देकर कहा था, ना तो तुम मुझे पत्र लिखना, ना ही टेलीफोन करना, तुम्हें पता दे रही हूँ सिर्फ तुम्हारी जानकारी के

लिए। याद रह गया ना, न पत्र, न फोन। भास्कर ने बिना कोई सवाल किए मान लिया था स्वाती का निषेध। पति से जरूर समस्या थी स्वाती को।

स्वाती आएगी सात दिन बाद।

न जाने क्यों भास्कर यह मान बैठा था कि आखिर में स्वाती आएगी ही नहीं। स्वाती से उसका रिश्ता ही क्या था कि वह आएगी लुक-छिपकर उसके पास दो घंटे बिताने के लिए। स्वाती के न आने के बारे में सोचने पर उसका मन न जाने क्यों हल्का हो जाता था। वह फिर से उसका पत्र पढ़ता। स्वाती को वह जितना जानता समझता था, उसे विश्वास था कि यदि वह किसी कारणवश न आ सकी तो उसे बताएगी जरूर।

स्टेशन फोन करके भास्कर ने पूछा कि राजधानी एक्सप्रेस कितने बजे आती है। उस दिन ट्रेन दो घंटे लेट चल रही थी। इतने दिनों पहले ट्रेन की खबर लेने की कोई जरूरत नहीं, यह जानता था भास्कर, फिर भी स्वाती के आगमन की तैयारी में ट्रेन का सही समय जानना मानो उसके लिए एक व्यक्तिगत आनंद था।

कमरे में चारों ओर नजर डालने के बाद वह मन ही मन संतुष्ट हुआ कि सबकुछ ठीक-ठाक था। फिर भी उस दिन सुबह वह सारी चीजें बारीकी से जाँच लेगा। इतने दिनों तक हर चीज की बारीकी से व्यवस्था करने के बाद अब उसे सारी चीजें अतींद्रिय-सी लग रही थीं। जिस तरह स्वाती का पत्र और उसका आना।

जब उसकी पास वाली सीट पर बैठकर स्वाती उसे अपने बारे में बता रही थी, उस दिन भास्कर को लग रहा था जैसे वह किसी कल्पना लोक में है। भरी दुपहरी में भीड़भाड़ वाली ट्रेन में बैठे हुए उसे ऐसा लग रहा था जैसे कि वह एकाकी किसी अशरीरी स्वर की रूपकथा पर सवार हो किसी अज्ञात लोक की ओर चला जा रहा है। ट्रेन से उतरकर स्वाती को विदा करते समय उसने पूछा था, तुम्हारी और मेरी इस तरह अचानक मुलाकात हुई, पहले तो हममें ऐसा कोई रिश्ता नहीं था। तुमने क्यों मुझसे इतनी सारी बातें बताईं? स्वाती ने गंभीर होते हुए कहा था, हर कोई अपनी गोपनीय बात किसी न किसी से बताना चाहता है। अनजान आदमी को ही ये बातें बताना सहज और सुरक्षित होती हैं, क्योंकि उस व्यक्ति से कोई समस्या उपजने की आशंका नहीं होती। तुम मेरे लिए अज्ञात और परिचित दोनों हो। इसीलिए तुमसे सारी बातें बता दीं।

अति तर्कसंगत थी वह बात। भास्कर स्वाती की गोपनीयतम बातों के श्रोता के रूप में मानो उपलक्ष्य मात्र था और उस रेल-यात्रा से ही शुरू और खत्म हो रहा था उनका परिचय और संपर्क।

स्वाती आएगी तीन दिन बाद।

भास्कर को रात में नींद नहीं आ रही थी कुछ दिनों से। पूरी रात बीत जाती थी तरह-तरह की चिंताओं में। इसलिए कल रात दवा खाकर टूटी-टूटी नींद में सोया था। पूरी रात वह सोचता रहा कि स्वाती से क्या बोलेगा; स्वाती के साथ क्या करेगा। यह चिंता शुरू-शुरू में आनंद से प्रारंभ होकर धीरे-धीरे आशंका में बदलने लगी थी। इस भय से बचने के लिए भास्कर खुद को दिलासा दे रहा था कि ऐन वक्त पर स्वाती का आना टल जाएगा।

स्टेशन से बिदा होने के बाद भास्कर ने सोचा नहीं था कि स्वाती पुनः उससे संपर्क करेगी। लेकिन एक दिन अप्रत्याशित रूप से उसका फोन आ गया। पहले की ही तरह आत्मीय और घनिष्ठ था स्वाती का स्वर। उसने उससे कुशलक्षेम पूछा, अपने कॉलेज की बातें, बच्चों की बातें, घर की बातें बताईं और आश्वासन दिया कि वह इसी तरह कभी-कभी फोन किया करेगी। मैं ही तुम्हें फोन करूँगी, स्वाती ने फोन रखते समय कहा था।

उसके बाद तीन-चार बार फोन किया था। भास्कर ने सोचा था कि शायद स्वाती को एक सहृदयी मित्र चाहिए, तभी वह खुश होने पर बीच-बीच में फोन करती है। वह स्वाती को लेकर किसी तरह की कल्पना-जल्पना नहीं करता था। लेकिन उसके पत्र ने ही सारा कुछ बदल कर रख दिया था।

स्वाती आएगी चौबीस घंटे बाद।

सुबह चार बजे नींद खुल गई भास्कर की। कल रात जानबूझकर नींद की दवा नहीं ली थी उसने। रात को नींद न आने की वजह से मन में बुरे-बुरे विचार आए थे। खुद को अति दुर्बल और असहाय समझ रहा था वह। उसे अहसास हो रहा था मानो उसने किसी अज्ञात समुद्र में छलांग लगा दी थी तैरने का जरा भी अनुभव न होने के बावजूद। आधी रात को स्वाती, स्वाती का पत्र, स्वाती का आना सबकुछ असंभव, अलौकिक लग रहा था उसे। सुबह-सुबह न जाने उसने कैसा बुरा सपना देखा। सपना अब उसे याद नहीं था, लेकिन उसकी खटास ने अब तक उसे उदास रखा था।

पिछले कुछ दिनों से अब वह उस पत्र को नहीं पढ़ता था। उसकी एकमात्र चिंता थी कि स्वाती आने पर वह कैसे उसका सामना करेगा। फिर सोचता था, स्वाती नहीं, स्वाती का पत्र आएगा कि वह नहीं आ रही है। मानों वह एक ऐसे ही पत्र पाने की उम्मीद में इंतज़ार कर रहा था।

उसने सोचा था कि स्वाती के आने वाले दिन से एक दिन पहले भी छुट्टी ले लेगा। लेकिन घर पर अकेले बैठकर स्वाती के आने की सच्चाई की प्रतीक्षा करने का साहस उसमें नहीं हो रहा था।

स्वाती आएगी बारह घंटे बाद।

घड़ी का अलार्म बजा, जबकि उसकी नींद काफी पहले ही टूट चुकी थी। जिस दिन के लिए वह इतने दिनों से तैयारी कर रहा था, आखिरकार वह दिन आ गया।

बिस्तर से उठकर पहले उसने चादर हटाई। इसे बदलना होगा। पूरे घर में उसे कई छोटे-छोटे काम करने हैं, यदि स्वाती का पत्र या टेलीग्राम न आया, उसके न आने की खबर लेकर। या टेलीफोन। छोटी-सी आशा से टेलीफोन की ओर देखा भास्कर ने। मानो उसकी नजर पड़ने से अचानक जीवंत होकर बज उठेगा वह यंत्र और उसका रिसीवर उठाते ही दूसरी ओर से स्वाती की आवाज आएगी कि वह नहीं आ रही है।

उसे काफी आलस आ रहा था। फिर भी वह हाथ-मुँह धोकर उस दिन के लिए तैयार हो गया। खीझते हुए दवा की टिकिया खाई और पूरे घर में घूम-घूमकर अपने इतने दिनों की तैयारी का मुआयना किया।

स्वाती आएगी दो घंटे बाद।

भास्कर ने टेलीफोन करके पूछा था कि, ट्रेन सही समय पर आ रही है? उसने नौकर को छुट्टी दे दी थी। घर में सारी चीजें सुसज्जित थीं। बिस्तर पर साफ चादर। रसोई में चाय की तैयारी। सारी चीजें अपनी जगह पर थीं। मानों तैयार नहीं था खुद भास्कर ही।

अंतिम बार के लिए वह पत्र अपने हाथ में लेकर टेबुल के पास बैठ गया। वह पत्र खूब स्पष्ट था। स्वाती स्टेशन से सीधे उसके घर आएगी दो घंटों के लिए। बाकी की बातें मुलाक़ात होने पर।

भास्कर ने कागज-कलम लेकर लिखना शुरू कर दिया : खेद है कि एक जरूरी काम से मुझे बाहर जाना पड़ रहा है। इसके लिए मुझे क्षमा करना। समय मिले तो फोन करना।

उस कागज को लेकर उसने दरवाजे पर खोंस दिया और ताला बंद करके तेजी से डग बढ़ाते हुए सड़क की ओर चल पड़ा।

मंत्र

शाम को घर लौटने पर प्रभाकर आमतौर पर दफ्तर की ही बातें करता है, किंतु उस दिन लौटकर बोला, सुनती हो, आखिरकार स्वामी जी ने हमारे चीफ इंजीनियर के घर पर ही डेरा डाल दिया है। सुहासिनी ने सुबह के अखबार में 'राजधानी में स्वामी जी का आगमन' शीर्षक समाचार पढ़ा था, फिर से पूछा, कौन स्वामी जी? प्रभाकर ने कहा, तुम घर पर बैठे-बैठे बाहर की कोई खबर ही नहीं रखती। कई सालों बाद स्वामी जी ओडिशा लौटे हैं अपने हिमालय के आश्रम से। खुद मुख्यमंत्री गए थे उन्हें एयरपोर्ट से लेने। उस बारे में अधिक जानने की जिज्ञासा हुई सुहासिनी को, किंतु उसके घर पर बैठे रहने वाली प्रभाकर की टिप्पणी उसे अच्छी नहीं लगी। उसने और कुछ पूछे बिना सिर्फ कहा, अच्छा! लेकिन प्रभाकर चुप नहीं रहा। बोला, अब चीफ इंजीनियर की सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। भला उन्होंने कम कोशिश की है स्वामी जी को हाथ में रखने की?

सुहासिनी का सारा आग्रह ठंडा पड़ गया। फिर वही दफ्तर की बातें। कौन किसका प्रिय-अप्रिय है; कौन चोर है, कौन सच्चा है और कौन किसे पकड़कर जुटा है अपनी पदोन्नति कराने या किसी दूसरे को नुकसान पहुँचाने में। खाना खाकर सोने जाते समय भी प्रभाकर ने अपनी बात की लीक पकड़ते हुए कहा, यदि चीफ इंजीनियर का तबादला रुक जाएगा, तो समझो कि स्वामी जी का करिश्मा है। सुहासिनी मन ही मन खीझ उठी और प्रभाकर को बेचैन करने के लिए पुरानी बात छोड़ते हुए बोली, तुम्हारा विजिलेंस केस इतने दिनों से अटका हुआ है, तुम भी क्यों नहीं पकड़ते स्वामी जी को? हालाँकि दोनों बच्चे सो चुके थे दूसरे कमरे में और वे दोनों अकेले थे, प्रभाकर ने कहा, ये सब बातें जोर से मत कहो। अपनी आवाज और भी धीमी करते हुए बोला, स्साले न जाने कितना-कितना पैसा खाकर मौज-मस्ती कर रहे हैं; मेरे ही समय इन्हें केस करना था। केस तो न जाने कब का खत्म हो गया होता, पर उसे पकड़े बैठे हैं बीच-बीच में मुझे

डराकर पैसे ऐंठने के लिए। केस भी कैसा कि स्टोर से सामान गायब था। सात दिन के अंदर तो...।

दफ्तर की फाइलों में प्रभाकर ने जो कैफियत दिए थे, उनकी पुनरावृत्ति बार-बार पत्नी के आगे करके वह सुहासिनी और खास करके खुद को सांत्वना देता था कि उसकी कोई गलती नहीं है। वह भी अन्य भ्रष्ट अफसरों की तरह बच जाएगा केस से। अफसोस उसे इस बात का था कि उसके गलत कामों के लिए उसके सहकर्मियों की पत्नियों की तरह सुहासिनी उसकी मदद नहीं करती थी। उसकी दुर्दशा में भाग लेना तो दूर, इस वक्त वह अपने केस का जो लंबा विवरण सुनाता था, सुहासिनी उसमें जरा भी रुचि नहीं लेती थी। अपनी बात रोककर प्रभाकर ने पूछा, सो गई क्या? दूसरी ओर करवट लेते हुए सुहासिनी ने कहा, हाँ।

लेकिन सुहासिनी को नींद नहीं आ रही थी। प्रभाकर ने उसे बड़ी आसानी से कह दिया कि वह बाहर की कोई खबर नहीं रखती। वह भी ऐसी खबर कि कोई ढोंगी साधु आकर किसी भ्रष्ट चीफ इंजीनियर के घर डेरा डालेंगे। पढ़ाई के दिनों में सुहासिनी सिर्फ राजनीति विज्ञान की किताबें नहीं पढ़ती थी, देश-विदेश की खबरें रखने में भी अव्वल थी। एक मेधावी छात्रा और नेता के तौर पर कॉलेज में उसका सम्मान था। खेलकूद से लेकर कॉलेज के नाटकों तक में वह भाग लेती थी। कॉलेज के दिनों की कई छोटी-बड़ी घटनाएँ अब याद आ रही थीं उसे : सहेलियों का इकट्ठे होकर सिगरेट पीते हुए पकड़े जाना, क्लास में नए लेक्चरर को परेशान करना, रात को सिनेमा से लौटकर फाटक कूदकर हॉस्टल में घुसना। काफी दिनों से उसने पुराने दिनों के बारे में सोचना छोड़ दिया था, लेकिन आज अनायास ही उसे याद आ रही थीं बेहद छोटी-छोटी बातें और दृश्य; डिबेट में प्राइज लेकर लौटते समय उनके द्वारा ट्रेन में गाया गया गीत, अपनी पसंद के लड़के के लिए लिखी दो पंक्तियों वाली कविता के शब्द, सिनेमा हॉल के अंधेरे में किसी का हाथ आकर उसकी छाती को छूने की पुलक और बेताबी। नहीं, अब इन चीजों को याद करने से कोई लाभ नहीं। ढेरों आशा आकांक्षाएँ थी उसकी, किंतु पीएच.डी. करते समय शादी हो गई। उससे कम योग्यता वाली उसकी सहेलियाँ नौकरी की सीढ़ियाँ एक-एक करके चढ़ती चली जा रही हैं, जबकि वह अपने पति के साथ एक मुफस्सल से किसी दूसरे मुफस्सल में अपनी घर-गृहस्थी बदलने में व्यस्त रही। उसके पति के जूनियर असिस्टेंट से एक्जेक्युटिव

इंजीनियर बनने तक उसकी प्रगति में शामिल हुईं दो संतानें, घर में और कुछ चीजें एवं नौकर-चाकर। शुरू-शुरू में अप्राप्ति को लेकर जो क्षोभ उपजा करते थे, उन्हें उससे चेष्टा करके दूर कर दिया यह सोचकर कि उसका प्रथम कर्त्तव्य है दोनों बच्चों का लालन-पालन करके उन्हें इंसान बनाना। इसी में बीत गए उसकी जिंदगी के बीस साल।

प्रभाकर से कभी भी उसका गंभीर मनमुटाव नहीं हुआ था और न कभी उससे अच्छी तरह मन ही मिला था सुहासिनी का। प्रभाकर विषयी था और हमेशा लगा रहता था अधिक से अधिक संपत्ति इकट्ठा करने में। एक कर्मठ अफसर के रूप में उसका नाम था और अपने सहकर्मियों की तुलना में अधिक भ्रष्ट नहीं था। अपना सारा समय वह काम में लगाता था और घर लौटने पर योजना बनाता था कि कहाँ नया घर बनाएगा, कौन-सी नई चीज खरीदेगा और चोरी के पैसे कहाँ निवेश करेगा। लेकिन इन चीजों में सुहासिनी की कोई रुचि नहीं थी। प्रभाकर जब घर बनाने का नक्शा लाकर दिखाता था और उसे शीघ्र पूरा करने की बात करता था, सुहासिनी उसमें दिमाग न लगाकर उसकी हर बात में हामी भर देती थी। प्रभाकर को दुख इस बात का था कि जब वह सुहासिनी के हाथों में आभूषण का डिब्बा या रुपए, लेन-देन के कागजात लाकर देता था, सुहासिनी कृतज्ञता और आनंद से गदगद न होकर उन्हें निर्विकार रूप से ले जाकर अलमारी में रख देती थी। प्रभाकर को इस बात की संतुष्टि थी कि पत्नी की विमुखता के बावजूद उसकी घर-गृहस्थी और संपत्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी।

उसने सोचा था कि राजधानी पहुँचने के बाद सुहासिनी का मन बदल जाएगा और वह उसकी नौकरी एवं जमीन-मकान की योजना में कुछ रुचि लेगी, परंतु वैसा कुछ नहीं हुआ। बेटी इस वक्त कॉलेज में पढ़ती थी और बेटा स्कूल के अंतिम क्लास में। अब उनके प्रति सुहासिनी की कोई खास जिम्मेवारी नहीं थी। इसलिए वह अपना पूरा समय अपनी पुरानी सहेलियों से मिलने, बच्चों की पढ़ाई के बारे में पूछने एवं अपने छोटे से बगीचे की देखभाल करने में बिताती थी। प्रभाकर समझ नहीं पा रहा था इतना पैसा इकट्ठा करके परिवार को इतनी सुख-सुविधाओं में रखकर, उनके भविष्य के लिए संपत्ति इकट्ठा करने की बातें सुहासिनी को क्यों प्रभावित नहीं कर पा रही थीं और वह इन विषयों से कटकर रहती थी। फिर भी प्रभाकर अपनी सारी बातें उससे लगातार बताता रहता था, बावजूद इसके कि सुहासिनी उसकी सारी बातें अनसुनी कर देती थी।

दो दिन बाद रात को देर से घर लौटकर सुहासिनी से बोला, आज दफ्तर से सीधे चला गया था स्वामी जी के पास। वाकई बहुत सुंदर प्रवचन दिया उन्होंने! आज गीता का एक अध्याय समझाया। सुना है, उन्होंने गीता पर एक भाष्य भी लिखा है। सुहासिनी ने कहा, गीता पर हजारों किताबें लिखी गई हैं। फिर भी सभी स्वामी जी उस पर एक और टीका जरूर लिखेंगे।

उनकी किताब में क्या लिखा होगा, कौन जाने, पर उनकी कथा मानों अमृत है। एक बार सुनने बैठ जाओ तो फिर उठने का मन नहीं होगा। स्वामी जी केवल गीता भागवत ही नहीं, कुरान, बाईबिल पर भी ऐसा ही प्रवचन देते हैं। मैं सोचता हूँ दफ्तर से लौटते समय रोजाना उसी रास्ते से होकर आऊँगा।

सुना है, स्वामी जी ने असंभव को संभव कर दिखाया है? मौका देखकर तुमने भी अपने विजिलेंस केस की बात क्यों नहीं कही?

उन्हें अकेला पाकर ये सब बातें कहना क्या इतना आसान है? तुम उनके समारोह में जाकर देखो तो पता चलेगा वहाँ कितने लोग इकट्ठे होते हैं। जिस पर उनकी कृपा हो जाती है, उसे बुलाते हैं मंत्र देने के लिए।

कौन जाने कैसा मंत्र? आज उन्होंने प्रवचन के बाद बुलाया था राव साहब को। इतने लोग वहाँ बैठे थे, किंतु स्वामी जी की नजर पड़ी उस कंट्राक्टर पर ही।

तुम्हें क्या लगता है, तुम्हारी बारी कब आएगी? सुहासिनी ने पूछा। अभी लोगों का मेला लगा हुआ है। उनका ड्रांइग-रूम भला अब बैठक कहाँ रहा? स्वामी जी सारा दिन वहीं बिताते हैं। कभी प्रवचन देते हैं तो कभी प्रश्नों के उत्तर। और फिर किसी वक्त किसी को अंदर बुला ले जाते हैं मंत्र देने के लिए।

चलो, शहर के लोगों को कुछ तो अच्छा काम मिल गया। यहाँ तो दफ्तर के सिवाय किसी को और कोई काम ही नहीं रहता, अब तो मनोरंजन के लिए कम से कम स्वामी जी का चेहरा देखने को मिल जाएगा।

क्या फालतू की बातें कर रही हो, प्रभाकर ने कहा; तुम खुद ही एक बार जाकर सुनो उन्हें तो समझ जाओगी स्वामी जी कितने ज्ञानी हैं।

अब रोजाना शाम को प्रभाकर स्वामी जी के पास जाने लगा और सुहासिनी को रात में सुनना पड़ा उसका धारावाहिक वृत्तांत। स्वामी जी के पास आजकल अधिक से अधिक लोग आने लगे और उस चीफ इंजीनियर का मकान छोड़कर वे एक भाड़े के मकान में रहने लगे। शायद राजधानी आने का उनका खास मकसद था, वे आश्रम में जो अस्पताल बनवा रहे थे,

उसके लिए पैसे इकट्ठे करना। इस बीच शहर के अफसर, व्यापारी, नेतागण उन्हें इसके लिए लाखों रुपए दे चुके थे। स्वामी जी कहते थे, अस्पताल के लिए पैसों का पूरा इंतजाम होते ही वे पुनः अपने आश्रम लौट जाएँगे।

एक दिन घर पहुँचते ही प्रभाकर ने उत्तेजित स्वर में कहा, सुनती हो, चीफ इंजीनियर का तबादला रुक गया। सुहासिनी के कुछ न कहने पर प्रभाकर ने पुनः कहा, किसी ने सोचा नहीं था कि यह असाध्य काम सध जाएगा। मुरझायी-सी आवाज में सुहासिनी ने कहा, इसका मतलब स्वामी जी काफी पहुँचे हुए हैं। प्रभाकर ने सोचा था कि सुहासिनी इस बारे में और भी बारीकी से जानना चाहेगी, पर ऐसा कुछ हुआ नहीं। परंतु दो दिन बाद जब प्रभाकर ने आकर बताया कि स्वामी जी ने आज मुझे मंत्र देने के लिए बुलाया था, तब सुहासिनी चुप नहीं रह पायी। उसने पूछा, कैसे, कौन-सा मंत्र दिया? इतने दिनों तक सुहासिनी ने उसकी बातों के प्रति कोई उत्साह न दिखाए होने के कारण प्रभाकर क्षुब्ध था। बोला, बाद में बताऊँगा।

रात को सोते समय भी जब प्रभाकर ने अपनी ओर से वह बात नहीं उठाई, सुहासिनी ने सोचा, अब वह उस बारे में उससे नहीं पूछेगी। लेकिन वह अपना कौतूहल दबाकर नहीं रख पाई; बोली, तुम बता रहे थे कि आज स्वामी जी ने तुम्हें मंत्र दिया है; कौन-सा मंत्र? अब प्रभाकर ने उस दिन शाम का एक विस्तृत विवरण दिया। स्वामी जी ने कठोपनिषद की व्याख्या करने के बाद उससे संबंधित दो-चार प्रश्नों के उत्तर भी दिए। उसके बाद उन्होंने समारोह में बैठे लोगों की ओर देखा, जब उनकी नजर प्रभाकर पर पड़ी, उठकर खड़े हो गए; और उसे अपने साथ अंदर जाने को बुलाया। अंदर पूजा के कमरे में उसे बिठाकर बोले, तुम्हारी जो समस्या है, वह कुछ ही दिनों में सुलझ जाएगी।

सुहासिनी कुछ कहने वाली थी, प्रभाकर ने कहा, तुम सोच रही होगी यह कौन-सी बड़ी बात है! ऐसा तो किसी से भी कहा जा सकता है, क्योंकि सबकी कोई न कोई समस्या तो होती ही है। लेकिन उसके बाद उन्होंने मुझसे उस केस के बारे में ऐसी-ऐसी बातें पूछीं, जिससे कि मुझे लगा कि उन्हें सबकुछ मालूम है।

तुम्हारे बारे में वे इतनी बातें कैसे जानेंगे? उनसे मिलने जितने भी लोग जाते हैं, क्या वे उनके बारे में सबकुछ जानते होंगे? यदि तुम्हारे बारे में उन्होंने पहले से जानकारी इकट्ठी की होगी तो बात अलग है।

हालाँकि उनके इर्द-गिर्द चीफ इंजीनियर के बीबी-बच्चे अभी भी रहते हैं, किंतु वे लोग मेरे बारे में उन्हें इतनी जानकारी क्यों देंगे? बहरहाल, स्वामी जी ने कहा है कि वे मेरी समस्या पर ध्यान देंगे।

तुम्हें मंत्र कितने बजे दिया?

नहीं अभी मुझे पूरा मंत्र दिया ही कहाँ है? मुझे एक कागज दिया है। उसमें अभी कुछ लिखा नहीं है। उन्होंने कहा है मुझे फिर कभी बुलवाकर उसमें मेरे लिए मंत्र लिख देंगे।

ओ, इत्ती-सी बात है। सुहासिनी निराश हो जाने-सी लगी। प्रभाकर ने कहा, मुझसे इस तरह सुन-सुनकर तुम कैसे समझोगी कि स्वामी जी कैसे व्यक्ति हैं? यदि तुम उनका प्रवचन सुनने जाओगी तो समझ जाओगी उनमें कितना ज्ञान है।

मुझे ऐसे बाबाओं के पास जाने की जरूरत नहीं है। यदि मुझे धर्म के बारे में जानना होगा तो मैं किताबें क्यों नहीं पढ़ूँगी? सुहासिनी ने यह बात कही जरूर थी, पर कुछ ही देर बाद उसने पूछा, क्या वहाँ महिलाएँ भी जाती हैं?

उनसे मिलने जाने वालों में आधे से अधिक तो महिलाएँ ही हैं। चूँकि वे ऑफिस के समय दर्शन देते हैं, इसलिए अधिकतर महिलाएँ ही होती हैं वहाँ। एक बार जाकर तो देखो।

नहीं मुझे जाने की जरूरत नहीं। सुहासिनी ने ऐसा कहा, किंतु प्रभाकर को आधा मंत्र मिल जाने की बात सुनने के बाद उसमें भी कौतूहल जगा था कि जाकर देखेगी कि यह आदमी क्यों किसी साधु के पास रोज शाम को जाकर मत्था टेकता है। कुछ दिनों बाद एक दिन शाम को दोनों बच्चों के किसी के घर चले जाने पर सुहासिनी प्रभाकर के साथ निकल पड़ी स्वामी जी के पास जाने को।

अपने समस्त प्रतिकूल मनोभाव के बावजूद प्रथम दर्शन में ही सुहासिनी को मान लेना पड़ा कि वाक़ई स्वामी जी एक प्रभावशाली व्यक्तित्व हैं। कमरे में लोग भरे थे; सामने कुछ ऊँचे आसन पर बैठे थे स्वामी जी। उसी के उम्र के, या फिर उससे कुछ कम उम्र के होंगे, उन्होंने खुद को पूरी तरह सजा रखा था इस पात्र के लिए। इस फाइव स्टार स्वामी जी के बाल, उनकी दाढ़ी, उनके गेरुए वस्त्र मानो डिजाइनर ने बनाए हों। वे लग रहे थे जैसे कोई सुदर्शन अभिनेता स्वामी जी की भूमिका में अवतरित हुए हों। उनके चेहरे की सबसे दर्शनीय चीज थी उनकी दो आँखें, जो बीच-बीच में सभी श्रोताओं की आँखों से मिल जाती थीं; किसी और की होतीं तो शायद उसे लोलुप या लंपट कहा जाता, किंतु किसी स्वामी जी के चेहरे पर होने की वजह से उन्हें मर्मभेदी और सम्मोहक समझा जाता था।

सुहासिनी और अधिक प्रभावित हुई जब स्वामी जी ने अपना वक्तव्य शुरू किया। आज वे रामकृष्ण परमहंस के बारे में बता रहे थे। मुफस्सल से आए एक अशिक्षित युवक ने किस तरह कलकत्ते के मध्यमवर्गीय समाज में तहलका मचा दिया था, उस बारे में बताया स्वामी जी ने। तरह-तरह के व्यक्तिगत विवरण, कहानियों और देशी-विदेशी लेखकों के उदाहरण देकर जब उन्होंने परमहंस के जीवन दर्शन पर व्याख्यान खत्म किया, सुहासिनी ने मान लिया कि इस व्यक्ति में अच्छी विद्या-बुद्धि है। उस दिन मंत्र देने के लिए स्वामी जी ने जिसे चुना, वे थीं किसी वरिष्ठ अफसर की सहधर्मिणी। घर लौटते समय प्रभाकर ने कहा, क्यों अब तो विश्वास हुआ ना मेरी बातों पर? मैं कहता था ना स्वामी जी में कोई विशेष शक्ति है? सुहासिनी ने कहा, अच्छा प्रवचन दिया स्वामी जी ने। उन्होंने पहले भी जो प्रवचन दिए हैं उनके टेप यदि किसी के पास हों, तो जरा पूछना।

उस दिन के बाद से जब भी सुविधा मिली सुहासिनी को उसने स्वामी जी के सत्संग में भाग लिया। हर सत्संग वे एक अति अप्रत्याशित नए विषय पर प्रवचन देते थे, लेकिन उनका हर प्रवचन होता था सारगर्भित और स्मरणीय। दिन में स्वामी जी जितनी देर बैठते थे उस वक्त पुरुष अपने कामों में व्यस्त होने के कारण सिर्फ महिलाएँ ही दर्शनार्थी होती थीं। सुहासिनी उस सत्संग में लगातार जाने लगी। उसे सारे प्रवचन अति चमत्कारपूर्ण लगते थे, किंतु स्वामी जी का एक महिला को अंदर ले जाकर मंत्र देने की बात उसे एक तरह से अश्लील लग रहा था। संभवतः और भी लोग ऐसा ही सोच रहे होंगे, क्योंकि जितनी देर तक स्वामीजी अंदर रहे, दर्शनार्थियों में एक तरह का मृदु गुंजरण एवं दबी-दबी हँसी सुनाई देती रही। इतनी गनीमत थी कि उस घर में चीफ इंजीनियर के रिश्तेदार हर वक्त दिखाई देते थे और चारों ओर एक खुला-खुला सा माहौल था।

इसी तरह कुछ दिनों तक सत्संग में जाने के बाद एक दिन अचानक सुहासिनी ने खुद से सवाल किया, स्वामी जी उसे क्यों नहीं बुलाते मंत्र देने के लिए! वह स्वयं उस मंत्रदान पद्धति को अति असभ्य और अशोभनीय समझती थी और उसे लगता था इसमें कहीं न कहीं एक प्रच्छन्न यौनभाव है। हालाँकि ऐसा नहीं था कि स्वामी जी सिर्फ सुंदर तरुणियों को ही मंत्र देने के लिए बुलाते थे। शायद स्वामी जी ऐसी बुरी चिंता से परे थे। फिर भी सुहासिनी अपने मन से उस संशय को दूर नहीं कर पा रही थी।

उसकी इच्छा हुई कि किसी तरह खुद ही जाकर देखे स्वामी जी किस तरह मंत्र देते हैं। जबकि प्रभाकर ने अपना अनुभव उसे विस्तार से सुनाया था। इस बीच प्रभाकर पुनः स्वामी जी के पास जाकर उनसे मंत्र लाया था। स्वामी जी ने उसे जो कागज दिया था उसे तहा कर उनकी खाली झोली में डाल देने को कहा था। झोली से पुनः निकालकर घर पहुँचने पर उस कागज पर मंत्र लिखा हुआ था। वह मंत्र किसी को बताने से मना किया था स्वामी जी ने और इसीलिए सुहासिनी के आग्रह करने के बावजूद प्रभाकर ने नहीं बताया वह मंत्र क्या था।

जिस दिन उसके पास बैठी वयस्क पृथुल भद्रमहिला की मंत्र लेने की बारी आई, सुहासिनी ने यह तया किया कि उसे इस संबंध में कुछ करना पड़ेगा। उसने अपने बारे में सोचा। उम्र बढ़ते जाने के बावजूद वह अब तक अपनी खूबसूरती के प्रति सजग रहकर शरीर का ध्यान रखती थी और सोचा करती थी कि लोग उसे सुंदरी ही कहते होंगे। जब अगले दिन वह स्वामी जी के पास जाने को निकली, उसने खुद को और जरा सजा-सँवार लिया और आँखों को आकर्षित करने जैसी एक साड़ी पहन ली। फिर भी स्वामी जी की नजर उस दिन उस पर न टिकने के कारण उसने मन ही मन गाली दी और सोचा कि अच्छा ही हुआ, मंत्र लेने की अश्लील विधि की उसे जरूरत नहीं। खुद से यह कहने के बावजूद आगामी दिनों में वह और भी ज्यादा सज-धजकर जाती और अगली पंक्ति में बैठ जाती। स्वामी जी की नज़रें खुद पर टिकाना मानो अब एक स्पर्धा का विषय हो गया था उसके लिए? वह मन ही मन स्वामी जी को संबोधित करके कहती, देखती हूँ कब तक नज़रें दूर रखते हैं मुझसे।

अंततः मानों स्वामी जी ने हार मान ली और एक दिन दोपहर में मंत्र देने के लिए सुहासिनी को बुलाया। सत्संग से उठकर स्वामी जी के पीछे-पीछे जाते समय वह जितना खुश थी, उतनी ही चिंतित भी थी उसके पीछे से जो मधुर फब्तियाँ कसी जाएँगी उससे। पर उसने मन में ठान लिया था कि स्वामी जी के आमने-सामने भेंट करते समय उसे क्या करना है। सत्संग हॉल से निकलकर स्वामी जी पीछे बनी जिस अंधेरी कोठरी में घुसे, उसके अंदर जाकर सुहासिनी ने देखा कि वह कोठरी वैसी ही है जैसा कि प्रभाकर ने वर्णन किया था। उसमें एक ओर देवी-देवताओं की मूत्तियाँ रखी जाकर पूजी जाती थीं और दूसरी ओर हिरण की छाल बिछी थी एक दीवान पर। जब वे लोग कोठरी में घुसे, एक लड़की वहाँ पूजा की सामग्री ठीक-ठाक कर रही थी। सुहासिनी ने उसे पहचाना, चीफ

इंजीनियर की साली है। कुछ देर बाद पूजा की जगह सजाने के बाद वह बाहर चली गई और दरवाजा उढ़ालने के बाद स्वामी जी हिरण की छाल पर बैठ गए और अपने चरणों के पास सुहासिनी को बैठने की जगह दिखा दी।

सत्संग के समय हॉल में स्वामी जी का ऊँचे आसन पर बैठना और भक्तों का उनके सामने जमीन पर बैठना अलग बात है। किंतु एक कोठरी में सिर्फ दो लोग होने पर एक व्यक्ति का दूसरे के चरणों पर बैठना अत्यंत अपमानजनक लगा सुहासिनी को। उसने कहा, आपके ऊपर बैठे होने पर मैं नीचे नहीं बैठ सकती। उसकी ओर देखकर स्वामी जी मुस्कराए। बोले, मुझसे यह बात आज तक किसी ने नहीं कही। यहाँ तक कि मुख्यमंत्री आने पर भी मेरे चरणों में बैठते हैं। इतना कहकर अपनी जगह से थोड़ा खिसककर उन्होंने सुहासिनी के बैठने के लिए जगह बना दी। वहाँ बैठकर सुहासिनी को ऐसा लगा जैसे इस छोटे आसन पर स्वामी जी के इतने करीब सटकर बैठना नीचे बैठने से अधिक सुखद नहीं था।

इस बार उसकी ओर प्रशंसा भरी निगाह से देखते हुए स्वामी जी ने पूछा, तेरा नाम क्या है बेटी? नहीं, स्वामी जी ने उसे असम्मान जनक रूप से संबोधित नहीं किया है, इसलिए कोई विरोध नहीं किया जा सकता, स्वामी जी लोगों को यह अधिकार होता है। इसके अलावा बेटियों को तू कहने का प्रचलन भी है। इसलिए अब उसने किसी तरह का विरोध न करते हुए अपना नाम बताया। स्वामी जी ने कहा, सुंदर नाम है। किंतु मैं तुझे एक नया नाम दूँगा। तू 'स्वाहा' है और सोलह मातृका में से एक। सुहासिनी ने सोचा, ठीक ही है। मैं तुझे जलाकर भस्म कर दूँगी। मैं तेरी ओर देखकर तेरे बारे में सबकुछ जान चुका हूँ। स्वामीजी बोले, तू वैवाहिक जीवन में इतना दुखी क्यों है बेटी?

जीवन में कौन दुखी नहीं है? किसी का भी चेहरा देखकर यह कहा जा सकता है।

लेकिन किसी का चेहरा देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि उसके पति का नाम प्रभाकर है?

हार मान ली सुहासिनी ने। स्वामी जी को जितना चालाक और चतुर आदमी सोचा था सुहासिनी ने, उससे भी गहराई में थे वे। निश्चय ही वे उसके बारे में काफी कुछ जानते हैं। अब से उसे बातचीत में सतर्क रहना होगा। उसने स्वामी जी की ओर देखा। वे उसी तरह परम आत्मविश्वास से उसकी ओर देख रहे थे और उनकी आँखों में इस वक़्त थोड़े से व्यंग्य का आभास भी था। स्वामी जी

ने उसके सिर पर हाथ रखा, कहा मैं तेरा दुख दूर कर दूँगा। अपनी अंगुली से उन्होंने सुहासिनी की पलकें बंद कर दीं।

धीमी रोशनी और धूप-चंदन की महक से कोठरी में एक भारहीन मृदु वातावरण व्याप्त था। इस वक्त आँखें मुँदी होने के कारण खुद को और भी स्वच्छंद महसूस किया सुहासिनी ने। उसके बालों पर स्वामी जी के हाथ का दबाव प्रीतिकर लगा। उनके हाथ की अंगुलियाँ उसके बालों को सहला रही थीं। जब उन्होंने अपनी दोनों हथेलियों से उसके गालों को छुआ, सुहासिनी ने आँखें खोलकर उनकी ओर देखा। लेकिन स्वामी जी ने अपनी हथेलियाँ उसके गालों से नहीं हटाई। उसके वयस्क जीवन में प्रभाकर के अलावा और किसी ने उसे इतने घनिष्ठ रूप से छुआ हो, याद नहीं सुहासिनी को। शायद किसी किसी ने उसे धोखे से, अन्यमनस्कता से या आकस्मिकता के बहाने कभी-कभी छुआ था, किंतु स्वामी जी ने उसका पूरा चेहरा अपनी हथेलियों में थाम रखा था पूरे सत्साहस और आत्मप्रत्यय के साथ। परिस्थिति को अपने नियंत्रण से निकलते देख सुहासिनी बोली, आप मुझे मंत्र दीजिए। स्वामी जी उसे छोड़कर खड़े हो गए और पूजा के स्थान से एक कागज लाकर अपनी जगह पर बैठ गए। वह कागज उन्होंने सुहासिनी की हथेली पर रखा, लेकिन सुहासिनी की हथेली से अपना हाथ नहीं उठाया। इस बार सुहासिनी ने अपना दूसरा हाथ लाकर उनके हाथ पर रख दिया।

मैं तुझे एक खास मंत्र दूँगा, स्वामी जी ने कहा, किंतु उससे पहले पूजा करनी होगी। वे पूजा की जगह चले गए और सुहासिनी भी पीछे-पीछे जाकर उनके पास बैठ गई। स्वामी जी ने कहा, पूजा से पहले सारे आभरण उतार-कर रख दे। सुहासिनी ने अंगुली से अंगूठी निकाल दी, कलाइयों से चूड़ियाँ उतार दीं, कानों से कनपासे निकाल दिए। उसका बदन और चेहरा मानो इस वक्त आग के ताप से जल रहे थे। उसने स्वामी जी की ओर देखा और उनमें भी वही आँच दिखी। स्वामी जी ने गंभीर होते हुए कहा, सारे आभरण। सुहासिनी ने सोचा वह उठकर कोठरी से बाहर निकल जाएगी, लेकिन उसने ऐसा न करके असहाय आँखों से उढ़ाले हुए दरवाजे की ओर देखा। स्वामी जी उठकर गए और दरवाजा बंद कर आए।

सुहासिनी ने ध्यान नहीं दिया था कि स्वामी जी की आवृत्ति वाला टेप कब से बज रहा है। वह पहले की तरह दीवान पर बैठी थी और स्वामी जी उसकी

बगल में। देह का सारा ताप उतर चुका था और चारों ओर समन्वित जान पड़ा। उसके हाथ में अब तक कागज का वह टुकड़ा था। उसे स्वामी जी को दिखाते हुए सुहासिनी ने पूछा, क्या आप सबको इसी तरह विशेष मंत्र देते हैं? स्वामी जी मुस्कराए; बोले, जो मुझे अच्छे लगते हैं, सिर्फ उन्हीं को। सुहासिनी ने कहा, तू एक ठग है। स्वामी जी बोले, आज तूने दो चीजें कर दिखाईं, वो अभी तक किसी ने नहीं किया था। किसी ने आज तक मेरे चरणों में बैठने से मना नहीं किया था और ना ही किसी ने तू कहने का साहस।

मैंने गलत कहा था, सुहासिनी ने कहा और स्वामी जी के करीब खिसक गई। अपनी हथेली से उनके गाल पर थपकी देते हुए बोली, मुझे यह कहना चाहिए था कि तू एक असली ठग है, समझा?

सही कहा। फिर कब आएगी इस ठग के पास ठगी जाने के लिए?

अब नहीं भी आ सकती। पर तेरे सत्संग में जरूर आऊँगी। तू भले ही कुछ भी हो पर प्रवचन अच्छा देता है, याद रह जाने लायक।

तो फिर मैं तेरे लिए एक काम भी तय कर देता हूँ। मेरे प्रवचन के कैसेट कागज पर लिखकर उनकी किताब छपवाने के लिए लोग कह रहे हैं। यदि तू यह काम कर देती, अच्छा होता। इसकी आड़ में हमें मिलने में भी दिक्कत नहीं होगी।

तू वाकई एक ठग है; ठग और लंपट। सुहासिनी उठकर खड़ी हो गई, पर्स में उस कागज को रख लिया और जाने लगी। स्वामी जी ने उसे अपनी बाँहों में जकड़ लिया और कहा, फिर जल्दी आना। सुहासिनी बोली, देखती हूँ।

बाहर आने पर उसकी मुलाकात हुई चीफ इंजीनियर की साली से। मन में एक तरह का संकोच और लाज भर गया था उसमें। किंतु उसने सहज ही मन से उन्हें दूर कर दिया और तय किया कि घर पहुँचकर वह दिनभर की बातें याद करेगी।

लेकिन घर पहुँचकर बच्चों का ध्यान रखने, अतिथियों का सत्कार करने और अन्य छोटी-छोटी बातों में पूरी तरह व्यस्त हो गई। शाम होते ही प्रभाकर आ गया : बोला, आज मेरी फाइल पर आर्डर हो गया। मेरे नाम पर जितने भी आरोप थे, सब समाप्त हो गए। सुहासिनी ने पूछा, कैसे हो गया यह सब? प्रभाकर ने कहा, निश्चय ही स्वामी जी ने कुछ किया होगा। वरना इतने दिनों से दबी पड़ी फाइल निकाल कैसे दी गई? मैं जाकर स्वामी जी को कुछ पैसे दे आता हूँ। तुम भी चलो मेरे साथ।

उसका जाने को मन कर रहा था, परंतु बोली, मैं दोपहर में गई थी। अब जाने को मन नहीं कर रहा।

क्या साधु-संतों के पास दिन में दो बार जाना मना है? तुम्हें तो आज तक स्वामी जी पर विश्वास ही नहीं हुआ। यदि वे तुम्हें कोई चमत्कार करके दिखाएं तब जाकर तुम मानोगी। बड़े काम के आदमी हैं स्वामी जी। देख तो रही हो एक से बढ़कर एक असाध्य काम करते चले जा रहे हैं।

सुहासिनी ने प्रभाकर को बताया कि उसने भी स्वामी जी से आधा मंत्र लिया है और पूरा मंत्र लेने के लिए उसे पुनः जाना होगा। स्वामी जी के प्रवचन टेप से सुनकर लिखने वाली बात भी उसने उसे बताई। प्रभाकर खुश हुआ यह सब सुनकर। चलो, स्वामी जी में कुछ तो मन लग रहा है सुहासिनी का। लेकिन उस दिन शाम को सुहासिनी प्रभाकर के साथ स्वामी जी के पास नहीं गई। अगले दिन दोपहर को स्वामी जी के पास जाए या न जाए, सोच ही रही थी कि उसके पास स्वामी जी द्वारा भेजे गए सारे कैसेट पहुँच गए। सुहासिनी ने घर पर बैठकर उन कैसेट्स को सुना और कागज लाकर प्रवचन लिखने की चेष्टा की।

अब वह स्वामी जी के सत्संग में न जाकर कैसेट्स सुनकर जो कुछ लिखती थी उसे साथ लेकर अलग से स्वामी जी से चर्चा करती थी। स्वामी जी भी अपने प्रवचन का समय बदलकर काफी समय देते थे उस किताब को तैयार करने में। अब स्वामी जी के साथ एकांत में बैठकर बातचीत करने में उसे कोई समस्या नहीं थी। प्रभाकर भी खुश होता था स्वामी जी के प्रति सुहासिनी की ऐसी भक्ति देखकर। आजकल अकेले होने पर स्वामी जी अपनी बात बताया करते थे सुहासिनी को। एक दिन सुहासिनी ने अपने पर्स से मंत्रवाला वह कागज निकालकर उसे खोलकर स्वामी जी को दिखाकर बोली, तू तो कहता था कि इसमें कुछ लिखा हुआ निकालेगा? अब दिखा अपना चमत्कार। स्वामी जी उठकर गए और पूजावाली जगह से एक थैली लाकर सुहासिनी के हाथ से वह कागज लेकर उसे उसमें डाल दिया। थैली में एक और गुप्त पॉकेट था और उसमें एक ही जैसा दूसरा कागज था। उसे निकालकर सुहासिनी ने पढ़ा, उसमें सिर्फ 'ॐ श्री' लिखा था। सुहासिनी ने कहा, इस तरह कब तक लोगों को ठगेगा? एक न एक दिन तो पकड़ा जाएगा।

स्वामी जी ने कहा, कागज पर अपने आप कुछ लिख जाना असंभव है, यह कौन नहीं जानता? लेकिन लोग विश्वास करना चाहते हैं चमत्कार पर। यदि ऐसी ठगाई से कुछ लोगों को लाभ हो रहा है तो इसमें क्या बुरा है? डॉक्टरों द्वारा रोगियों को संतुष्ट करने के लिए झूठी दवा देकर रोग ठीक करने के उदाहरण भी हैं।

लेकिन तू लोगों का काम भी तो करा देता है! चीफ इंजीनियर का तबादला रुकवा दिया; मेरे पति की फाइल निकलवा दी।

यह तो और भी आसान है। जब इतने बड़े-बड़े लोग भक्त बनकर मेरे पास आते हैं, क्या उनसे ये छोटे-छोटे काम नहीं करवाए जा सकते?

और अस्पताल के नाम पर यह जो चंदा इकट्ठा कर रहा है?

तू विश्वास कर, शायद यही मेरे जीवन का सबसे अधिक निष्कपट काम है। सारा रुपया, वाकई जाएगा अस्पताल के लिए। मुझे अपनी तो कोई दिक्कत है नहीं भक्तों की कृपा से। सोचा, कम से कम कोई अच्छा काम कर जाऊँ।

स्वामी जी उठकर गए और एक बक्सा लाकर दिखाने लगे। उसमें पैसे और अलंकार भरे थे। सुहासिनी ने अपने हाथ से एक चूड़ी उतारकर उसमें डाल दी और बोली, ठीक है ना, मैंने तेरी बात पर विश्वास किया। यह तेरे अस्पताल के लिए मेरा दान है। जब अस्पताल खुलेगा तब मुझे बुलाएगा या नहीं?

स्वामी जी अचानक गंभीर हो गए। बोले, सबकुछ ठीक-ठाक चल रहा था; लेकिन इस वक्त मैं एक समस्या में पड़ गया हूँ। न जाने क्या होगा। फिर कभी फुरसत में तुझे बताऊँगा।

लेकिन उसके बाद स्वामी जी ने कोई विशेष समय नहीं दिया उसे मिलने के लिए और जब उससे मुलाकात होती थी, वहाँ किताब का प्रकाशक या कोई और साथ होता था। शुरू के कुछ दिनों तक सुहासिनी विचलित रही, मन ही मन स्वामी जी को गरियाती रही, परंतु फिर सोचा कि जरूर कोई समस्या आ गई है। इसी तरह कुछ दिनों बाद ऑफिस से लौटकर प्रभाकर ने समाचार दिया कि किसी को कुछ बताए बिना स्वामी जी शहर छोड़कर चले गए। मैं जानता था कि ऐसा कुछ जरूर होगा, प्रभाकर ने कहा।

यह सुनकर सुहासिनी ने खीझते हुए कहा, क्यों पहले तो कभी नहीं कहा कि ऐसा होगा?

ये साधु-संन्यासी होते ही ऐसे हैं। ऊपर से चाहे जितनी अच्छी-अच्छी बातें करें, अंदर ही अंदर रुपए-पैसों और औरतों का कारोबार करते हैं।

प्रभाकर ने सोचा था कि यह बात सुनकर सुहासिनी स्वामी जी का पक्ष लेकर तर्क-वितर्क करेगी। उसे चुप देखकर बोला, क्यों तुम तो शुरू-शुरू में जाने से मना करती थी उन्हें ठग्गू कहकर। फिर क्यों हो गया उनकी ओर झुकाव?

प्रभाकर उसे वाद-विवाद में खींचने की चेष्टा कर रहा था, लेकिन सुहासिनी नहीं चाहती थी इस वक्त उसमें घुसना। मैंने उनका प्रवचन सुनकर जाना कि उनमें काफी ज्ञान है। जब मैंने उनसे बातचीत की तो समझ गई कि वे एक सच्चे इंसान हैं।

जब प्रभाकर ने कहा, स्वामी जी द्वारा महिलाओं को मंत्र देने के बारे में लोग तरह-तरह की बातें कर रहे हैं, सुहासिनी वहाँ से उठकर चली गई।

अगले दिन सुबह अखबार के पहले पन्ने पर मुख्य समाचार छपा था 'सोना रुपए लेकर स्वामी जी चंपत'। उसमें स्वामी जी की गतिविधियों की कटु आलोचना की गई थी और राजनीतिक नेताओं की छत्रछाया में रहकर उनकी ठगबाजी का ब्योरा छपा था। एक काल्पनिक अस्पताल बनवाने के लिए व्यापारियों ने स्वामी जी को पैसे दिए थे और अनेक महिलाओं ने भी उसके लिए अपने गहने तक दे दिए थे; कहते हैं, पुलिस उसका विस्तृत विवरण तैयार कर रही है। अंत में यह लिखा था कि स्वामी जी के फरार होने के साथ-साथ शहर के एक संभ्रांत परिवार की कोई महिला भी गायब हो गई है।

उस दिन ऑफिस से फोन करके प्रभाकर ने सुहासिनी से पूछा, यदि पुलिस आकर तुमसे कुछ पूछे तो कह देना तुम कुछ नहीं जानती। सुहासिनी ने पूछा, किस बारे में? प्रभाकर ने खीझते हुए जवाब दिया, वही स्वामी जी के बारे में, और किस बारे में? शाम को लौटकर मैं सारी बातें बताऊँगा। हालाँकि पुलिस उनके घर नहीं आई, लेकिन उस दिन ऑफिस से लौटकर चाय पीते हुए प्रभाकर ने कई तथ्यों से पर्दा हटाया। अस्पताल के लिए इकट्ठे किए गए रुपए-पैसों, सोने के गहनों के साथ चीफ इंजीनियर की साली को लेकर स्वामी जी भाग गए। अफसरों और व्यापारियों ने अपना कालाधन स्वामी जी को देने की वजह से पुलिस को उस बारे में कुछ बोल नहीं पा रहे, लेकिन कुछ महिलाओं ने शायद बयान दिए हैं कि स्वामी जी ने वशीभूत करके उनके शरीर से गहने उतरवा लिए। इतना कहकर प्रभाकर ने सुहासिनी के कान और हाथ पर नजर डाली। पूछा, तुमसे तो कुछ नहीं ले गया वह? सुहासिनी बोली, मैंने उसे अपनी एक सोने की चूड़ी दी थी। प्रभाकर और कुछ कहने वाला था, उसी वक्त बच्चों के आ जाने पर बातचीत रुक गई। लेकिन सोते वक्त फिर से वही प्रसंग छेड़ते हुए प्रभाकर ने पूछा, क्या उस आदमी ने वशीभूत करके चूड़ी उतारी थी? सुहासिनी बोली, नहीं, मैंने अपनी इच्छा से उतारकर दी थी। प्रभाकर ने खीझते हुए कहा, तुम

जैसी मूर्ख कोई नहीं है। दूसरे लोगों ने तो वशीकरण की वजह से बाध्य होकर सोना दिया था, तुमने तो खुद ही उतारकर उसके हाथों में रख दिया। सुहासिनी ने कहा, वह चूड़ी मैं मायके से लाई थी।

स्वामी जी के बारे में प्रभाकर रोजाना नई-नई खबरें लाता था। उसके किसी पुलिस अफसर दोस्त ने उसे इस बीच एक सूची दी थी जिसमें यह लिखा था कि स्वामी जी के किन-किन महिलाओं से संपर्क था। प्रभाकर को खुशी थी कि उसमें सुहासिनी का नाम नहीं था, जबकि सभी जानते थे कि स्वामी जी के साथ मिलकर वह उनकी किताब का काम करती थी। हालाँकि प्रभाकर को शक हो रहा था कि उसके दोस्त ने संकोचवश मित्र की पत्नी का नाम उसे नहीं बताया होगा। पर सुहासिनी पर प्रभाकर को पूरी आस्था थी, भले ही वह स्वामी जी को दी गई चूड़ी की बात के लिए उसे क्षमा नहीं कर पा रहा था।

आखिरकार एक दिन पुलिस स्वामी जी को पकड़ लाई, रुपए-पैसे, सोना-गहना जब्त कर लिए गए और चीफ इंजीनियर की साली घर लौट आई। साली ने पुलिस को बयान दिया कि अभिमंत्रित दवा लाकर स्वामी जी उसे वशीभूत करके ले गए थे। अब तक जो महिलाएँ लोकनिंदा के डर से चुप थीं, वे भी अपने-अपने गहने वापस लेने के लिए थाने में पहुँच गईं और स्वामी जी द्वारा उन्हें भी वशीभूत करने की दुहाई दी। जब प्रभाकर ने सुहासिनी को अपनी चूड़ी लौटा लाने की बात कही, सुहासिनी ने कहा, दान में दी गई चीज मैं क्यों वापस लाऊँ? लेकिन प्रभाकर सोने की चूड़ी का लोभ त्याग नहीं सका और उसने अपने पुलिस अफसर दोस्त से पूछा, कौन-सा गहना बिना किसी शिनाख्त के पड़ा है। लेकिन उसने बताया कि सारे गहनों की मालकिन मिल चुकी हैं।

पुलिस की जाँच-पड़ताल के साथ-साथ कुछ दिनों तक शहर में स्वामी जी की बदनामी और खासकर यौन व्यभिचार की चर्चा होती रही। संभवतः मामला खुद-ब-खुद ठंडा पड़ गया होता, लेकिन तभी प्रकाशक ने स्वामी जी के प्रवचन वाली किताब छाप दी। उसकी भूमिका में स्वामी जी ने सुहासिनी को धन्यवाद दिया था उसकी मदद करने के लिए। जब प्रभाकर ने वह किताब एक मित्र के पास देखी, उसका चेहरा लाल पड़ गया। स्वामी जी के साथ किस महिला का क्या रिश्ता था उस बारे में लोगों का दबे शब्दों में अंदर ही अंदर बातचीत करना अलग बात थी। किंतु अब तो छपी हुई किताब में स्वामी जी के नाम के साथ उसकी पत्नी का नाम तो जग जाहिर हो चुका था।

उस दिन घर लौटकर सुहासिनी की ओर किताब फेंककर प्रभाकर ने कहा, हमारा नाम अब सरे बाजार उछाला जाएगा।

सुहासिनी ने किताब पलटकर देखा। बोली, अच्छी छपी है।

तुम्हारा नाम इसमें छपा है, देखा ना?

हाँ, मुझे इसकी भूमिका भी स्वामी जी ने दिखाई थी प्रेस में भेजने से पहले। ठीक लिखा है इसमें। मैंने ही तो मदद की थी इन सारे प्रवचनों के टेप सुन-सुनकर लिखने में। तब तुम्हीं ने तो कहा था कि अच्छा काम कर रही हो।

तब में और अब में जमीन आसमान का फर्क है। तब किसे मालूम था कि वह बाबाजी की वेश-भूषा में कोई शैतान है? अब हर कोई जान चुका है स्वामी जी वास्तव में क्या हैं।

इसका मतलब यह तो नहीं कि ये सारे प्रवचन गलत हो जाएंगे? बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातें हैं इसमें। मेरे विचारर में यह किताब हर किसी को पढ़नी चाहिए।

आजकल तुम बात-बात में स्वामी जी की तरफदारी करती हो। दूसरी औरतों की तरह क्या तुम्हारे भी रिश्ते थे उससे?

हाँ, बड़ी सहजता से जवाब दिया सुहासिनी ने।

तुमने मुझे पहले नहीं बताई यह बात, कुछ ऊँची आवाज में कहा प्रभाकर ने।

तुमने कभी पूछी ही नहीं यह बात, इसलिए।

उस बाबाजी ने निश्चित ही तुम्हें वशीभूत कर लिया होगा।

नहीं, उन्होंने मुझे वश में नहीं किया था। मैंने जो भी कुछ किया, सोच समझकर अपनी इच्छा से किया। सुहासिनी ने कुछ जोर से कहे ये कुछ शब्द।

प्रभाकर हठात् वहाँ से उठकर चला गया और उस दिन काफी देर से ऑफिस से लौटा। उसके अगले दिन उसने सुहासिनी से कोई बात नहीं की। उसके अगले दिन जब प्रभाकर दफ्तर से लौटा, बच्चे घर पर नहीं थे। सुहासिनी के हाथ से चाय का कप लेकर पीते हुए प्रभाकर ने कहा, तुम समझ नहीं पाई होगी, जरूर बाबाजी ने तुम पर वशीकरण किया होगा। जब उसने इतनी महिलाओं को वशीभूत किया था, क्या तुम्हें छोड़ दिया होगा? सुहासिनी बिना कुछ बोले चुप रही।

प्रभाकर ने कहा, स्साले बाबा को तंत्र-मंत्र, जादू-टोना सब अच्छी तरह मालूम है। हाँ याद आया। तुमने तो खुद ही कहा था कि उन्होंने तुम्हें मंत्र लिखकर दिया था। सयाले ने मुझे भी एक कागज पर मंत्र कहकर कुछ लिखकर दिया था। कहा था कि मंत्र को गुप्त रखना; किसी को बताने से क्षति होगी। प्रभाकर

उठकर गया और अलमारी से कागज का वह टुकड़ा निकाल लाया और सुहासिनी के सामने खोलकर दिखाया। बोला, मैं यह कागज ले जाकर सबको दिखाऊँगा। देखता हूँ स्साला, मेरी क्या क्षति होगी। सुहासिनी चुप रही।

प्रभाकर ने कहा, कहाँ है, तुम्हें भी तो मंत्र लिखकर दिया था ना। तुमसे भी कहा होगा किसी को न दिखाने के लिए। कोई जरूरत नहीं उसकी बात मानने की। लाओ जरा देखें उस कागज को। सुहासिनी चुपचाप उठकर गई और कोरे कागज का वह टुकड़ा लाकर प्रभाकर की ओर बढ़ा दिया।

पात्र-परिचय

थाने की तकलीफदेह कुर्सी पर बैठकर बलभद्र ने युवा अफसर की ओर पूरी उपेक्षा और थोड़ी दया से देखा। स्वयं एक जाने माने लेखक होने का रौब लिए वह देख रहा था पुलिस की नौकरी में अब तक बर्बर न हुए दरोगा को। दरोगा भी उससे इज्जत से पेश आ रहा था और उसे बैठने को कहकर फाइल पढ़ने लगा। कुछ ही क्षण बाद फाइल बंद करके उसने बलभद्र से कहा, आपको बेवक्त यहाँ बुलाने का मुझे अफसोस है; पर एक केस के सिलसिले में आपकी मदद चाहिए, इसलिए आपको तकलीफ दी। भले ही दरोगा ने बड़ी सज्जनता और सौम्यता से यह कहा था, बलभद्र ने कुछ खीझते हुए रुक्ष स्वर में कहा, क्या पूछना है, पूछिए!

फाइल खोलकर कुछ पढ़ने के बाद दरोगा ने सवाल किया, क्या आप जनकराज के अपहरण के बारे में कुछ जानते हैं? लगभग चार महीने पहले राउरकेला शहर में हुए एक अपहरण को लेकर कुछ दिनों तक लगातार अखबार में छपता रहा और दूसरों की तरह बलभद्र ने भी सामान्य आग्रह से वह सब पढ़ा था। लेकिन ऐसी सस्ती सनसनीखेज खबर में रुचि रखना एक गंभीर लेखक के लिए उचित नहीं होगा सोचकर उसने बेहिचक कहा, नहीं। दरोगा ने कहा, अखबार में इस बारे में खबर छपी थी; शायद आपकी नजर से गुजरी हो। बलभद्र ने कहा, अखबार में छपी ऐसी खबरों को मैं नज़रअंदाज कर देता हूँ। हालाँकि अब तक वह समझ नहीं पा रहा था कि उस अपहरण के बारे में उससे सवाल क्यों किया जा रहा है। उसकी भाव-भंगिमा से ऐसा लग रहा था मानों उस बारे में उसके कुछ न जानने पर उसका काम खत्म मान लिया जाएगा और अब उसे उठने की अनुमति दे दी जाएगी।

बलभद्र के हावभाव की पूरी तरह अनदेखी करके दरोगा ने पुनः फाइल में ध्यान दिया और कुछ देर बाद मुँह ऊपर करके बोला, आपके लिए चाय मँगवाऊँ? बलभद्र के मना करने पर दरोगा ने उस फाइल से एक कागज निकालकर उसकी

ओर बढ़ा दिया। वह किसी अखबार की कतरन थी जिसमें 'अजीब तरीके से व्यापारी का अपहरण' शीर्षक से एक खबर छपी थी। बलभद्र कुछ बोलने ही वाला था कि दरोगा ने कहा, पहले इसे अच्छी तरह पढ़ लीजिए; इस बारे में आपसे कुछ सवाल करने हैं।

बलभद्र समझ गया कि इसमें कोई खास रहस्य है जो उसकी समझ से परे है। इसलिए वह कुछ सतर्क हो गया और पहले पढ़ चुके उस खबर को फिर से पढ़ा। किस तरह दिनदहाड़े एक महिला सहित दो भद्रव्यक्ति एक व्यापारी के दफ्तर में घुसकर सबके सामने उसे सफेद मारुति वैन में बिठाकर साथ ले गए, उसका विस्तृत वर्णन था अखबार की उस कतरन में। हालाँकि उसमें जानने लायक कोई नई बात नहीं थी, फिर भी बलभद्र ने उसे सावधानीपूर्वक पढ़ा कि कहीं कोई निहित तात्पर्य न हो उसमें। परंतु उसे कुछ भी पता नहीं चल पाया, क्या हो सकता है उस समाचार से उसका संबंध?

जादूगर के खेल दिखाने की मुद्रा में दरोगा ने उसके हाथ से अखबार की वह कतरन वापस लेकर संभालकर फाइल में रख ली और फाइल से एक किताब निकालकर बलभद्र की ओर बढ़ा दी। यह बलभद्र का हाल ही में प्रकाशित कहानी-संग्रह था। उसे देखते ही बलभद्र हठात् समझ गया कि क्यों उसे जनकराज अपहरण के मामले में पूछताछ के लिए थाना बुलाया गया है।

दरोगा ने उससे पूछा, कीर्तिमुख का अर्थ क्या है? साहित्यिक जीवन में बलभद्र ने एक छद्मनाम भी रखा था। अपने असली नाम से वह गंभीर अभिजात बौद्धिक कहानी-उपन्यास लिखा करता था। उससे उसे बिलकुल पैसे नहीं मिलते थे। अच्छी बिकने वाली किताबें जैसे जासूसी कहानी, छिछले अश्लील उपन्यास, सस्ती राजनीतिक कहानी और रोमांचक थ्रिलर वह लिखा करता था कीर्तिमुख के नाम से। दरोगा को प्रभावित करने के लिए उसने कहा, ओडिशा के शिल्पशास्त्र के अनुसार 'वज्रमस्तक के केंद्रवृत्त में बनी मानव मुखाकृति को कीर्तिमुख कहते हैं'। यह परिभाषा उसने काफी पहले से रट रखी थी, कभी काम आएगी सोचकर; लेकिन यदि किसी ने उससे वज्रमस्तक क्या है पूछा हो तो, उसके पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं था। किंतु दरोगा ने उसकी बात काटते हुए पूछा, आप क्या कीर्तिमुख के नाम से भी लिखते हैं?

पलभर के लिए बलभद्र ने सोचा था कि 'ना' कह देगा, लेकिन इस वक्त जो माहौल बना हुआ था उसे देखते हुए 'ना' कहना आसान नहीं लगा। वह

एक ऐसे वृहत्तर रहस्य जाल में फँस चुका था जिससे वह अब तक अनजान था। इसलिए उसे सतर्क रहना होगा। अतः उसने सिर झुकाकर हामी भरी।

दरोगा कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। फिर फाइल की ओर देखकर उससे पूछा, ये सारी कहानियाँ आपने कब लिखी थीं? बलभद्र समझ गया कि समस्या क्या है। उस संग्रह में एक कहानी थी अपहरण के बारे में। उसमें भी एक व्यापारी का अपहरण हो गया था एक अभिनव तरीके से। जहाँ तक उसे याद है, राउरकेला की घटना से उस कहानी की काफी समानता थी। वह समझ रहा था कि इस वक्त वह एक गोहत्या, ब्रह्महत्या की स्थिति में है। यदि उसने वह कहानी राउरकेला की घटना के पहले लिखी थी तो यह कहा जा सकता है कि अपहरणकर्त्ताओं को उससे प्रेरणा मिली थी। और यदि उसने उस घटना के बाद वह कहानी लिखी है, तो वह उन अपहरणकर्त्ताओं को जानता होगा, यह कहा जा सकता है। विषम समस्या में पड़ गया बलभद्र। किताब के पन्ने उलटते हुए उसने उस विवादास्पद कहानी का कुछ अंश पुनः पढ़ा। उसकी कहानी में भी दो पुरुष और एक खूबसूरत नारी का व्यापारी के ऑफिस में घुसने का वर्णन था। वास्तविकता कल्पना के इतने करीब पहुँच सकती है, इसकी उसे उम्मीद नहीं थी। अभी हाल ही में पढ़ी अखबार की रिपोर्ट के बाद उसकी अपनी कहानी के अनुच्छेद ने उसमें रोमांच भर दिया था। उसने किताब बंद करके दरोगा को लौटा दी और कहा, नहीं, मुझे याद नहीं यह कहानी मैंने कब लिखी थी। दरोगा ने वह किताब संभालकर फाइल में रख ली। उठकर खड़े होते हुए हाथ मिलाकर बोला, मुझे अफसोस है कि हमने आपको कष्ट दिया। आप घर जाकर याद करने की कोशिश करें कि यह कहानी आपने कब लिखी थी। हमारी तहकीकात चल रही है। हम आपसे फिर संपर्क करेंगे।

घर लौटते समय बलभद्र ने रास्ते में याद करने की कोशिश की कि उसने कब लिखी थी वह कहानी। राउरकेला की घटना के बाद तो कतई नहीं। यह उसकी बहुत पुरानी कहानी है। टेलीविजन पर कोई अमरीकी फिल्म देखकर वह उत्प्रेरित हुआ था इस कहानी को लिखने के लिए। एक दिन शाम को टेलीविजन खोलने के बाद बीच से देखी थी वह फिल्म। उस फिल्म का नाम तक उसे मालूम नहीं हो पाया था। जबकि कहानी चित्ताकर्षक थी। फिल्म देखते-देखते बलभद्र ने तय कर लिया था कि इसको आधार बनाकर वह एक रोमांचक कहानी लिखेगा। यह विदेशी फिल्म ही थी उसकी इस कहानी का आधार। पर वह इतनी बातें

नहीं कहना चाहता था पुलिस को। क्या जरूरत थी उन्हें जानने की कि उसने कब लिखी थी वह कहानी और किसकी प्रेरणा से? खासकर एक लेखक के तौर पर वह बताना नहीं चाहता था कि उसकी वह कहानी किस विदेशी फिल्म की हूबहू नकल है।

एक ऐसी ही पृष्ठभूमि पर लिखी गई उसकी यह कहानी किसी दिन उसे संकट में भी डाल सकती है, यह बात बलभद्र की कल्पना से परे थी। उस बात से उसे याद आई कहानी के पात्र और वास्तविक जीवन के पात्र के बीच की एकरूपता। उसकी कहानी के काल्पनिक पात्र के साथ यदि वास्तविक जगत के किसी पात्र-सा कोई मिल गया तो इसमें लेखक क्या कर सकता है? उसकी कहानी के घटनाक्रम की यदि सचमुच में पुनरावृत्ति होती है तो उसके लिए बेचारा लेखक जिम्मेवार क्यों होगा?

उस दिन अचानक उसके घर आकर मीता ने उससे पूछा, मामा, क्या तुमने मेरे नाम से कोई कहानी लिखी थी? ऐसे सवाल से बलभद्र को आश्चर्य हुआ। वह घबरा भी गया। क्या उसने किसी लड़की के नाम पर कुछ बुरा लिख दिया है, जिसका जवाब मीता मांग रही है? उसने पूछा, कैसी कहानी? मैं क्यों लिखूँगा तेरे नाम से कहानी? मीता ने कहा, मैं हर वक्त नौकरों के साथ चिकचिक करती हूँ, तभी माँ मुझे फटकारती रहती है; वही कह रही थी कि तुमने इसी बात को लेकर कोई कहानी लिखी है। बलभद्र को याद आया कि उसने इस तरह की एक कहानी लिखी थी; पर उस कहानी को लिखते समय उसने मीता की बात सपने में भी नहीं सोची थी। उसने ढूँढ़-ढाँढ़कर अपनी एक पुरानी किताब और उसमें से वह कहानी निकालकर मीता को दी। बोला, मैंने एक मालकिन और उनके नौकरों की बात लिखी थी, पर वह तेरी बात कैसे होगी? तू खुद ही पढ़कर देख ले। उसने सोचा था, मीता इतने से संतुष्ट हो जाएगी, लेकिन मीता उसके हाथ से किताब लेकर कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लगी। बलभद्र खुश हुआ कि कम से कम एक पाठक तो उसकी पुरानी कहानी इतने आग्रह से पढ़ रहा है।

किंतु उस कहानी को पढ़ने के बाद मीता गुस्से से तमतमाई हुई उसके सामने आकर खड़ी हो गई। बोली, यह तो मुझ पर ही लिखी गई है। बलभद्र ने उसके हाथ से किताब लेकर कहानी पर एक नजर डालने के बाद कहा, यह तो मध्यवित्त गृहस्थी की कहानी है। किस घर में मालकिन और नौकरों में नोकझोंक नहीं होती? मीता ने कहा, और तुमने जिस आदिवासी नौकर की बात लिखी है?

बलभद्र बोला, आधे घरों में आदिवासी नौकर ही मिलेंगे। हमारे पड़ोसी को ही देख लो। इनका भी नौकर आदिवासी है या नहीं?

मीता फिर भी संतुष्ट नहीं हुई; बोली कितनों के घर में बुला नाम का नौकर हैं? बलभद्र जवाब देने ही वाला था कि किसी पात्र का नाम रखते समय कोई उपयुक्त नाम ही ढूँढ़ना पड़ता है; यदि नौकर का नाम बुला न रखा होता, तो शायद नटो रखा होता। लेकिन कहने से पहले उसे अचानक याद आ गया कि मीता के घर पर नटो नाम का भी एक नौकर है। उसने यह बात न कहकर किताब के प्रकाशन का वर्ष देखा और खुश होते हुए मीता से कहा, प्रमाण मिल गया। यह कहानी तुझ पर नहीं हो सकती क्योंकि यह तब लिखी गई थी जब तुम्हारी शादी ही नहीं हुई थी, तुम्हारा गृहिणी होना तो दूर की बात है।

उसके हाथ से किताब लेकर मीता ने घुमा-फिराकर देखा। बोली, क्या तुम सर्वज्ञ हो जो पहले से जान गए थे कि शादी के बाद घर-गृहस्थी बसाने पर नौकर के साथ चिकचिक करूँगी, मेरा एक आदिवासी नौकर होगा, और उस नौकर का नाम बुला होगा? बलभद्र ने उसे दिखाया कि किताब का प्रथम संस्करण छपा था उसकी शादी से पहले। मीता ने कहा, किताब में तारीख गलत छपी होगी। या फिर किताब के द्वितीय संस्करण में तुमने यह कहानी शामिल कर दी होगी। उस दिन समाचार छपा था कि एक ही कहानी दो किताबों में छपवाने के कारण किसी पाठक ने लेखक पर केस कर दिया था।

बहरहाल, भाँजी मीता को समझा नहीं पाया था बलभद्र। तो फिर पुलिस अफसर को वह कैसे समझाएगा कि उसकी यह अपहरण वाली कहानी काफी पहले छपी थी? रात को सोते समय भी यह चिंता उसके दिमाग से निकली नहीं थी। लोग सोचते हैं कि लेखक जो भी कुछ लिखता है, वह जरूर किसी सच्चे पात्र या सत्य घटना पर आधारित होता है, वे नहीं जानते कि उसका एक क्षयहीन संबल है जो कि उसकी कल्पना है।

मीता जैसे और भी अनेक लोगों ने अलग-अलग समय में आकर उससे सवाल किए हैं। बुरे पात्र भी हैं। परंतु कभी किसी ने आकर उससे यह नहीं कहा कि आपने जिस परोपकारी आदर्श पात्र के बारे में लिखा है, वह निश्चित ही आपने मुझे अपनी आँखों के सामने रखकर लिखा है, इसलिए मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ। किंतु जैसे ही वह किसी रिश्वतखोर इंजीनियर के बारे में लिखता है, उसके शत्रु बन जाते हैं, मानो उसने अपने उसी मित्र विशेष पर ही वह कहानी लिखी

है। अंत में उसके बचपन के स्कूल के मित्र विकाश ने भी उसे गलत समझ लिया था। किसी पत्रिका में उसकी कहानी पढ़ने के बाद उससे आकर कहा, मैंने तुमसे यह उम्मीद नहीं की थी। बलभद्र ने कहा, यार, सॉरी। तुमने अपनी जिस डिपार्टमेंट के भ्रष्टाचार की बात बताई थी, उस बारे में लिखने से पहले तुझसे जरा पूछ लिया होता तो अच्छा होता। विकास ने खीझते हुए कहा, क्या अच्छा होता? मैं तो लोगों में बदनाम हो गया। तेरी वजह से।

बदनाम तो वे लोग होंगे जो भ्रष्टाचार कर रहे हैं। तुम्हीं तो बता रहे थे किस तरह सरेआम चोरी चल रही है तुम्हारे विभाग में।

पर तूने जिस तरह लिखा है, लोग तो मुझे ही समझेंगे। आकाश तो किसी का नाम है नहीं, सभी सोचेंगे वह आदमी इंजीनियर विकास ही है।

बलभद्र कहने वाला था कि वह आकाश नाम के कम से कम तीन लोगों को जानता है, लेकिन चुप रहा। विकास को खुश करने के लिए उसने झूठ का सहारा लेते हुए कहा, जब मैंने भ्रष्ट इंजीनियर के बारे में लिखा था, तब मेरी आँखों के आगे रखा था उस सुपरिटेंडेंट इंजीनियर विनय को जिसके बारे में तूने बताया था।

तो फिर तूने उस आदमी का नाम विजय न रखकर आकाश क्यों रखा? और फिर तूने बैरेज के बारे में लिखा है जो कि सीधे-सीधे मुझझे जुड़ा है।

इस तरह नाराज होकर उस दिन विकास उसके पास से चला गया और उनकी चालीस साल की मित्रता धीरे-धीरे टूट गई, उसकी उस एक कहानी के कारण।

हालाँकि उसके बाद थाने से उसे कोई फोन नहीं आया, पर उसका मन विचलित रहा। उसे जिज्ञासा हुई यह जानने की कि अपहरण की स्थिति अब कैसी है, लेकिन आजकल अखबार में उन पुरानी घटनाओं के बारे में कुछ नहीं छपता था, जबकि जनकराज का अभी तक कोई पता नहीं चला था। उसने जिन दो लोगों से पूछा, उन्हें इस बारे में कुछ पता नहीं था, ना ही वे आग्रही थे। अंत में उतावले होकर बलभद्र ने खुद ही दरोगा को फोन किया।

उसी दरोगा को पाने के बाद बलभद्र ने कहा, आपने मुझसे कहा था कि वह कहानी कब लिखी थी याद आने पर...। उसे और कुछ कहने से रोकते हुए दरोगा बोला, मैं भी आपको फोन करने ही वाला था। यदि आपको दिक्कत न हो तो आप फिर एक बार थाना आ जाते। बलभद्र ने पूछा, किस वक्त? दरोगा बोला, अभी आ जाइए। बलभद्र ने सोचा, कह दे कि इस वक्त जाना

सुविधाजनक नहीं होगा, बाद में सुविधा देखकर जाएगा, फिर कुछ सोचते हुए बोला, चलिए ठीक है।

इस समय वह उसी पहले वाली कुर्सी पर बैठा था और दरोगा भी पहले की तरह अपने सामने फाइल खोलकर कुछ पढ़ रहा था। बलभद्र कुछ टूट चुका था और इस बार विश्वासपूर्वक अपनी परिस्थिति को देख नहीं रहा था। जब दरोगा ने उससे चाय के लिए पूछा, बलभद्र ने हामी भरते हुए उसे धन्यवाद दिया।

दरोगा ने फाइल से वह किताब निकाल कर उसमें से निर्दिष्ट पृष्ठ खोला और पूछा, यह कहानी आपने कब लिखी थी बताने वाले थे? बलभद्र ने कहा, मुझे ठीक से याद तो नहीं, पर जरूर कुछ साल पहले लिखी थी। इतने में चाय आ गई। दरोगा ने कहा, लीजिए, चाय पीजिए और थोड़ा कष्ट करके सोचने की चेष्टा कीजिए। यह किताब हाल ही में छपी होने के कारण कोई भी सोचेगा कि यह कहानी हाल ही की लिखी हुई है। उस बात का सीधे-सीधे जवाब न देकर बलभद्र चाय पीने लगा और कुछ सोचने का अभिनय करने लगा। चाय पीने के बाद कप एक ओर रखकर वह कुछ कहने ही वाला था कि दरोगा ने कहा, आप समाज के एक सम्मानित व्यक्ति हैं। आपसे हम अपने शक की बात बता देते हैं। आपकी कहानी में इतना विस्तृत विवरण है जो कि अपराधी और पुलिस को छोड़कर और कोई नहीं जानता। यह विवरण आम लोगों के लिए प्रकाशित नहीं किया गया, जाँच में बाधा आएगी सोचकर। आपकी कहानी में अपराधियों द्वारा सफेद मारुति वैन इस्तेमाल करने की बात है और राउरकेला में भी उन्होंने सचमुच में ऐसी ही गाड़ी का उपयोग किया था। ऐसा कैसे हुआ?

बलभद्र ने कहा, इसका जवाब बहुत आसान है। अखबार में अपराध के विवरण पढ़ने से पता चलेगा कि अधिकांश अपराधों में सफेद मारुति वैन की उपस्थिति रहती है। दरोगा ने कहा, आपकी बात भी सही है। अब आपकी कहानी के एक दूसरे विवरण की ओर चलते हैं। अपहरण के बाद जनकराज के टेबुल पर एक और बंद लिफाफा मिला था जिसके अंदर सिर्फ एक सादा कागज था। यह बात पुलिस और आपके सिवाय किसी और को नहीं मालूम। हमारा सवाल है, आपको इस बात का पता कैसे चला?

बलभद्र हठात् उस सवाल का जवाब नहीं दे सका। थोड़ी देर बाद बोला, मुझे पता नहीं था कि राउरकेला के मामले में एक ऐसा लिफाफा मिला था। मैंने तो यह बात कल्पना से लिखी थी। इसके अलावा, मैंने आपसे पहले ही कहा है कि मेरी कहानी लिखी गई थी राउरकेला की घटना के काफी पहले।

तो क्या यह संभव है कि इस कहानी से प्रेरित होकर राउरकेला अपहरण कांड हुआ हो, दरोगा ने पूछा। बलभद्र इस प्रश्न के लिए तैयार था। उसने कहा, कई बार किसी कहानी का काल्पनिक विवरण भविष्य में हू-ब-हू घटित हो जाता है। हालाँकि पूरी तरह आकस्मिकता के अलावा उसकी और कोई व्याख्या नहीं हो सकती। टायटनिक जहाज डूबने के कुछ साल पहले एक किताब छपी थी, जिसमें एक ऐसे ही बड़े जहाज के अपनी पहली यात्रा में ही डूबने का वर्णन था। यहाँ तक कि जहाज का आकार, यात्रियों की संख्या एवं और भी कई छोटी-छोटी घटनाएँ उसी तरह घटी थीं जैसी कि टायटनिक के डूबते समय।

दरोगा बोला, हाँ मैंने इस बारे में कहीं पढ़ा था। लोग कहते हैं कि नोस्ट्राडैम्स की लिखी या अच्युतानंद मालिक की भविष्यवाणियाँ अभी भी सही साबित हो रही हैं। किंतु मैं वह बात या टायटनिक दुर्घटना होने के पहले के उपन्यास की बात नहीं कह रहा हूँ। मैं कह रहा था ऐसे लेखन की बात जो किसी को अपराध करने के लिए उकसाता है। हमारे पुलिस रिकॉर्ड में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनके अनुसार अपराधी ने कोई किताब पढ़कर या फिल्म देखकर ठीक उसी तरह से अपराध किया है।

बलभद्र ने कहा, परंतु बिहार के गुंडे मेरी कहानी क्यों पढ़ेंगे? उसकी बात सुनकर दरोगा के कान खड़े हो गए। वह सीधे बैठ गया और बलभद्र से पूछा, आपको कैसे पता चला कि राउरकेला वाला अपहरण बिहार के गुंडों ने किया है? बलभद्र बोला, उस दिन आपने मुझे जो अखबार दिखाया था, उसी में मैंने पढ़ा था।

दरोगा ने अपनी फाइल से वह पुराना अखबार निकालकर बलभद्र की ओर बढ़ा दिया। कहा, इसे दुबारा पढ़कर देखिए। इसमें तो ऐसी कोई सूचना नहीं है कि अपराधी कहाँ के थे। अखबार की खबर बड़े ध्यान से पढ़ी बलभद्र ने। दरअसल उसमें बिहारी गुंडों का कोई उल्लेख नहीं था। उसके दिमाग में यह बात आई कहाँ से? जबकि पिछली बार उसने कहा था कि वह राउरकेला अपहरण के बारे में कुछ नहीं जानता। अपनी गलती सुधारते हुए उसने कहा, तो फिर मैंने किसी दूसरे अखबार में पढ़ी होगी। दरोगा ने कहा, हमारे पास कई अखबारों की फाइलें हैं, उनमें से किसी में भी नहीं लिखा है कि अपहरणकर्ता बिहार से आए थे। यदि आप ऐसा कोई अखबार दिखा सकें तो हमारे काफी काम आएगा।

इस बार खड़े होकर दरोगा ने बलभद्र को विदा किया। दरोगा ने कहा, हमारी जाँच चल रही है। यदि उससे पता चलता है कि अपहरणकर्ता वाकई बिहार के हैं, तो हमारा पहले का संदेह निश्चित ही दृढ़तर होगा।

इस घटना से पहली बार बलभद्र के मन में भय हुआ। अपने लेखकीय जीवन में उसे सबसे बड़ी दिक्कत तब आई थी जब उसने किसी नेता पर एक कहानी लिखी थी। उसकी कहानी का पात्र लँगड़ा था, और था अति खल, दुश्चरित्र एवं भ्रष्ट। हालाँकि उसने उस पात्र का कोई नाम नहीं रखा था और उसे सिर्फ लँगड़ा ही कहा था, उसके दुर्भाग्य से तत्कालीन सरकार में एक लँगड़े मंत्री थे और वे काफी बदनाम थे, रिश्वतखोर के तौर पर। बलभद्र की वह कहानी एक पत्रिका में छपने के बाद सबने यह मान लिया कि यह उसी मंत्री पर लिखी गई है और काफी दिनों तक यह बात आम लोगों के मजाक का कारण बनी। साहित्य में कोई रुचि न होने पर भी अंततः उस मंत्री को यह खबर मिल गई और उसके गुंडे बलभद्र के घर पहुँच गए। उसने उन्हें लाख समझाया कि यह महज एक इत्तफाक है, पर वे लोग मानने को तैयार नहीं हुए। बलभद्र अखबार में क्षमा-पत्र लिखने को राजी था और कहा कि किताब छपते समय यह कहानी उसमें से हटा लेगा। लेकिन वे लोग नहीं माने। उन लोगों ने उसे धमकाया कि वे उसका पैर तोड़कर उसे लँगड़ा बना देंगे। बलभद्र का भाग्य अच्छा था कि ठीक उसी समय लँगड़े मंत्री के दल में कोई समस्या आ गई और गुंड़े बलभद्र को छोड़कर लँगड़े के विपक्षी दल के लोगों के पैर तोड़ने चले गए।

उस समय उसके मित्र उससे पूछते थे कि क्या उसने मंत्री को ध्यान में रखकर उस लँगड़े पात्र का निर्माण किया था या उसका काल्पनिक पात्र इत्तफाकन एक वास्तविक पात्र से मेल खा रहा था। बलभद्र उस बात का सही जवाब नहीं दे पा रहा था, क्योंकि निश्चित ही वह उस नेता के बारे में जानता था और सुना था, पर लिखते समय उसने इस आदमी को ध्यान में रखा था या नहीं, उस बारे में उसे खुद ही संदेह था।

ऐसा नहीं था कि किसी को आँखों के आगे रखकर वह उसके बारे में नहीं लिखता था। पर पकड़े जाने के डर से उस पात्र का नाम बदलकर, दो-तीन लोगों के चाल चलन, भावभंगिमा, स्वभाव और चरित्र को इकट्ठा करके घटनाओं को तोड़-मरोड़कर अतिरंजित करके लिखता था। सिर्फ एक कहानी में पति-पत्नी के रिश्ते को उसने बिना लाग-लपेट के सीधे-सीधे और पूरी सच्चाई के साथ लिखा था; सरसी के मरने के बाद। हालाँकि कई बार उसे लगता था कि वह कहानी एकतरफा थी, क्योंकि उसमें उसकी पत्नी का दृष्टिकोण नहीं था। यदि उसे अवसर दिया गया होता तो शायद सरसी कहानी में उसके प्रति लगाए जा रहे आरोपों का तर्कसंगत जवाब दे सकती थी।

यह तो हुई एक सत्-पात्र की कथा। उसके अनेक काल्पनिक पात्रों का उसके प्रति आपत्ति-अभियोग नहीं होगा, ऐसा नहीं है। अपनी एक कहानी में दहेज की समस्या में पड़ी जिस महिला की तसवीर उसने खींची थी, उसके प्रति किसी में जरा भी सहानुभूति नहीं थी, उसके पूर्व प्रेमी, उसके पति, उसके माँ-बाप, उसके सास ससुर ननद, उसके टोले के लोग, यहाँ तक कि वह जिस रिक्शे में बैठी थी उसके चालक तक को। अंत में बलभद्र ने उस महिला पात्र को आग में जलाकर मार डाला था। क्या उसने न्याय किया था उस काल्पनिक महिला के साथ? यदि वह आकर उसके सामने खड़ी हो जाए और उससे सवाल करे तो क्या जवाब देगा बलभद्र उसे?

ऐसी बुरी चिंताओं से अपने मन को वापस लाने की चेष्टा की बलभद्र ने। उसकी नई समस्या थी राउरकेला वाला अपहरण। उसके पास इस बात का कोई सबूत नहीं है कि यह कहानी उसने सच्ची घटना से पहले लिखी थी, बाद में नहीं। उसने तय किया कि इस संबंध में प्रकाशक को अपनी ओर शामिल करेगा। परंतु प्रकाशक से उसके उतने अच्छे संबंध नहीं थे और उसे विश्वास था कि प्रकाशक उसके इस पुलिसिया मामले में हाथ नहीं डालेगा। फिर भी घर लौटकर उसने प्रकाशक को फोन किया; उनके ऑफिस से जवाब मिला कि वे दो दिन पहले राउरकेला से बाहर गए हैं।

उसके दिमाग में किताब की पांडुलिपि की बात घुसते ही उसने सोचा कि वह प्रकाशक के जरिए यह साबित कर सकता है कि उसकी यह कहानी इस किताब में भले ही हाल-फिलहाल छपी है, इसकी हस्तलिखित प्रति काफी पहले ही प्रेस को भेजी जा चुकी थी। पुलिस इस बारे में सीधे-सीधे प्रकाशक से अनुरोध न कर पाने पर भी इस बात की सच्चाई उससे उगलवा लेगी। इसी उम्मीद से उसने दरोगा को फोन किया। दरोगा के लाइन पर आते ही उनसे कहा, मुझे याद आ गया कि किताब की पांडुलिपि राउरकेला कांड से काफी पहले प्रेस जा चुकी थी। इससे साबित हो सकता है कि वह कहानी पहले की लिखी गई है, बाद की नहीं। इस बारे में आप प्रकाशक से भी पूछ सकते हैं। उसकी बात सुनकर दरोगा ने कहा, आपका प्रकाशक कौन है, कहिए तो। सुरसेन का नाम बताने पर काफी देर तक चुप रहने के बाद दरोगा ने कहा, दैट्स इंटरेस्टिंग, और फोन रख दिया।

उसके बाद कुछ दिनों तक पुलिस की ओर से कोई खबर नहीं आई, लेकिन बलभद्र खुद को इस चिंता से अलग नहीं कर सका। वह सोचने लगा कि कहानी में किस तरह के पात्र की रचना करने पर खतरे से बचा जा सकता है। पाठक

चाहते हैं कि पात्र वास्तविक लगे, किंतु यही बन जाता है संकट का कारण। एक बार उसने किसी कहानी में एक विवाहित महिला की परकीया प्रेमकथा के बारे में लिखा था और वह कहानी सामान्य समझी गई थी, लेकिन इतने से संतुष्ट न होकर सबने उस पात्र के मूल उपादान को ढूँढ़ निकालना चाहा। उनमें शहर की अनेक स्वतंत्र विचारों वाली महिलाओं के नाम उठे, क्लब में महिलाओं ने इस बारे में फुसफुसाकर बातें कीं और किसी-किसी ने एक-दूसरे की ओर अँगुली उठाई। अंत में बलभद्र दोषी साबित हुआ। एक भद्रघर की बहू-बेटी को बाहर सड़क पर लाकर खड़ा करने के कारण। एक दिन किसी मित्र ने उसे फोन करके कहा, हमारे भीतर शर्त लगी है राधा आखिर कौन है जानने की। मैं कहता हूँ सीमा शर्मा, किंतु मेरा दोस्त कहता है सोनाली दास। तुम्हीं बता दो, राधा कौन है? उसे गरियाते हुए बलभद्र ने फोन रख दिया, लेकिन कुछ दिनों के बाद देखा कि मिस्टर शर्मा ने अब उससे बातें करनी बंद कर दी हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए तो कीर्तिमुख के नाम से उसने जो किताब लिखी है उसके पात्र समस्यारहित पात्रों के चंगुल से बचने के लिए गत्ते के पात्र-पात्री तैयार किए थे। वे सभी निर्जीव खिलौने थे, जिन्हें वह अपने साहित्यिक सृजन में महत्व देना नहीं चाहता था। ये फिल्मी गुंडे, बदमाश, पुलिस, सस्ते प्रेमी उसके धूसर सृजनशील दुनिया के निचले तबके के निवासी थे, इनसे कोई कभी भी नहीं मिलेगा अपने आम आवाजाही वाले रास्ता घाट बाज़ार में। वे वास्तविकता से इतनी दूर होते थे कि अब तक किसी ने खुद को उसकी कीर्तिमुख किताब के पात्र से तुलना नहीं की थी, ना ही उससे पूछा था कि वह किस पर आधारित है। लेकिन कई बार वास्तविकता भी कल्पना का अनुसरण करती है। शायद इसीलिए राउरकेला के अपहरण कांड ने उसके लिए मुसीबत पैदा कर दी थी। मानो सचमुच में उसके अनादरवाले कागजी-पात्र उससे बदला लेने पर उतारू थे।

ऐसे समय में पुनः फोन आया उसे थाने से। बलभद्र कुछ खुश हुआ उस बुलावे से। वह जानना चाहता था कि पुलिस की तहकीकात की क्या प्रगति है और इसमें उसकी अपनी स्थिति क्या है। पूर्वघटित कोई प्रसंग फिर से अभिनीत होने की तरह इस वक्त दरोगा बलभद्र के सामने बैठकर उसकी फाइल खोलकर उसमें कुछ पढ़ रहा था। उसके लिए चाय मँगवाने के बाद फाइल से नजरें हटाकर दरोगा ने उसकी ओर देखा, बोला तहकीकात चलने तक हम बीच-बीच में इसी तरह आपको कष्ट देते रहेंगे। मित्रता का हाथ बढ़ाते हुए बलभद्र ने कहा, मैं आपकी हर तरह से मदद करने को तैयार हूँ।

अब हमें पता चला है कि बिहार के एक गैंग का हाथ है इस अपहरण में, दरोगा ने कहा। क्या आपको याद आया कि आपने किस अखबार में बिहारी गुंड़ों के बारे में पढ़ा था? उस बारे में कोई लंबी कैफियत देने का साहस नहीं हुआ बलभद्र को; उसने सिर्फ मना कर दिया।

आपने विभाश दास के बारे में कैसे जाना?

विभाश दास? मुझे याद नहीं कि मैं किसी ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ।

आपकी कहानी के अपराधियों में एक नाम विभाश दास है। दूँ आपको किताब, देखिएगा?

नहीं, मुझे याद आ गया। मैंने इस नाम का उपयोग किया है कहानी में। हम लेखक लोग मन से सोचकर पात्रों का नाम रख देते हैं। कहानी की घटनाएँ जिस तरह काल्पनिक होती हैं, पात्रों के नाम भी।

दरोगा ने कहा, ऐसा भी होता है कि सच्ची घटना को आधार बनाकर कहानी लिखी गई होती है। यदि आप सच्ची घटना पर कहानी लिखते तो पात्र का जो नाम है वही कहानी में रखते या कुछ और?

बलभद्र समझ गया कि वह जो भी जवाब देगा, परेशानी में पड़ जाएगा। उसे याद आई आकाश विकास, विजय विनय की बातें। लेकिन पुलिस को इतनी बातें बताने का कोई लाभ नहीं। उसने सीधे-सीधे जवाब न देकर कहा, लेखकगण अधिकतर काल्पनिक नाम का ही प्रयोग करते हैं। दरोगा ने उस दिन का सवाल-जवाब उतने में ही रोकते हुए कहा, यदि विभाश दास के बारे में कुछ याद आ जाए तो मुझे बताइएगा।

बलभद्र समझ नहीं पाया कि दरोगा विभाश दास के बारे में जानने को इतना आतुर क्यों है। उसने तो अपनी कहानी में और भी कई पात्रों के नाम लिखे थे। उसने वाकई याद करने की कोशिश की कि किसी विभाश दास को वह जानता है क्या? लेकिन ऐसा कोई नाम उसे याद नहीं आया। कुछ दिनों तक इस विभाश दास की चिंता उसे सताती रही।

उसने अपनी पुलिस की समस्या के बारे में अभी तक किसी को कुछ नहीं बताया था। उसने सोचा, सुरसेन को सारी बातें बताकर उसकी राय लेगा। लेकिन फोन करने पर उसके ऑफिस से किसी ने कहा कि वे राउरकेला या कहीं और गए हैं। वे कब तक लौटेंगे, उस बारे में वह कुछ कह नहीं सकता।

अगले दिन उसे विभाश दास वाले रहस्य का उत्तर मिल गया। उस दिन के 'सकाल' अखबार में अपहरण की एक खबर छपी थी। हालाँकि अभी तक

जनकराज का पता नहीं लग पाया था, पुलिस ने संदेह में बिहार के एक डाकू दल को पकड़ा था। उस दल के एक आदमी का नाम प्रभाष दास था।

अचानक बलभद्र के मन में डर घुस गया और उसने खुद को जेल के भीतर पाया। हालाँकि जेल को अंदर से देखने का सौभाग्य उसे अब तक नहीं मिला था, उसने अपनी एक कहानी में कल्पना से जेल के बारे में लिखा था। उस कहानी से उसे याद आई जेलर गुणनिधि और उसके दाहिने हाथ भिखारी नायक की बात। उसकी कहानी में गुणनिधि एक पाजी था और कैदियों को परेशान करके किस तरह लाचार किया जा सकता है उस बारे में विशेषज्ञ था। बलभद्र को लगा कि वह इस जेलर के चंगुल में पड़ जाएगा और उसके आगे खड़े होकर गुणनिधि उससे कहेगा, सच-झूठ जोड़कर मेरे नाम से कहानी लिखता था ना? देख, अब मैं तुझे कैसे जेल का मज़ा चखाता हूँ। उसके बाद वह भिखारी नायक को लगा देगा उसके पीछे, परेशान करने के लिए। कहानी में वह भिखारी के लिए जितनी तरह की यातनाएँ देने के तरीकों का प्रयोग करता था, वे सब भिखारी को याद आ गए और भिखारी द्वारा उस पर उन सबका प्रयोग करने की कल्पना की बलभद्र ने। वे अति भयावह थे।

अखबार के संक्षिप्त समाचार, किसी अनिश्चित जगह जाने के कारण सुरसेन की अनुपस्थिति, अपहरण केस में विभाश बनाम प्रभाष दास का पकड़ा जाना, थाने से फिर बुलावा न आना, आदि ने बलभद्र को काफी विचलित कर दिया था। इस केस के अलावा उसका मन और किसी चीज में नहीं लगा। उस कहानी के साथ वास्तविक घटना का मेल खाना भले ही किसी कारण से हो, वह निश्चिंत तब होगा जब जनकराज का पता चलेगा और अपराधी पकड़े जाएँगे। तभी जाकर साबित होगा कि उसके लेखन से वास्तविक घटना का कोई संबंध नहीं था और यह महज एक इत्तफाक है। वह टेलीफोन की ओर देखते हुए बैठा रहा।

इस तरह जब उसके सब्र का बाँध टूट ही रहा था कि थाने से खबर आई कि वह आकर दरोगा साहब से मिल ले। इतने दिनों की उत्कंठा शांत होने पर उसने चैन की साँस ली, जबकि उसे मालूम था कि बार-बार थाने में जाने की वजह से वह अपराध के दायरे से अधिक से अधिक जुड़ गया है। थाने की कुर्सी पर बैठकर दरोगा की ओर देखते समय उसे याद आई काफ्का की दुनिया, जिसकी तसवीर उसके लिए जितनी हास्यकर थी, उतनी ही भयावह भी थी। इस बार दरोगा की बातचीत पूर्णतः व्यावहारिक थी और उसने उससे अपहरण के बारे में कोई सवाल न करके सवाल किया सुरसेन के बारे में। बलभद्र ने उसे बताया

कि वह सुरसेन को कई सालों से जानता है और उनके रिश्ते व्यापार से परे भी सौहार्दपूर्ण थे। उसे सुरसेन के दफ्तर से पता चला कि वह राउरकेला गया है, परंतु किस काम से वह वहाँ गया है, बलभद्र नहीं जानता। नहीं, उसके लेखन में सुरसेन का कोई हाथ नहीं है और कहानी लिखने से पहले उसने सुरसेन के साथ कोई चर्चा भी नहीं की थी। किस तरह की कहानी की खपत अधिक है, उस बारे में उन लोगों में कभी-कभी चर्चा हुई है, लेकिन उसकी अपहरण कहानी लिखने में सुरसेन ने कोई मदद नहीं की है। वह तरह-तरह के लोगों से सुनी हुई बातों का उपयोग अपनी कहानी में करता है, लेकिन सुरसेन की कही हुई किसी घटना को आधार बनाकर उसने अपहरण कहानी अथवा कोई दूसरी कहानी लिखी हो, उसे याद नहीं। सुरसेन के प्रकाशन व्यवसाय में उसका कोई हिस्सा नहीं है, ना ही सुरसेन की आर्थिक स्थिति के बारे में उसे कोई जानकारी है। सुरसेन वाकई राउरकेला गया है या नहीं, और वह कब लौटेगा, उसे कुछ मालूम नहीं। जहाँ तक उसे याद आ रहा है, सुरसेन कभी भी इतने दिनों तक अपना शहर छोड़कर बाहर नहीं रुका।

उससे इतनी सारी खबरें निकलवा लेने के बाद दरोगा ने कहा, तहकीकात में मदद करने के लिए आपको राउरकेला जाना होगा। उस बात से बलभद्र को आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि उसने मान लिया था कि किसी भी कारण से क्यों न हो, इस वक्त वह इस तहकीकात का एक खास हिस्सा है। और इसमें उसे शामिल होना होगा।

चलती ट्रेन में कांसटेबल के पास बैठकर अपने आसपास निगाह डाली बलभद्र ने। उसके सामने बैठे वयस्क सज्जन और युवा पति-पत्नी उसे परिचित लगे। अपनी समस्या भूलकर उसने उनकी गतिविधियों पर ध्यान दिया। उस वयस्क सज्जन ने युवक की ओर टाइम-टेबुल बढ़ाते हुए कहा, मुझे अपना चश्मा नहीं मिल रहा; जरा इसमें देखकर बताइए तो कि ट्रेन कितने बजे जंक्शन पहुँचेगी। वह युवक पन्ने पलटने लगा। उस सज्जन ने कहा, दस या ग्यारह नंबर टेबुल में होगा। युवक ने उन्हें समय बताया। कलाई घड़ी की ओर देखते हुए उस सज्जन ने कहा, ट्रेन तीन घंटे लेट चल रही है। बलभद्र को उस युवक का नाम याद आ गया था; मधुवन; उसकी पत्नी का नाम सुरमा। इन दोनों को लेकर उसने काफी पहले एक कहानी लिखी थी।

राउरकेला का दरोगा प्रौढ़, पृथुल और खूँखार स्वभाव का था। थाने का कमरा अनुज्वल, उदास और भयोत्पादक था। बलभद्र के कुर्सी पर बैठते ही

दरोगा ने उससे कहा, आपको जानकर खुशी होगी कि हमारी तहकीकात पूरी हो चुकी है। आप सुरसेन और जनकराज के व्यवसाय के बारे में अवश्य जानते होंगे। यह भी जानते होंगे कि सुरसेन पर जनकराज का काफी पैसा बकाया था। हमने सुरसेन को गिरफ्तार करके हवालात में रखा है। हमें शक है कि इस केस में आप सुरसेन के सहयोगी हैं, इसलिए हम आपको भी गिरफ्तार करेंगे। इसके बाद दरोगा अपनी कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया और उसकी ओर अंगुली दिखाते हुए नाटकीय अंदाज में जोर से कहा, यू आर अंडर अरेस्ट!

बलभद्र इससे जरा भी हतप्रभ नहीं हुआ, मानो वह बात पूरी तरह प्रत्याशित थी। उसने अपने चारों ओर देखा। हवालात का कमरा दरोगा की बायीं ओर था। हवालात के दरवाजे के पास गुणनिधि जेलर का यूनिफॉर्म पहने खड़ा था और उसकी ओर अंगुली दिखाकर पास ही अर्दली के लिवास में खड़े भिखारी नायक को कुछ निर्देश दे रहा था। हवालात की लोहे की छड़ों के बीच से वह अंदर खड़े सभी लोगों को देख सकता था। दो छड़ों के बीच सिर घुसाकर सुरसेन उसकी ओर दाँत किटकिटाते हुए देख रहा था, मानो यह कह रहा हो तेरी वजह से आज मैं इस हालत में हूँ। उससे सटकर सीमा शर्मा और सोनाली दास खड़ीं थीं और दोनों एक जैसी मुस्कान छोड़ रही थीं। उनके पास जो महिला खड़ी थी, उसका चेहरा पूरी तरह जलकर डरावना लग रहा था, लेकिन वह अपनी अंधी आँखों से बलभद्र की ओर अपलक ताक रही थी। मीता अपने बच्चे को गोद में लिए लड़िया रही थी, पर बलभद्र की ओर नहीं देख रही थी। विकास और विनय आपसी बातचीत में व्यस्त थे एवं किसी बात पर हँस रहे थे। सरसी पूरी तरह मग्न होकर पान चबा रही थी और बलभद्र से उसकी आँखें मिलते ही उसने पान का पीक उसकी ओर फेंका। लँगड़ा अपनी बैसाखी उसकी ओर दिखा रहा था और अपनी मूँछ पर ताव दे रहा था। सुरमा मधुवन के कंधे पर सिर रखकर सो गई थी।

इन सबके पीछे कतार में विभाश दास समेत सारे कीर्तिमुखों ने हवालात के कमरे में भीड़ इकट्ठी कर रखी थी। थकान और खीझ से बलभद्र ने उन सबकी ओर से अपना मुँह फेर लिया।

नेकनामी

उदय प्रकाश ने जब अस्पताल छोड़ा, उसे दवा, खान-पान और परहेज इत्यादि के बारे में निर्देश देने के बाद डॉक्टर ने कहा, याद रखिएगा, यह था आपके लिए यमराज का पहला विजिटिंग कार्ड। नहीं, यह बात मैं आपको डराने के लिए नहीं कह रहा, ना ही इससे विचलित होने जैसा है कुछ। यदि आप थोड़ा सतर्क रहकर चलेंगे, खाने-पीने में नियंत्रण रखेंगे और दिन में आधा मील चलेंगे तो आपको कोई समस्या होने की आशंका नहीं रहेगी। आपका जीवन फिर से पहले जैसा हो जाएगा। डॉक्टर उठकर खड़े हो गए, उसे विदा करने के लिए उससे हाथ मिलाकर बोले, बेस्ट ऑफ लक!

एक महीने बाद घर लौटकर उदय प्रकाश सबसे पहले अपने बिस्तर पर लेट गया। मानो उसमें एक अलग-सी पुलक थी। तबीयत ठीक हो जाने की अपेक्षा घर लौट आने के आनंद को वह अधिक उपभोग कर रहा था। उसके बाद नहान घर में जाकर उसने आईने में खुद को देखा और मान लिया कि अब वह पहले जैसा नहीं है। इस एक महीने में उसके चेहरे का रंग उतर गया है। उसे पता था कि उसका वजन काफी घट गया है, पर चेहरे पर उसके इतना असर पड़ेगा, यह वह सोच नहीं पाया था। उसकी आँखें अंदर धँस गई थीं, गाल की हड्डियाँ दिखने लगी थीं और उसकी उम्र मानो अचानक बहुत बढ़ गई थी। उसने खुद को दिलासा दी कि डॉक्टर की बात मानकर चलने से कुछ दिनों में सारा कुछ फिर से पहले जैसा हो जाएगा।

किंतु क्या सच में ऐसा हो जाएगा? खुद से सवाल किया उदय प्रकाश ने। उसने पहले कभी इस तरह मौत के बारे में नहीं सोचा था। भले ही उसने मौत पर ढेरों कविताएँ लिखी थीं, किंतु कविता की मौत और डॉक्टर के कहे हुए मौत में काफी अंतर था। कविता की मौत आती थी एक मुलायम शीतल घनिष्ठ

दार्शनिक आध्यात्मिक परिवेश में, दुखांत संगीत की लहरों पर सवार होकर, लेकिन दूसरी मौत अस्पताल के निर्वैयक्तिक कीटाणुरहित सुरक्षित कमरे में जबरदस्ती घुस आती थी हाथ में फरमान लिए। हवा का एक ठंडा झोंका उसकी छाती से टकरा गया। नहान घर से निकलकर वह फिर से बिस्तर पर लेट गया।

नहीं, अब उसे अपनी दिनचर्या बदलनी होगी। अब उसके लिए ठीक नहीं है समय को चकमा देकर खुद को फिजूल के कामों में व्यस्त रखना। पहले जब वह कविता लिखने बैठता ही था, तब हठात् उसे याद आ जाता था कि उसने बिजली का बिल नहीं दिया है। या म्युनिसपैलिटी से जो पत्र आया था उसका जवाब देना होगा। कविता की कॉपी एक तरफ हटाकर वह तुरंत बैठ जाता था चेकबुक लेकर, म्युनिसपैलिटी के कागज़ात वाली फाइल खोलकर। कविता लिखना निश्चित ही एक दुरूह काम है और उससे होड़ लगाने के लिए हमेशा तैयार रहते थे तरह-तरह के तुच्छ घरेलू काम जिन्हें वह चुन लेता था। मन ही मन तर्क करता था, कविता तो कल भी लिखी जा सकती है, लेकिन आज बिल का भुगतान न किया गया तो बिजली काट दी जाएगी। इस तरह कविता न लिखने के उसे कई बहाने मिल जाते थे। जब बिल का भुगतान नहीं करना होता था, तब सोचता कि अपने बीमार मित्र को देखने जाना होगा, हालाँकि जब वह बीमार पड़ा था तब उसका मित्र उसे देखने नहीं आया था। उदय प्रकाश अपने मन को समझाता था कि वह निश्चित ही अपने मित्र से अधिक उदार है और कविता कदापि मित्र से महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। जबकि वह जानता था कि यदि उस पर कविता लिखने का बोझ नहीं होता, तब वह बेकार घर में पड़ा रहता, पर अपने बीमार मित्र को देखने कदापि नहीं जाता।

उसका एक मित्र काफी वर्षों से शोधरत था, पर अपनी किताब नहीं लिख रहा था। पूछने पर कहता, जब तक मैं यह नहीं जान जाता कि मेरी मृत्यु कब होगी, तो किताब क्यों लिखूँ? उदय प्रकाश उस बात का तात्पर्य ठीक से समझ न पाने पर भी यह जानता था कि उसमें एक निश्छल सत्य कहीं किसी तरह निहित है। इस वक्त उसके पास ऐसा कोई बहाना नहीं था। डॉक्टर ने उसकी मौत की तारीख भले ही न बताई हो, पर उसे मौत के प्रति आगाह कर दिया था। विजिटिंग कार्ड भेजने और आगंतुक के स्वयं हाज़िर होने के बीच समय का अंतराल असीमित नहीं है, गिनने योग्य कुछ पल मात्र होते हैं। उसके पिता जो कम उम्र में हृदय रोग से मर चुके थे, यह तथ्य भी बार-बार उसके मन में उभरता था।

कोई खास मानसिक या शारीरिक विपदा न आने तक सभी यह मान लेते हैं मानो जीवन एक अनंत यात्रा है, जिसमें बुरे फल की आशंका होते हुए भी निर्णय लिए जा सकते हैं, क्योंकि गलतियों को सुधारने की संभावना हमेशा रहती है। किंतु ऐसी आफत आते ही जीवन के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण अचानक बदल जाता है; समय सीमित हो जाता है और समाप्ति रेखा दृष्टि की अवधि के अंदर आ जाती है। अब उदय प्रकाश कोई नया काम शुरू करने के बारे में नहीं सोचता था; अब वह सोचता था कि आधे बचे सारे काम कैसे पूरा करेगा?

सुव्यवस्थित स्वभाव का होने की वजह से काफी दिनों से अपनी ज़िंदगी को संगठित कर लिया था उदय प्रकाश ने। इस वक्त बहत्तर साल की उम्र में पीछे मुड़कर देखने पर उसे लगा मानो वह कहीं भी पूर्णता नहीं देख पा रहा था। ऐसा क्यों लगता था? एक अरसा पहले शुरू-शुरू में इंश्योरेंस का काम प्रारंभ करने के दौरान उसने तय कर लिया था कि वह कवि ही बनेगा। कुछ सालों तक कोई उसे कवि की मान्यता देने को तैयार नहीं हुआ, इसका कारण उसकी कविता में कोई दोष या कमजोरी नहीं थी, था उसका पेशा। किसी अलिखित नियम के अनुसार कविता लिखने के स्वत्व और अधिकार को हथिया लिया था अधिकारियों और शिक्षकों ने और वे लोग अपने मोहिनी वृत्त के अंदर इंश्योरेंस एजेंट जैसे इतर लोगों का प्रवेश नहीं चाहते थे। लेकिन अंततः अध्यवसाय की विजय हुई और कवि के तौर पर स्वीकृति मिल गई उदय प्रकाश को।

अपनी गृहस्थी बसाने और बच्चों को सेट करने के बाद उसने अपना काम भी छोड़ दिया और पूरा का पूरा कवि बन गया। उसके बच्चे बाहर थे। पत्नी से अपना रिश्ता काफी दिनों से पूरी तरह औपचारिक बना लिया था उसने। उसका आय-व्यय उसके नियंत्रण में था, दुनिया का और कोई भार नहीं था उस पर और वह खुद को कवि के सिवाय और किसी रूप में नहीं देखता था। यही थी उसके जीवन की सबसे बड़ी विडंबना।

उपन्यासकार अपने लिए यह नियम बना सकता है कि वह प्रतिदिन पचास पृष्ठ लिखेगा ही लिखेगा। नाटककार एक दृश्य लिखने के साथ ही अभिनेता-अभिनेत्री निर्देशक के साथ समय बिता सकता है। लेकिन कवि के लिए दिन भर बैठकर कविता लिखना भला कहाँ संभव है! काव्य लेखन की कला जैसी किताबें पढ़ने, कविता के बारे में विचार-विमर्श आदि करने की सुविधा नहीं थी उस शहर में। साहित्यिक मित्रों के साथ बैठने से उसे विभिन्न लेखक-लेखिकाओं के व्यक्तिगत

जीवन, चरित्र और बदनामी के बारे में अनेक रोचक समाचार मिलते थे, लेकिन उन सबका कोई साहित्यिक महत्व नहीं होता था। वह खुद के कारण धीरे-धीरे ऐसे मित्रों से दूर रहने लगा और एक संगविमुख स्वाभिमानी इंसान के रूप में गिना जाने लगा।

उसके साहित्यिक समाज को छोड़ देने पर भी उन लोगों ने उसे नहीं छोड़ा था। बीच-बीच में सभा समितियों से उसे बुलावा आते थे कभी-कभी उसका साक्षात्कार लेने कोई पहुँच जाता था। साक्षात्कार का ढर्रा लगभग एक ही जैसा होता था। उसकी कोई भी रचना पढ़े बिना युवा पत्रकार और प्रश्नों का बँधा-बँधाया निर्दिष्ट क्रम। आपके जन्म की तारीख क्या है? आपने कुल कितनी किताबें लिखी हैं? आपकी पहली कविता कहाँ छपी थी? आपको कौन-कौन से पुरस्कार मिले हैं? इत्यादि। साहसी पत्रकार होने पर उससे प्रेम के बारे में सवाल पूछे जाते थे। आपकी प्रेम कविताओं की प्रेरणा कौन है? वह विवाहिता है या अविवाहिता? हालाँकि यह मानना पड़ेगा कि अब तक किसी ने उससे उसकी प्रेरणा का नाम, पता या टेलीफोन नंबर इत्यादि नहीं पूछा था। जबकि एक प्रश्न और पूछा जाता था, आप लिखते क्यों हैं? उदय प्रकाश ने इस प्रश्न की संगति बिलकुल समझ नहीं पाता था, क्योंकि नाटक करने वाले, चित्र आँकने वाले या नाचने वाले कलाकारों से कभी कोई यह सवाल नहीं करता कि आप अभिनय क्यों करते हैं, चित्र क्यों आँकते हैं, या नाचते क्यों हैं? उसी तरह उससे सवाल किया जाता था, आपके पेशे से आपके लेखन का क्या संबंध है, जोकि उदय प्रकाश की राय में बिलकुल निरर्थक था। नौकरशाह कवि की कविता पढ़ते समय यह जानने की क्या जरूरत है कि उस कविता को लिखते समय वे कृषि विभाग में कार्यरत थे या पशुपालन विभाग में?

साक्षात्कार के समय ऐसे अप्रासंगिक प्रश्न सुनकर शुरू-शुरू में वह खीझ उठता था। उसके बाद वह ऐसे सारे प्रश्नों को यथासंभव नजरअंदाज करके अस्पष्ट उत्तर देना सीख गया था। जब पत्रकार इससे असंतुष्ट होने लगे और वह उन लोगों के साथ सहयोग नहीं करते, ऐसा आरोप लगाया, तब उसने साक्षात्कार देना पूरी तरह बंद कर दिया।

ऐसे ही कड़वे अनुभव थे उसके साहित्य-सभाओं के। उसे कोई कुछ भी कहने को निमंत्रित करता तो वह समय देकर काफी कुछ पढ़कर अपना आलेख तैयार करता था, लेकिन उसकी सारी मेहनत बेकार हो जाती थी साहित्य के

अद्भुत् संचालन में। अनुशासित होने की वजह से वह ठीक समय पर पहुँच जाया करता था, लेकिन उस वक्त सभा में एक भी व्यक्ति नहीं होता था। अपने जीवन में उसने किसी भी सभा को ठीक समय पर शुरू होते नहीं देखा था। सभा के उद्घाटन-सत्र जैसे संगीत, स्वागत भाषण, वक्ताओं के परिचय आदि में इतना समय बीत जाता था कि मूल साहित्यिक चर्चा का समय होने तक किसी में आग्रह नहीं रह जाता था, या वक्ताओं को यदि अंत में बुलाया जाता था, तब तक सभागार में श्रोता बचते ही नहीं थे। कई बार तो श्रोताओं की उकताहट देखकर उदय प्रकाश अपना संक्षिप्त भाषण और भी संक्षिप्त कर देता था। बार-बार के ऐसे कटु अनुभव के बाद उसने धीरे-धीरे खुद को सभा-समितियों से भी अलग कर लिया।

अब तक वह एक प्रतिष्ठित कवि के रूप में स्थापित हो चुका था और सजग था कि वह पाठक एवं आम-जनता के बीच अपना एक निश्चित व्यक्तित्व बनाएगा। वह चाहता था कि उसकी नेकनामी हो कवि के तौर पर, कवि सिर्फ कवि। जबकि लोगों की उस बारे में अलग तरह की उम्मीद थी; कवि कहने से वे समझते थे, एक पूरी तरह बीतरागी, अनियंत्रित, स्वेच्छाचारी, शराबी जीव, जिसे झेला जा सकता है सिर्फ उसकी कविता के लिए। खुद इस तरह की दिनचर्या से दूर रहने की वजह से उदय प्रकाश अपने को एक वैकल्पिक नेकनामी बनाकर पहुँचाना चाहता था सबके पास। यह काम अति दुरूह था। साहित्यिक गोष्ठियों और बंधु-मिलन के समय जब वह शराब पीने से मना करता था, कोई भी विश्वास नहीं करता था कि वह वाक़ई में नहीं पीता है। बल्कि एक ऐसी धारणा बनी हुई थी कि वह कपटी है और घर पर रोज़ाना शराब पीता है, जबकि बाहर दिखाना चाहता है कि वह एक साधु-संत है। उसका पहनावा भी कवियों जैसा बिल्कुल नहीं था। भारत संभवतः एकमात्र ऐसा देश है जहाँ अलग-अलग काम करने वाले लोगों के लिए अलग-अलग पोशाक का प्रचलन है, जैसे गाँधी टोपी देखने से पता चल जाता है कि वह आदमी राजनैतिक नेता है। बड़े-बड़े बालों से नर्तक और अस्तव्यस्त कपड़ों एवं झोले से बुद्धिजीवी। कवि के लिए कोई निर्धारित पोशाक न होने पर भी दाढ़ी एक सहायक भूषण के रूप में गिनी जाती थी। दुर्भाग्य से उदय प्रकाश मूँछ तक नहीं रखता था। चरित्र की दृष्टि से वह रूढ़िवादी एक पत्नीव्रता था और खुद को अपवादों से दूर रखे हुए था। लोग उसके बारे में जो भी गलत धारणा बनाते हैं बनाएँ, उसने निश्चित कर लिया था कि उसकी

साहित्यिक पहचान उसके चरित्र से नहीं, पहनावे से नहीं, सिर्फ उसकी कविता, कविता और कविता के जरिए ही बनेगी।

नेकनामी कमाने के लिए एक और समस्या थी कविता की व्याख्या को लेकर। कविता में वह क्या कहना चाहता है? किसी-किसी को प्रेम के कवि, विद्रोह के कवि या मृत्यु के कवि की आख्या दी गई थी, पर उसके प्रति किसी ने ऐसे किसी विशेषण का प्रयोग नहीं किया था। वह विभिन्न विषयों पर कविताएँ लिखा करता था और सोचता था कि यही उसकी विशेषता है। पर आलोचक उसे सहज ही छोड़ने वाले नहीं थे; वे लोग खींच-खींचकर उसे एक साँचे में डालने की चेष्टा कर रहे थे। एक बार किसी आलोचक ने उसकी एक कविता की समीक्षा करते समय एक विकृत अर्थ निकाला था जोकि कभी भी कहना नहीं चाहा था उदय प्रकाश ने। वह समीक्षा छपने के बाद उदय प्रकाश ने संपादक को पत्र लिखकर एक लंबा स्पष्टीकरण दिया था कि उसने वह कविता क्यों लिखी थी, वह उसमें क्या संप्रेषित करना चाहता था, इत्यादि। वह नहीं जानता था कि साहित्यिक युद्ध में आलोचक अक्सर भयंकर व अजेय और अमर होते हैं। उसका पत्र छपने के बाद आलोचक ने एक और भी लंबा पत्र लिखकर जो सत्य प्रतिपादित किया, वह इस प्रकार है :: कवि ने क्यों वह कविता लिखी थी, लेखन का मूल्यांकन करते समय वह तथ्य पूर्णतः अप्रासंगिक है; आलोचक के लिए कविता ही सबकुछ है। रचना छपने के बाद वह जनता की संपत्ति हो जाती है, उस पर लेखक का कोई एक तरफा स्वत्वाधिकार नहीं रह जाता। आखिर में आलोचक ने कटाक्ष करते हुए लिखा था, यह सच है कि कवि ने हमें एक सुंदर कविता दी है, किंतु वे स्वयं नहीं जानते कि उन्होंने क्या लिखा है!

उस घटना के बाद उसने आलोचकों से बातचीत बंद कर दी और यह तय किया कि वह हर कविता के लिए एक पूर्वकथन लिखेगा जिसमें वह इस बात का उल्लेख करेगा कि उसने वह कविता क्यों लिखी और उस कविता में वह क्या कहना चाहता है। ऐसा करने पर उसने देखा कि उसमें काफी समस्याएँ हैं। कभी-कभी उसे ऐसा लगता था कि जैसा आलोचक ने कहा था, वह खुद ही नहीं समझ पाता था कि वह कविता में क्या कहना चाहता है। फिर भी, उसने वह काम जारी रखा, जबकि वह जानता था कि वह जो कर रहा है वह पूरी तरह न्यायसंगत और सत्याश्रयी नहीं है।

इस तरह उसके परिपक्व साहित्यिक जीवन में जो संकट आए थे उनका समाधान करने के दौरान वह बीमार पड़कर अस्पताल में भर्ती हो गया था।

अब अस्पताल से लौटने के बाद डॉक्टर द्वारा तय की गई अपने बाकी बचे जीवन की मियाद को देखकर उदय प्रकाश ने अनुभव किया कि उसके जीवन की सारी दिशाएँ बदल गई हैं। उसने अपने बारे में, साहित्य के बारे में और भविष्य के बारे में जो नियम बनाए थे, उसे लगा वे सब अंतिम नहीं थे और संशोधित होनें की उम्मीद कर रहे थे। इसलिए उसने एक अलग तरह की जीवन प्रणाली में खुद को समर्पित कर दिया।

पहले वह कभी सभा-समितियों में नहीं जाता था। अब न केवल सारे निमंत्रण स्वीकार करने लगा, बल्कि वह ढूँढ़ता फिरता था कि कौन-सी संस्था उसे भाषण देने के लिए बुलाएगी। कुछ ही दिनों में उसे प्रदेश के विभिन्न विचार गोष्ठियों, साहित्यिक सभाओं, पुस्तक विमोचन, पुरस्कार वितरण, वार्षिकोत्सव इत्यादि कार्यक्रमों में देखा गया। अभ्यास करते-करते वह भाषण देने में दक्ष भी हो गया। उसे अपनी आवाज अपने कानों को सुहाने लगी। इसके अलावा उसने अपने अध्यापक मित्रों से अनुरोध करके उसके लेखन पर शोधकार्य कैसे होगा और उसकी कविताएँ पाठ्य-पुस्तकों में कैसे शामिल होंगी, उसकी व्यवस्था करवाई, यहाँ तक कि काफी कोशिश करके अपनी कविताओं पर आधारित एक कार्यक्रम दूरदर्शन में भी दिखवाने में सफल हो गया था उदय प्रकाश।

इसकी वजह थी अखबारों में नाम और तसवीरें छपना। अब उदय प्रकाश ने तरह-तरह के साक्षात्कार देना भी शुरू कर दिया था। पहले वह साक्षात्कार लेने आने वाले युवकों को परेशान किया करता था। अब वह उनसे सम्मानपूर्वक मिलकर यथाविधि उनके खाने-पीने का ध्यान भी रखता था। उन लोगों के उसका साक्षात्कार अखबार में छपने भेजने से पहले वह उन्हें उसमें आवश्यक संशोधन करके उसे परिमार्जित करने की सलाह देता था एवं विषय-वस्तु से मेल खाती अपनी तसवीर भी देता था। आगे चलकर साक्षात्कार में सिर्फ साहित्यिक विषय न होकर अन्य विषयों पर भी उसकी राय ली जाने लगी। यहाँ तक कि एक बार किसी पत्रकार ने उसकी खाने की रुचि के बारे में लेख लिखकर उसके साथ उदय प्रकाश द्वारा तैयार किए गए व्यंजनों के बनाने की विधि और बनाते समय की तसवीर भी छपवाई थी। सभाओं में अपनी आवाज की तरह अखबार के पन्ने पर अपनी तसवीर भी उदय प्रकाश को आनंद देती थी।

यह सब करने के साथ ही कविता लिखना भी जारी रखा उदय प्रकाश ने। कम समय में वह कितना अधिक लिख सकता है, यह उसके लिए एक अग्निपरीक्षा-सा हो गया एवं अब तक अतिसतर्क और सुचिंतित रूप से लिखने

वाला कवि थोक के भाव लिखने वाला लेखक बन गया। कहने की जरूरत नहीं कि लेखन की गुणवत्ता पर इसका प्रभाव पड़ा और किसी ने अब उसकी कविताओं को महत्व नहीं दिया। परंतु एक प्रतिष्ठित कवि होने के कारण उसकी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों को अलंकृत करने लगीं, भले ही उसके कोई पाठक नहीं रहे।

इस तरह धुआँधार लिखते चले जाने के साथ ही वह अपनी पुरानी कविताओं की प्रस्तावना भी लिखने लगा, ताकि भविष्य में उसके लेखन का सही मूल्यांकन हो और कोई व्याख्याकार उसकी कविताओं को खींच-तानकर गलत अर्थ न निकाले। उसे इस बात का दुख था कि उसकी कविताओं के मिजाज को लेकर अभी तक उसे कोई उपनाम नहीं दिया गया था। अपनी पुरानी कविताओं को पढ़ते समय उसे लगा कि उसे अस्तित्ववादी कवि कहा जा सकता है। इसीलिए अपनी कविताओं की भूमिका लिखते समय उसने उसे अस्तित्ववाद के साँचे में ढालने की कोशिश की और साक्षात्कार के समय स्पष्ट रूप से इस ओर संकेत भी करने लगा। इस तरह वह बताना चाहता था कि स्वयं नास्तिक होने की वजह से उसकी कविताएँ वस्तुवादी थीं और उनमें किसी तरह का आध्यात्मिक या धार्मिक भाव नहीं था। उसने कविताओं की भूमिका में इस बात के संकेत भी दिए थे।

साहित्यिक गतिविधियों के साथ ही वह अपनी सेहत का भी ध्यान रखता था, किंतु इस काम में वह पूरी तरह लापरवाह था। वह नियमित प्रातः भ्रमण नहीं करता था, खाने-पीने में संयम नहीं बरतता था और समय पर दवा नहीं लेता था। वह जितनी बार भी डॉक्टर की सलाह लेने जाता, वे उस पर नाराज होते थे और उसके जीवन की मियाद कुछ घटा देते। अंत में डॉक्टर से खीझकर उसने तय कर लिया कि वह और कुछ ही दिनों का मेहमान है एवं इस बात को स्वीकार कर लेने के बाद अपने खानपान, दवा और व्यायाम का उसने सारा नियंत्रण छोड़ दिया। अब से उसने अपना सारा समय और श्रम अपनी मृत्यु की तैयारी करने में झोंक दिया।

सबसे पहले उसने अपनी चल-अचल संपत्ति के कागजात ठीक करके पत्नी को समझा दिया। इन सब पीले पड़ चुके कागजात के प्रति पत्नी में कोई आग्रह नहीं था एवं हर कागज का महत्व और आवश्यकता के बारे में उसे समझाने के बावजूद अंत में उसने केवल 'ठीक है' कहा। सारे कागजात इकट्ठा करके अलमारी की ताक में रखने के बाद उदय प्रकाश ने उसके ऊपर 'जमीन और रुपए-पैसों के जरूरी कागजात' लिखकर एक पर्ची चिपका दी।

लेकिन जायदाद की तरह अपनी कविताओं का हिसाब-किताब करके किसी को समझाना आसान नहीं था। अलमारी की एक और ताक खाली करके उसमें अपनी सारी साहित्यिक कृतियाँ सुव्यवस्थित रूप से रखने में मन लगाया उदय प्रकाश ने। अब उसने नई कविताएँ लिखनी बंद कर दीं, यहाँ तक कि सभा-समितियों में भी जाना कम कर दिया और जुट गया इस काम में कि किस तरह वह अपना समग्र साहित्य-भविष्य में पाठकों तक पहुँचाएगा।

इसके लिए अपना एक जीवन-वृत्त बनाते समय उसे याद आया कि उसे अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं, पर देश का सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार अभी तक नहीं मिला था। एक बार यह बात उसके दिमाग में घुस जाने के बाद वह पुरस्कार उसकी चिंता का केंद्रस्थल बन गया। उसे लगा कि किसी गहरी साजिश के तहत उसे इस सारस्वत मर्यादा से वंचित किया गया है और उसी क्षण से वह जुट गया किस तरह मरने से पहले उसे वह पुरस्कार मिल जाए।

पुरस्कार की प्रक्रिया आसान नहीं थी। अनेक स्तरों से विभिन्न लेखकों की अंत में एक शीर्षस्थ निर्णायक मंडल इसका निर्णय करते थे। उदय प्रकाश ने कोशिश की कि किस तरह हर स्तर पर उसके नाम की सिफारिश हो। इसके लिए जाने-अनजाने अनेक लेखकों से मिलकर खुशामद करनी थी। उदय प्रकाश ने इस काम में अपनी जी-जान लगा दी। लेखकों को संतुष्ट करने के लिए सारे उपाय किए, जैसे युवा लेखकों की किताबों की अतिरंजित और अतिशयोक्तिपूर्ण समीक्षाएँ लिखना, पुस्तक विमोचन करना और वहाँ लेखकों की जन्म तारीख ढूँढ़कर उन्हें बधाई भेजना, वयस्क लोगों के घर जाकर उनकी प्रशंसा करना, उसके बारे में जहाँ जैसी प्रशंसनीय लेख छपे थे उसकी कॉपी सबके पास भेजना, अपनी हाल ही में प्रकाशित किताब में चाटुकारितापूर्ण समर्पण लिखकर उसे उदारतापूर्वक बाँटना इत्यादि-इत्यादि।

उन तमाम कोशिशों के बावजूद उस साल जब उसे वह पुरस्कार नहीं मिला, उदय प्रकाश कुछ दिनों तक उदास रहा। इसलिए नहीं कि उसकी इतने दिनों की मेहनत पर पानी फिर गया, बल्कि इसलिए कि वह समझ रहा था कि अब उसने सबके आगे खुद को उपहास का पात्र बना दिया है। उसकी इतने दिनों की बड़ी मुश्किल से बनी नेकनामी अब नहीं रही। तबीयत खराब होने से पहले उसका जितना नाम था, उसने खुद ही उसे काफी हद तक धूमिल करके अपना एक अन्य परिचय बनाया था। अस्पताल से लौटने के बाद। वह समझ रहा था कि पुरस्कार के पीछे भागने के बाद से उसकी ख्याति अब लगभग नहीं रही।

खीझकर उसने पुरस्कार देने वाले निर्णायकों को मन ही मन गरियाया और तय किया कि अब वह उस ओर ध्यान नहीं देगा।

किंतु अगले साल जब पुरस्कार प्रक्रिया पुनः शुरू हुई, उदय प्रकाश ने पिछली बातें भूलकर फिर से जी-जान लगा दी उसके लिए जो लोग सहायक होंगे उनकी सेवा में। छह महीने तक इसमें अपना पूरा समय लगाने के बाद उदय प्रकाश लगभग निश्चिंत हो गया कि इस वर्ष का पुरस्कार उसे मिलेगा ही मिलेगा। यहाँ तक कि पुरस्कार ग्रहण करते समय वह क्या भाषण देगा, उसकी भी लिखकर तैयारी कर ली मुख्य रूप से।

इस तरह मन ही मन पुरस्कार ले लेने के उपरांत उसने मरने के बाद अपनी यादें छोड़ जाने के बारे में मन लगाया। उसके बच्चे बाहर थे और साहित्य से उनका कोई लेना-देना नहीं था। उसकी पत्नी की कोई रुचि नहीं थी उसमें या उसकी कविताओं में। उन लोगों पर निर्भर करना बेकार था। उसे याद आया कि कोई लेखक मरने से पहले अपने सीने तक की मूर्ति बनवाकर छोड़ गया था ताकि भविष्य में लोग उसे भूल न जाएँ। काफी सोच-समझकर उसने तय किया कि वह बिना नामवाली एक संस्था बनाएगा जो उसके मरने के बाद उसके साहित्य और उसे याद रखने की व्यवस्था करेगी। काफी सोच-समझकर अंत में उसने इस काम के लिए शुभाशीष नाम के एक भोले भाले, डरपोक और धर्मभीरु युवक को चुना एवं उसे निमित्त बनाकर एक 'प्रतिभा पूजा परिषद ट्रस्ट' बनाया जिसका मुख्य और एकमात्र काम होगा उदय प्रकाश की मृत्यु के बाद उसकी कविताओं का प्रकाशन, प्रचार और प्रसार करना और वार्षिक-स्मृति सभा का आयोजन करना।

इस तरह अपने जीवन को हर तरह से सुव्यवस्थित करके एवं भविष्य के लिए आनुष्ठानिक कार्य योजना बनाने के बाद उदय प्रकाश ने चैन की साँस ली। वह समझ गया कि उसने एक सफल जीवन जीने के साथ ही भविष्य में लोग उसे किस तरह याद रखेंगे, उसकी भी व्यवस्था कर दी है। अब इंतजार था सिर्फ उस सर्वोच्च पुरस्कार को हासिल करने का। लेकिन उदय प्रकाश के जीवन में बस यही एक खेद रह गया। उस पुरस्कार के घोषणा होने से पहले ही एक दिन गर्मी की दोपहरी में बिस्तर पर लेटे-लेटे उसका निधन हो गया।

उदय प्रकाश को सबकुछ हल्का लग रहा था। छत पर मँडराते समय वह नीचे बिस्तर पर पड़े अपने शव को देख रहा था, किंतु जरा भी बोझिल होने-सा अहसास नहीं हो रहा था। वह देख पा रहा था, सुन पा रहा था, अपनी इच्छा से विचरण कर पा रहा था और उसमें हर चीज का अहसास करने और सोचने की

शक्ति थी। लेकिन अपनी ओर देखने पर उसे लगा कि उसका कोई आकार नहीं है और वह पूरी तरह अदृश्य है। यह भी एक सुखद अनुभूति थी।

शव के चेहरे की ओर उसने ध्यान से देखा; चेहरा शांत, भावाविष्ट और पूर्णतः कवि सुलभ था। इससे उदय प्रकाश को संतोष हुआ। अचानक उसे शव के चेहरे पर एक भिनभिनाती मक्खी दिखाई दी। उसने नीचे आकर उसे भगाने की कोशिश की, किंतु मक्खी उसके भीतर से होकर उड़ गई और उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा मक्खी पर! खीझकर वह ऊपर की ओर लौट गया और दूसरों की ओर देखने लगा।

उसने सोचा था कि सभी दहाड़े मार मारकर रोएँगे, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हो रहा था। मृत्यु की खबर पाकर आसपास के जिन लोगों ने आकर घर में भीड़ कर रखी थी, उनके चेहरों पर दुख नहीं, बल्कि बेवक्त एक शव की जिम्मेवारी सिर पर आ जाने की वजह से खीझे हुए दिखाई दे रहे थे। उसकी पत्नी शव को छोड़कर रसोई में चली गई थी अतिथियों के लिए चाय का इंतजाम करने। कुल मिलाकर एक प्रसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर जो कुछ होना चाहिए, कुछ भी शुरू नहीं हुआ था अभी तक। उसने जिस तरह के फूलों के अंबार और टेलीविजन कैमरा आदि की कल्पना की थी, वह सब नदारद थे। उदय प्रकाश मुँह उठाए इंतजार करने लगा, भीड़ इकट्ठी होने की शुरुआत कब होगी।

लेकिन समय बीतने के क्रम में जो कुछ हुआ उसकी कल्पना तक नहीं की थी उदय प्रकाश ने। उसने सोचा था कि बच्चों के पास तार भेजा जाएगा और उन सबके आने तक उसका शव फूलों से सजाकर बर्फ पर रखा जाएगा ताकि दूर-दराज़ से आने वाले उसके प्रशंसकों, भक्तों और चाहने वालों को उसके अंतिम दर्शन का अवसर मिलेगा। वह एक कागज पर अपने शवदाह के संबंध में विस्तार से निर्देश लिख गया था। नास्तिक होने की वजह से वह चाहता था कि उसके शव को विद्युत शवदाह गृह में जलाया जाए बिना किसी धार्मिक कृत्य और कर्मकांड के। लेकिन उसकी पत्नी पूजा-पाठ में विश्वास रखती थी। किसी ने उदय प्रकाश की अंतिम इच्छा का हवाला देने पर उसने कहा, यह कैसे होगा? वे आस्तिक थे या नास्तिक यह अलग बात है, पर थे तो हिंदू ही। इसलिए हर चीज विधि अनुसार ही होगी, चाहे वे कुछ भी क्यों न लिख गए हों। इतना कहने के बाद उसकी पत्नी एक टेपरिकॉर्डर ले आई, और उसमें गीता की एक आवृत्ति लगा दी।

शुभाशीष अपना दल-बल लेकर पहुँचने पर आश्वस्त हुआ उदय प्रकाश। उनके साथ फोटोग्राफर था और अखबारों के प्रतिनिधि थे। उन लोगों के टेलीविज़न के प्रतिनिधि का इंतजार करते समय पत्नी ने आकर कहा कि जितनी जल्दी हो सके शव को घर से बाहर निकालना होगा। उदय प्रकाश ने चाहा कि चीत्कार करके कहेगा कि यह उसकी इच्छा के विरुद्ध है, पर लाख कोशिश करने पर भी उसकी आवाज किसी को सुनाई नहीं दी और उसकी पत्नी ने पड़ोसियों के सहयोग से उसका शव ले जाकर हिंदू श्मशान में यथाविधि क्रियाकर्माणि सहित दाह संस्कार कर दिया। यह सब देखकर उदय प्रकाश का मन पूरी तरह टूट गया और वह पत्नी के पास से जाकर शुभाशीष के कार्यकलाप देखने लगा।

वह खुश था कि उसकी मृत्यु की खबर रेडियो और टेलीविजन में प्रसारित हुई और अगले दिन सुबह अखबारों में भी फोटो सहित उसके मरने की खबर छपी। शुभाशीष दिन भर एक शोकसभा आयोजित करने में व्यस्त रहा। शाम को दूर से वह सभा देखकर उदय प्रकाश को राहत मिली कि उसमें अनेक गण्यमान्य लोग आए थे और ढेरों लोगों ने शोक-संदेश भिजवाए थे। सभा में सबने उसका गुणगान किया था। जिन कुछ लोगों से उसकी नहीं पटती थी, उन्होंने भी कोई विरोधी बात नहीं कही। उन लोगों ने उसके साहित्य के बारे में जो विचार रखे थे, उदय प्रकाश के मन मुताबिक नहीं थे। बहरहाल, सारी व्यवस्था संतोषजनक थी। भले ही शुभाशीष मुख्यमंत्री का कोई संदेश लाने में सफल नहीं हुआ था, उदय प्रकाश ने सोचा कि अपनी स्मृति को बचाए रखने के लिए उसने एक सही व्यक्ति को चुना है।

अगले दिन वकील साहब उसके घर आए पत्नी को उदय प्रकाश की वसीयत देकर उस बारे में चर्चा करने। उदय प्रकाश ने सोचा था कि अब तक बच्चे भी खबर पाकर आ गए होंगे, लेकिन पत्नी ने उन्हें यह सोचकर आने से मना कर दिया था कि वे लोग दाह-संस्कार तक नहीं पहुँच पाएँगे। वसीयत पढ़ने के बाद जब पत्नी को पता चला कि कुछ रुपए-पैसे एक ट्रस्ट को दिया गया है, उसने वकील से ठीक से बातचीत नहीं की और उनके लिए मँगवाई गई चाय आने से पहले ही वकील को विदा कर दिया। घर के कोने में रहकर उदय प्रकाश ने यह दृश्य भी देखा, पर उसे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह अपनी पत्नी का स्वभाव अच्छी तरह जानता था।

जिस दिन शुभाशीष उसके घर गया, पत्नी का पारा चढ़ा हुआ था। उसके कुछ कहने से पहले पत्नी ने आरोप लगाया कि उदय प्रकाश की शारीरिक,

मानसिक अस्वस्थता और कमजोरी का लाभ उठाकर उन लोगों ने उसकी संपत्ति में हिस्सेदारी कर ली है। शुभाशीष ने लाख समझाया कि इसमें उसका कोई भी स्वार्थ नहीं है और सारा पैसा उदय प्रकाश की स्मृति पर ही खर्च होगा, पत्नी संतुष्ट नहीं हुई। जब शुभाशीष ने दिवंगत कवि का गुणगान करना शुरू किया, उदय प्रकाश खुश हुआ, लेकिन उसकी पत्नी ने खीझते हुए कहा, ठीक है-ठीक है, अब सफाई देने की जरूरत नहीं है। तुम लोगों के लिए वे बड़े कवि होंगे, उन्हीं के पैसों से उनकी पूजा करते रहो। मैं उनके सारे कागज-पत्र तुम्हें दिए देती हूं; उसके बाद इस मकान का अहाता तक छूने की जरूरत नहीं। इतना कहने के बाद उदय प्रकाश द्वारा अलमारी में करीने से रखी उसकी साहित्यिक संपत्ति निकालकर लाई और नीचे फेंक दी।

उदय प्रकाश ने तय किया कि उसके साहित्य के प्रति ऐसी विमुख और उदासीन पत्नी से अब वह कोई रिश्ता नहीं रखेगा। परंतु तीन दिन बाद जब टेलीविजन वाले उसकी पत्नी का साक्षात्कार लेने आए, उदय प्रकाश वहाँ उपस्थित रहने का लोभ रोक नहीं पाया। इस अवसर के लिए उसकी पत्नी ने अपनी सबसे अच्छी पोशाक पहनकर खुद को सजा रखा था और अतिथियों के लिए खानपान का इंतज़ाम किया था। बैठक के सबसे आरामदायक सोफे पर बैठकर उसकी पत्नी अपने चेहरे पर पड़ रही तेज रोशनी की ओर देखते हुए पूरे आत्मविश्वास से प्रश्नकर्त्ता को उदय प्रकाश के बारे में बता रही थी। प्रत्येक कविता लिखने के बाद वे मुझे पढ़ने को देते थे और जब तक मैं उस पर अपनी सहमति नहीं देती थी, वह कविता छपने नहीं जाती थी। मैं ही थी उनकी कविता की पहली पाठक और आलोचक। यह सुनकर उदय प्रकाश आश्चर्यचकित हो गया, किंतु आगामी प्रश्नों के जो उत्तर उसने दिए वे और भी चौंकाने वाले थे। उन्होंने जितनी भी प्रेम कविताएँ लिखी थीं वे सब मेरे लिए थीं, उसकी पत्नी ने कहा, और वे हमेशा एक पत्नीव्रता रहे। सिर्फ कुछ सालों तक किसी मायाविनी की जाल में फँसकर वे मुझसे दूर चले गए थे, किंतु बाद में अपनी गलती समझकर लौट आए थे, मेरे पास। पर उदय प्रकाश ने उस नारी के लिए कोई कविता नहीं लिखी थी। उसकी पत्नी अति सहजता से ऐसी बेसिर पैर व पूर्णतः मनगढ़ंत बातें कहती चली जा रही थी और उदय प्रकाश छटपटा रहा था कि वह इनका विरोध नहीं कर पा रहा। जब उदय प्रकाश के धार्मिक विश्वास पर सवाल किया गया, पत्नी ने निर्विकार रूप से कहा, वे बाहर यह दिखाना चाहते थे कि वे एक नास्तिक हैं,

किंतु वास्तव में पूर्णतः धार्मिक व्यक्ति थे। सुबह पूजा किए बिना वे किसी भी काम की शुरुआत नहीं करते थे।

ऐसी अनर्गल झूठी बातें सुनकर उदय प्रकाश का दिल टूट गया और वह वहाँ से उठ गया, शुभाशीष क्या कर रहा है यह देखने के लिए। उसी दिन सुबह शुभाशीष ने ट्रस्ट के हिसाब से कुछ रुपए निकाले थे और उसका पहला उपयोग शराब खरीदने के लिए किया था। शुभाशीष सहित पाँच युवा लेखक इस वक्त शराब की बोतल को घेरकर बैठे थे। उदय प्रकाश के घर से वह जो कागज-पत्र लाया था, उसका पुलिंदा कमरे के एक कोने में पड़ा था। उदय प्रकाश को पूरी तरह अशिष्ट और अशोभनीय लगा वह माहौल। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि शुभाशीष शराब पीता होगा। गिलासों में शराब डालने के बाद पहली घूँट पीते समय सबने उसका नाम लिया, कुछ आश्वस्त हुआ उदय प्रकाश।

शराब पीते हुए हल्के नशे में उदय प्रकाश के लिए कई प्रशंसनीय बातें कही उन युवकों ने। किंतु जब बोतल खत्म हो गई, उनके उत्साह में मानो भाटा पड़ गया। एक ने कहा, शुभाशीष सोचता है मानों यह उसके पसीने की कमाई है। जिसके पैसे हैं, वह तो स्साला कबका मर चुका है। कम से कम उसके पैसों का सदुपयोग तो हो। शुभाशीष ने कहा, मेरी पहली जिम्मेवारी है कविता की किताब छपवानी; उसके बाद कोई और बात। एक मित्र ने कहा, किताब के लिए तो काम करना ही होगा! उसके लिए हमें रोजाना मिलना होगा, पर बिना शराब के कैसा मिलना? तुम ऐसा करो, एक दर्जन बोतलें इकट्ठी खरीदकर रख लो। हमारे सामने बोतलें होंगी तो किताब का काम भी चलता रहेगा।

शुभाशीष से पैसे लेकर एक युवक स्कूटर में चला गया शराब और ढाबे से खाने की चीजें लेने। अब उन्होंने किताब छपवाने पर ध्यान दिया। उदय प्रकाश, जिसने हर कविता के लिए अमुख के तौर पर कुछ पंक्तियाँ लिखकर रखी हैं, उस बारे में चर्चा हुई। काफी तर्क-वितर्क के बाद यह तय हुआ कि किताब में वे इन आमुख को शामिल नहीं करेंगे, क्योंकि काव्य-पुस्तक के लिए ऐसी कोई प्रथा नहीं है। उसके इतनी मेहनत के फल को उन लोगों द्वारा इतनी आसानी से खारिज होते देख दुखी हुआ उदय प्रकाश।

उसे और भी जोर का झटका तब लगा जब दूसरी बोतल से शराब पीते समय सबके हाव-भाव बदल गए और बातचीत का रुख बदल गया। डरपोक स्वभाव का भोला-भाला शुभाशीष इस वक्त सबसे अधिक उग्र दिखाई दे रहा था

और उसकी बातचीत में संयम नहीं था। वह ऊँची आवाज में कह रहा था, मेरे पास भला इन कामों के लिए समय कहाँ था? बुढ़ऊ ने मेरी चिरौरी करते हुए अनुरोध करने पर मैं राजी हो गया। इससे भी अच्छे-अच्छे कवि हैं। क्या किया जा सकता है? जब जिम्मेवारी ले ली है, तो निभाना भी पड़ेगा। उसके बाद सभी उसकी कविताओं पर चर्चा करने लगे। अभी कुछ ही देर पहले जो लोग उसकी कविताओं की प्रशंसा कर रहे थे, वे ही लोग उसकी कविताओं की कमजोरियाँ निकालकर उसे छोटा बनाने लगे। उदय प्रकाश को इस बात का दुख हुआ कि उस चर्चा में उसकी सबसे अधिक आलोचना करने वाला स्वयं शुभाशीष था! खीझकर वह वहाँ से उठकर चला गया।

अगले दिन सुबह शुभाशीष के घर जाकर उसे देखने पर वह खुश हुआ कि शुभाशीष पहले की तरह शांत और सामान्य था और उदय प्रकाश की कविताएँ प्रेस में भिजवाने की तैयारी कर रहा था। उदय प्रकाश उसके पीछे खड़े होकर पांडुलिपी का खुला पृष्ठ देखने लगा। वह एक पुरानी कविता थी, जिसकी एक पंक्ति थी, हे ईश्वर, उन्हें माफ कर दो। उस कविता की प्रस्तावना में उसने लिखा था कि यह पंक्ति केवल कहने मात्र की है, और इसके जरिये वह ईश्वर के अस्तित्व को बिलकुल स्वीकार नहीं कर रहा है। शुभाशीष की पेंसिल इस पंक्ति पर रुक गई थी। उदय प्रकाश उसे धार्मिक स्वभाव का समझता था, लेकिन यह नहीं जानता था कि वह जगन्नाथ जी का परम भक्त है। शुभाशीष ने उस पंक्ति को पेंसिल से काट दिया एवं उदय प्रकाश ने उसे जितना भी नकारात्मक संदेश देने की चेष्टा की, शुभाशीष ने उस पंक्ति के बदले लिखा, कालिया (जगन्नाथ प्रभु) रे, दे अपनी श्रद्धा के कुछ कण हमें।

उदय प्रकाश ने निश्चित किया कि अब वह भविष्य की चिंता न करके इन दुष्ट लोगों को छोड़कर चला जाएगा स्वर्ग या नर्क में अपनी आत्मा के लिए जगह की तलाश में। किंतु उसे लोभ हो गया उस पुरस्कार का निर्णय जानने का। उस बारे में पता लगाकर जब वह सही दिन चयन परिषद की बैठक में पहुँचा, वहाँ का माहौल काफी गर्म था। प्रसंग दो प्रतिद्वंद्वी लेखकों के बारे में नहीं था; तर्क-वितर्क का विषय था कि किसी मृत व्यक्ति को पुरस्कार दिया जाए या नहीं। एक सदस्य ने अनेक मरणोत्तर पुरस्कारों का उदाहरण दिया, किंतु एक दूसरे सदस्य की राय थी कि मरे हुए व्यक्ति को पुरस्कार देने से उसका कोई लाभ नहीं होता, बल्कि जीवित व्यक्ति का नुकसान होता है। इस तरह काफी देर तक चर्चा चलती रही। जो उद्योगपति यह पुरस्कार देते थे और इस समय बैठक की

अध्यक्षता कर रहे थे, वे अपनी किसी दूसरी बैठक में जाने को उतावले हो रहे थे। साहित्यिक लोगों के किसी निर्णय पर न पहुँच पाने के कारण उन्होंने उस चर्चा पर पूर्णविराम लगाते हुए फैसला सुनाया कि वह पुरस्कार दो लोगों में बाँट दिया जाए—आधे पुरस्कार का आधा आनंद लेकर उदय प्रकाश वहाँ से लौट आया।

इस दुनिया को अंतिम बार छोड़कर चले जाने से पहले उदयप्रकाश चाहता था अपनी कविता की किताब को छपे हुए रूप में देखना और यह जानना कि उसकी प्रथम श्राद्ध-वार्षिकी में लोगों ने उसे कितना याद रखा है। शुभाशीष के घर पर शराब पी रही मंडली के बीच उसने जो किताब देखी उसके आकार, कागज, आवरण, अक्षर, और बँधाई कुछ भी उसके मन मुताबिक नहीं था। उस किताब को खोलकर पढ़ते समय उदय प्रकाश ने देखा कि शुभाशीष ने उसमें कई जगह काफी काट-छाँट की है। उसने उम्मीद की कि शायद भविष्य में कोई उसकी पुरानी पांडुलिपि देखकर उसकी मूल कविताओं और प्रस्तावनाओं को जोड़कर उसकी किताब का एक शुद्ध संस्करण छपवाएगा। दीवार के पास उसके जो कागज-पत्र रखे हुए थे उस ओर नजर डालने पर उदय प्रकाश ने देखा कि अब वह जगह खाली है। शुभाशीष की बातचीत से पता चला कि किताब छप जाने के बाद उसकी पांडुलिपि और सारे कागज-पत्र कबाड़ी को रद्दी के दाम बेच दिए गए।

अब सिर्फ बची थी शोकसभा। अति निस्पृह रूप से मंच की ओर देखा उदय प्रकाश ने। संस्कृति विभाग के मंत्री के साथ विराजमान थे उसकी पत्नी, शुभाशीष और उस दिन सभा में गीत गाने आए संगीतज्ञ महोदय। सभागार में अच्छी-खासी भीड़ थी, पर बाद में पता चला कि अधिकतर लोग गीत सुनने आए थे, क्योंकि गीत का कार्यक्रम खत्म होने के बाद सभागार लगभग खाली हो गया था। उसके बाद जो भाषण हुए उसमें उदय प्रकाश का मन नहीं लगा, क्योंकि उसे लगा कि वे लोग मानो किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में कह रहे थे। उसके व्यक्तिगत स्वभाव और चरित्र का जो वर्णन किया जा रहा था, उससे उदय प्रकाश का कोई सामंजस्य नहीं था और उसके लेखन का जो विश्लेषण किया गया वह वैसा बिल्कुल नहीं था। जिन दो लोगों से वह ज्यादा खफा था—उसकी पत्नी और शुभाशीष—वे दोनों इस सभा के मुख्य आकर्षक थे और वक्ताओं के भाषण बड़े आनंद से सुन रहे थे। वह चित्र सस्ते में किसी वर्त्तमान चित्रकार के हाथों तैयार किया गया था। उदय प्रकाश को अहसास हुआ कि वह तथाकथित चित्र भी उसके जैसा बिलकुल नहीं लग रहा था।

कविता की लंबी उम्र

खिड़की से आ रही रोशनी और शोर-शराबे में आँखें खोलीं देवनाथ ने। आजकल सोने-जगने या कुछ और काम करने का कोई निश्चित समय नहीं है उसका। भूख लगने से खाता है, नींद आने पर सोता है, आँखें खुलने पर उठ जाता है। कल रात अच्छी नींद आई थी, सुबह-सुबह अच्छा लग रहा है आज। नीचे की ओर हाथ बढ़ाकर फर्श पर गिरी तकिया उठाई और पास वाले टेबुल से चश्मा उठाकर आँखों पर लगा लिया उसने। अब उस चश्में से साफ दिखाई नहीं देता है उसे। चश्मा को और अपनी आँखों को रुमाल से पोंछने के बाद पुनः चारों ओर देखने पर उसे लगा कि अब चश्में का काँच बदलना ही होगा। इस सिलसिले में उसे याद आया कि और भी कई काम करने हैं, लेकिन उसने उन कामों को मन से निकाल दिया। कोई लाभ नहीं उन सबको याद रखने से। जो कल किया जा सकता है, वह आज क्यों?

हाथ-मुँह धोकर वह टेबुल के पास बैठा था, हरि मास्टर का नौकर उसके सामने गर्म चाय का गिलास रखकर चला गया। अपनी तकदीर के प्रति आभार व्यक्त किया देवनाथ ने, एक ऐसे वत्सल-परिवार को अपने निकट पाने के कारण। वह जब भी नींद से क्यों न जगे, उसके पास चाय पहुँच जाती थी; भूख लगने तक सामने परोसी हुई थाली आ जाती थी।

दीवार की ताक से डिब्बा उठाकर देवनाथ ने उसमें से एक बिस्कुट निकालकर चाय में डुबोया और निकल रहे हल्के भाप के आवर्त्त की ओर देखते हुए तय किया कि आज खाट के नीचे से बक्सा निकालकर उसमें से गर्म कपड़े निकालेगा। काफी दिनों से गुनगुनी ठंड पड़ने लगी है, किंतु करने-करने की सोचते हुए वह इस छोटे से काम को अब तक टालता रहा। बीते कल का अखबार भी अभी तक नहीं पढ़ पाया वह। टेबुल से अखबार उठाकर उस पर नजर डाली।

देश-विदेश की तमाम खबरों में से एक भी खबर उसके मन में कोई प्रतिक्रिया पैदा नहीं कर पाई। अनासक्त रूप से पन्ना पलटते हुए वह लौट गया अभी-अभी देखे किसी फर्नीचर के विज्ञापन की एक पंक्ति की ओर : बैकुंठ समान अहा है वह घर। कुछ देर मनन करने के बाद उसने इसकी दूसरी पंक्ति याद करने की चेष्टा की। नहीं, याद नहीं आ रही। छंद मिल रहा था, जहाँ होता है निरंतर जैसे शब्द योजना में, किंतु उसके पहले क्या था? क्या होती है जहाँ निरंतर? सुंदर साज-सामग्री? उससे पहले प्रथम पंक्ति को फिर से सजाकर लिखेगा, कुछ विराम चिह्नों सहित : बैकुंठ समान, अहा, है वह घर! अहा के बदले यदि वह हाय लिख दे? शब्दों का हेर-फेर करके वह लिखता है : वही घर है अहा बैकुंठ समान? अथवा, वही घर है बस बैकुंठ समान?

वह भी एक समय था जब उसका ही सारा समय बीत जाता था शब्दों के साथ खेल-खेल में। मन लगातार काम करता था शब्दकोश और समानार्थी शब्दकोश की तरह। आनंद मिलता था एक शब्द के बदले कोई दूसरा शब्द जोड़ने में; चार और दो अक्षरों के किस शब्द के बदले तीन अक्षरों वाले दो शब्द उसी जगह बिठाने में। पंक्ति को जोड़कर फिर से तोड़ने में। विराम, कोष्ठक और विस्मय चिह्नों को हेर-फेर करने में। समय कट जाता था तत्सम के बदले तद्भव शब्द ढूँढ़ने में; उत्तेजना होती थी पुराने शब्द के नए रूढ़ि प्रयोग करने में। पंक्ति में अनायास आते चले जा रहे अनुप्रास को चाहकर भी छोड़ने में था एक अनुचित संतोष।

अंत में पृष्ठ प्रति पृष्ठ निकलती जो कविताएँ उसके सामने साकार हो रही थीं, क्या उन्हीं को चाहता था वह? क्या उसके मन में ठीक वही रूप था जो इस वक्त साक्षात् उसके सामने है? सुबह की याद कितना पकड़कर रख पाई है रात के सपने को? पूरी कविता पढ़ते समय कभी वह पूर्णतः संपन्न लगती थी, पर दुबारा पढ़ते समय लगता था शायद कहीं कुछ अनकहा रह गया है। मानो किसी अति सुविन्यस्त मिट्टी की मूर्ति को चक्षुदान की प्रतीक्षा हो; किसी विशेष भाव का अभाव। फिर से शुरू हो जाती थी भावनाओं के राज्य की परिक्रमा, शब्दकल्पद्रुम के वरदान की उन्मुख प्रत्याशा। फिर से कलम उठ जाता था कागज पर। और अब शब्दों से हँसी-खेल नहीं, उनके साथ है शीतल युद्ध का कल-कौशल।

अखबार के बैकुंठ से नजरें हटाकर देवनाथ ने अपनी खाट, टेबुल, कुर्सी की निरंतरता की ओर देखा। उसकी ही तरह वे सब टूटे-हिलगे और जराजीर्ण थे।

हठात् उसे याद आ गई रवींद्रनाथ की प्रसिद्ध आराम केदारा की बात, जबकि कोई सामंजस्य नहीं था उसकी स्थविर कुर्सी का सात समुद्र पार से विदेसिनी का प्रीति उपहार बनकर शांति निकेतन पहुँचे सुखासन का। तब भी बिना ऐसे किसी संदर्भ के देवनाथ को लगा मानो उसकी टूटी हुई कुर्सी का आवेदन भी था गुरुदेव की कुर्सी की भाषा की तरह करुणाकातर, शून्यता की मूक व्यथा व्याप्त करता प्रियविहीन घर।

कविता की असंलग्न पंक्तियाँ उसके मन में घुसकर इसी तरह विचलित करती हैं कभी-कभी। खोए हुए प्रेम की व्यथा की तरह मन की गहराई को छू जाते हैं कुछ शब्दों के ललित मित्राक्ष पल भर के लिए। देवनाथ पुनः सहेज लेता है खुद को; चौकस हो जाता है। वह क्यों अपनी सहज दुनिया को छोड़कर आश्रय तलाशेगा किसी अलीक अति यथार्थवाद में। आज उसकी तबीयत ठीक लग रही है। खिड़की से बाहर दिखाई दे रहा है धूप खिला मौसम। वह धीरे-धीरे चलकर जा सकता है चौराहे तक। नहीं, उसे कोई शिकायत नहीं अपनी ज़िंदगी से। बल्कि यह कहा जा सकता है कि उसका भाग्य उसके प्रति अत्यंत प्रसन्न है। वरना उसे कैसे मिला होता एक ऐसी सुविधाजनक स्थान पर पैतृक मकान, हरि मास्टर जैसा किराएदार, चलकर जाने लायक दूरी पर बाजार? और भी सौभाग्य की बात यह थी कि उसके गाँव के बगल से इस्पात कारखाने के लिए लोहा पत्थर ढोने के लिए बनी सड़क और ट्रक चालकों के लिए चौराहे पर ढाबा और शराब की दुकान।

कपड़े बदलकर वह बाहर जाने को तैयार है, इतने में उस लड़के ने उसके सामने नाश्ता लाकर रख दिया। चौराहे की दुकान में उसे खाने को मिल जाता है, पर मास्टर जी के घर से ठीक समय पर खाना पहुँचने में कभी भी देर नहीं होती। अच्छा ही हुआ; वह क्यों बाजार की चीजें खाए? खाने के बाद हाथ-मुँह धोकर उसने थाली बरामदे में रख दी और खिड़की दरवाजा बंद करके ताला लगाकर बाहर चला आया। गाँव से थोड़ा ही आगे जाने पर हाइवे है : एक अलग ही दुनिया।

सड़क पर यातायात शुरू हो गई है। एक के बाद एक लोहा-पत्थर से लदे ट्रक। याद करना न चाहने के बावजूद पुनः कविता की एक पंक्ति उसके मन में घुस आई प्रागैतिहासिक लौह पत्थर का अंतिम परित्राण। उसकी अगली पंक्ति ठीक से याद नहीं। आदिम समय, शापग्रस्त इत्यादि शब्दों के बाद अंत में है

घात प्रतिघात, इस्पात इस्पात। युग बीत गए इस बात को। उस वक्त ओडिशा के दिलोदिमाग का केंद्र बिंदु बन गया था इस्पात; इस्पात कारखाने की मांग को लेकर गर्म रहता था सामाजिक और राजनीतिक माहौल। 'बंदे उत्कल जननी' गीत के साथ आसानी से मिल जाती थी इस्पात कारखाने की मांग। वह सपना भी साकार हुआ समय आने पर। कारखाना बना। ताल-तमाल से शोभित सुदूर व्याप्त वनभूमि ने नया रूप ले लिया। सड़क किनारे दोनों ओर हरियाली पर अब जमी है लोहे पत्थर की धूल की लाल पर्तें।

शराब की दुकान अभी खुली नहीं है, फिर भी सुबह-सुबह ग्राहक पहुँच गए हैं। संभवतः यहाँ शराब की दुकान होनी ही गैरकानूनी है। शायद पूरी तरह गैरकानूनी हैं इस चौराहे की गहमागहमी में पटरियों में लगी दुकानें। देवनाथ को लगता है मानो यह निठल्ले लोगों के लिए कुछ देर की छावनी मात्र है। आज सुबह अचानक लग गया है यह मेला। कल सुबह जब आएगा यहाँ कुछ भी नहीं होगा; सन्नाटा पसरा होगा लाल माटी के इस खुले मैदान में।

वह रोजाना आकर जिस जगह बेंच पर बैठता है वह खाली थी। चादर के कोने से उसे पोंछकर वह बैठ गया एवं ठंडी हवा का एक झोंका आने पर उसने अपनी देह और भी अच्छी तरह ढक ली। ऊपर से हल्की धूप पड़ रही है खुली जगह पर; बाद में धूप तेज हो जाएगी, किंतु दो गिलास पेट में पड़ते ही फिर कुछ पता नहीं चलेगा। दुकान के चारों ओर टाट से घेरा बना हुआ है, बाहर के लोग यह न देख सकें कि अंदर क्या हो रहा है। झुके हुए छप्पर के नीचे बोतल, गिलास और काँच के अमृतबानों से घिरे बैठे दुकानदार की ओर देवनाथ ने इशारा किया और तुरंत उसके पास एक भरी हुई बोतल व खाली गिलास आ गए। दूसरी बोतल के साथ चना-चबैना आएगा। वह पुराना और रोज का ग्राहक है; उसे कब क्या चाहिए, दुकानदार को मालूम है। शायद गिलास ठीक से धुला नहीं था। उसके चारों ओर कुछ मक्खियाँ गुनगुना रही हैं। उनकी गुनगुनाहट से ताल मिलाकर गिलास, बोतल के काँच झंकृत हो रहे हैं। ये लोग भी प्रतिध्वनित कर रहे हैं बचपन के वर्णबोध के शब्द और ध्वनि से प्रथम परिचय : घंटी बजे टन्-टन्; घंटा बजे ढं-ढं।

तब कविता नहीं, केवल शब्द थे। बचपन में वर्णबोध के शब्द ही थे कविताः कटक नगर, धवल टगर। किसी का किसी से संबंध नहीं। या पूर्णतः अर्थहीनः झुंडभर खंज बैठे-बैठे, बातें करते हैं हँसते-हँसते। कुछ लँगड़े इकट्ठे बैठकर खुशी

से बातचीत कर रहे होंगे, उसी की कल्पना मन में काव्यमय परिवेश बना रहे थे। उसी वक्त कौओं का एक झुंड ऊपर से गुजर गया। उसके हाथ ने खुद ब खुद गिलास को ढक लिया। कौआ कर्कश और असुंदर होता है, लेकिन शुभ समाचार लेकर आता है। मेघ की तरह हंस को दूत बनाकर संदेश भेजा जा सकता है। किंतु काक दूत? वायस दूत? क्या कौवे पर कविता लिखी जा सकती है? काला कौवा, ऊँचे पर्वत पर काँव-काँव करता रहे। एडगर एलन पो? नहीं, अब नहीं। नेवर मोर! नेवर मोर!

और दो-चार लोग आकर आसपास के बेंच पर बैठ चुके हैं। वे लोग आपस में बातें कर रहे हैं, उससे कभी कुछ नहीं कहते। न जाने उसे क्या समझते हैं? सिर्फ एक बार किसी ने उसके पास जाकर पूछा था, साहब आप गीत लिखते हैं ना? पहली बार ठीक से सुन नहीं सका, समझ नहीं सका देवनाथ; उसकी ओर सवाल भरी नजर से देखा। वह आदमी इस बार उसके कुछ करीब जाकर बोला, गीत। आप शायद गीत लिखते हैं ना? कुछ आश्चर्य और खुश हुआ देवनाथ और सिर हिलाकर हामी भरी। तुमने एक बार कविता लिख ली तो समझो कवि की मुहर लग गई, भले ही कविता से तुम्हारा कोई लेना-देना न हो सालों से। उसे खुद ही को याद नहीं उसने अपनी अंतिम कविता कब लिखी थी। मुझे दो पंक्तियों का गीत चाहिए, ट्रक के डाले पर लिखने के लिए, बड़ी सहजता से कहा उस आदमी ने। उसे याद आया कि जब कॉलेज में पढ़ता था, व्यक्तिगत फरमाइशें आया करती थीं उसके पास शादी के गीत लिखने के लिए। शादी के समय वर-कन्या के लिए स्वस्तिवाचक गीत रंगीन कागजों पर छपवाकर अतिथियों में बाँटने की प्रथा थी उस समय। वह कभी-कभी लिख दिया करता था कुछ पंक्तियाँ खीझकर, बिना आयास किए; पर उन गीतों की खूब सराहना होती थी, ऐसा उसके मित्र बताया करते थे। ट्रकवाले ने कहा, पर गीत धाँसू होना चाहिए, ताकि फिल्मी गीत को टक्कर दे सके।

न जाने कितने सालों बाद किसी ने उससे कुछ लिखने को कहा था। एक समय वह भी था जब संपादकों से बार-बार तगादा आता था, गायक उसके नाक में दम किए रहते थे गीत की फरमाइश करके। मानो ये हों उसके पिछले जन्म की बातें। उसकी हाँ सुनने के बाद ट्रकवाले ने दुकान के अंदर जाकर एक और बोतल लाकर उसके सामने रख दी। फ़रमाइश की गई कविता के लिए अग्रिम दक्षिणा। उसकी बोतल से अपने गिलास में उड़ेलकर एक घूँट पीने के बाद

देवनाथ समझ गया कि उसने अपने ऊपर एक बड़ी ज़िम्मेवारी ले ली है। दो पंक्तियों का एक सस्ता मित्राक्षरी पद लिखने का काम उस पर हावी हो गया। खुद को तुरंत ऋणमुक्त करने के लिए उसने मन ही मन दो पंक्तियों का तराना सोच लिया : देश नहीं विदेश नहीं, आरंभ नहीं अंत नहीं। किंतु न तो इसके भाव, न भाषा और ना ही छंद पसंद आए उसे। इसके अलावा हर ट्रक के पीछे ऐसी ही तो बातें लिखी होती हैं।

उसके बाद कुछ दिनों तक वह जुट गया उन दो पंक्तियों को सँवारने में, या फिर नये सिरे से दो पंक्तियाँ लिखने में। कागज-कलम निकालकर टेबुल पर रखने के बाद कागज पर सिर्फ कुछ शब्द यहाँ-वहाँ लिख लिए गए, किंतु मेल खाती पंक्तियाँ नहीं बन पाईं। वह मन ही मन मनाने लगा कि फिर कभी उस ट्रकवाले से मुलाकात न हो। लेकिन कभी-कभार उस आदमी से शराब के ठेके पर देवनाथ की मुलाकात हो जाती थी। भले ही उसने कभी भी देवनाथ से गीत के बारे में नहीं पूछा, देवनाथ भूल नहीं पाता था उस आदमी का दिया हुआ उपहार। एक बार यों ही आमने-सामने मुलाकात हो जाने पर देवनाथ ने अपनी जेब से एक छोटा-सा नोटबुक और कलम निकालकर टेबुल पर रख दिया उसके सामने यह दिखाने के लिए कि वह उसकी फरमाइश भूला नहीं है। वह आदमी देवनाथ की ओर देखकर मुस्कराया, पर उससे आगे बात करने की कोई चेष्टा नहीं की।

देवनाथ को भय होता कि किसी दिन वह ट्रकवाला अपनी शराब की अग्रिम बोतल के बदले कहीं दो पंक्तियों की कविता न मांग ले। एक पूरी कविता के बदले शराब की कुछ बोतलें मिल सकती हैं, मन में सोचने की चेष्टा की देवनाथ ने। किंतु वह व्यक्ति फिर दिखाई नहीं दिया। हालाँकि उसकी दो पंक्तियाँ लिखी नहीं जा सकी थीं, वह मन ही मन ढूँढ़ रहा था उस आदमी को जो उसके कवि होने का एक जीवंत प्रमाण था। वह व्यक्ति फिर नहीं आया। कितना कुछ बदल जाता है कुछ ही दिनों में। शराब के ठेके का छपरैल घर तोड़कर ईंट की जुड़ाई हो चुकी थी। कुर्सी टेबुल कुछ साफ-सुथरे और कीमती थे। वह आदमी शायद देश छोड़कर कहीं विदेश चला गया है, किसी नई शुरुआत के लिए। यह भी हो सकता है कि किसी दुर्घटना में उसके जीवन का अंत हो चुका हो इस बीच।

देवनाथ की सरल जीवन-यात्रा में यह सामान्य व्यतिक्रम भी पुरानी बात हो चुकी है, उसके बचपन की तरह। गाँव का वह स्वच्छंद शैशव और कैशोर्य। जो अब याद आते हैं। वे सारे सुख-दुख, आसपास के मेला-महोत्सव जितने याद

नहीं आते, उससे कहीं अधिक याद आता है, स्वाधीनता संग्रामियों का हाथों में तिरंगा लिए गीत गाते हुए गाँव की सड़कों पर कतारों में चलने का दृश्य। गाँधी के नाम पर जब है विश्वास तो झंडे के नीचे आओ रे, मुक्ति गंगा की लहर बह आई है जल्दी लगाओ छलांग रे। इसमें काव्यात्मकता भले ही न हो, पर थी उत्तेजना। संगीतात्मकता भले ही न हो, था सम्मिलित स्वर में गाने का एक अद्‌भुत उन्माद। कविता जहाँ थी झंडे की पाद-टिप्पणी। उसके बाद आया, दो पैसे में बिकने वाला एक पन्ने के कागज पर इंकलाब जिंदाबाद का गीत : बारह साल के बालक ने गोली के सामने ताना है सीना रे। कविता थी गीत, पढ़ना था सस्वर गाना, अर्थ के पास पहुँचने का रास्ता था केवल मनन नहीं, जुलूस। उसके बाद आया एक नए युग का ज्वलंत हस्ताक्षर लिए, नहीं बंधु नहीं यह है चिता। आगामी जीवन में जिस तरह डैफोडिल्स के सुनहरे सम्मोहन से उसे खींचते हुए बाहर निकाला था। अलफ्रेड प्रूफरक ने।

कॉलेज में पहले इलियट पढ़ते समय सीने में जो हलचल मच जाती थी उस बारे में सोचने पर अब भी सिहरन होने लगती है। पागल-सा वह ढूँढ़-ढूँढ़कर विदेशी कविताएँ पढ़ा करता था। प्रूफरक की कविता के शीर्षक के नीचे तिरछी लिखावट में दांते की जो छह पंक्तियाँ थीं, उसका अर्थ भी उसने ढूँढ़ निकाला था उस वक्त। क्लास के बाद वह अध्यापक के साथ कविता के बारे में चर्चा किया करता था। वह जानने की कोशिश करता था कि कविताओं में जो संकेत, आभास और परोक्ष उल्लेख होते हैं उनके अर्थ और संगति क्या है। कविता की हर पंक्ति, हर शब्द मानो उसे समझ आनी चाहिए। अध्यापक उसे समझाते, कोई रचना पढ़ते समय जिन विदेशी संदर्भों, कठिन शब्दों या जटिल अभिव्यक्तियों से आप टकराते हैं, उन्हें एक ओर रखकर रचना को पढ़ो; ऐसा करने पर ही तुम्हें कविता का आनंद मिलेगा। देवनाथ का मन नहीं समझा था। कैसे वह अलग रख दे कविता से कुछ अंश? जिन जगहों पर हम टकराते हैं, वही तो कविता है! उसी अर्थहीनता में ही तो अर्थमय हो उठती है कविता।

स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद वह गाँव से शहर आकर ममाने में रहने लगा। रहने के लिए उसे घर में जो छोटी-सी जगह दी गई थी, वहाँ अपने कागज-पत्र इकट्ठा करके उसने बना ली थी अपनी एक अलग दुनिया। दूसरे लड़कों की तरह उसका मन खेलकूद या सिनेमा में नहीं लगता था; कोई किताब मिल जाती तो उसे लेकर घंटों बैठ जाता। शहर की सारी लाइब्रेरी वह जानता

था और उसके सारे दोस्त साहित्य में रुचि रखने वाले युवक थे। शांत, विनयी और भद्र स्वभाव का होने की वजह से वह भले ही किसी से अधिक संपर्क नहीं रखता था, लेकिन घर पर सभी लोग उसे चाहते थे और किताबों के साथ सारा समय बिताने को लेकर कोई उससे कुछ कहता नहीं था।

स्कूल के दिनों में उसने जो कविताएँ लिखी थीं, वे एक कॉपी में इकट्ठी थीं। शहर आने के बाद नए-नए और खासकर अंग्रेजी कवियों को पढ़ने के बाद वह अलग तरीके की कविताएँ लिखने लगा। अपनी पुरानी कॉपी की कविताएँ पढ़ते समय उसे वे सब अति नीरस, सामान्य और घिसीपिटी लगीं। खीझकर उसने उस कॉपी को फाड़कर फेंक दिया और एक नई कॉपी खरीदकर उसमें लिखने लगा। वह दो पंक्तियाँ लिखता। उन्हें काट देता, फिर और कुछ लिखता। कभी-कभी एक बार में दस पंक्तियाँ तो कभी एक पंक्ति तक नहीं सूझती थी। पर वह हार नहीं मानता था; वह जुटा रहता था कविता पूरी न होने तक। अब उसने पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ भेजनी शुरू कर दी थी। और एक दिन उसकी एक कविता किसी प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका में छप गई।

कविता से परे उसका व्यक्तिगत जीवन अति सीमित था। वह जानता था कि कॉलेज की पढ़ाई खत्म होने पर उसे कहीं नौकरी करके घर-गृहस्थी बसानी होगी। ऐसा ही हुआ भी। छोटे सरकारी दफ्तर में उसे एक छोटी-सी नौकरी मिल गई; सँकरी-सी गली में एक कमरा लेकर उसने शुरू कर दिया अपना एक छोटा-सा जीवन। उसकी पत्नी शांत स्वभाव की थी और उसकी उच्च अभिलाषा नहीं थी। उसकी कम तनख्वाह में गुजर-बसर हो जाती थी। उनकी तीन लोगों वाले परिवार की—हाँ, यथासमय उसके पुत्र का जन्म हुआ था। देवनाथ संतुष्ट था अपने इस सीमित जीवन से। क्योंकि इस सामाजिक जीविका और जीवनयापन की सांसारिकता से परे उसका एक वृहत्तर विश्वभुवन भी था; कविता का। या फिर ठीक-ठाक कहा जाए तो इस दुनिया से परे वह होता था एक अनंत अखिल ब्रह्मांड में, क्योंकि उस समय वह हो जाता था रवि ठाकुर की कविता का भक्त।

बहरहाल उस अपार दूसरी दुनिया से कवि को रोजाना लौट आना पड़ता है अपने दो कमरों के मकान में। जाना पड़ता है सौदा लेने बाजार, बच्चों का ध्यान रखना पड़ता है, बंधु-बांधव, टोला पड़ोसियों की सामाजिक मांगे पूरी करनी पड़ती हैं। ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो जरा भी उसके मन के अनुकूल नहीं होतीं। ऐसी तमाम बातें जिन्हें आधुनिक कवि के लेखन का आधार कहकर मजाक उड़ाते हुए

कहा था रवींद्रनाथ ने : टोले की शराब की दुकान, पति-पत्नी के दोनों वक्त की नोकझोक, बिना ढक्कन की खाली बोतल, दाँत टूटा कंघी, साबुन के आखिरी बचे खुचे पतले-पतले टुकड़े इत्यादि। देवनाथ भी जानता था कि ये सब कविता के लिए अयोग्य हैं। इसीलिए उसने खुद को घर-गृहस्थी से यथासंभव दूर ही रखा। गनीमत थी कि उसकी पत्नी ने संभाल ली सारी जिम्मेवारी। देवनाथ अपने ही घर में बन गया पेइंग गेस्ट। वह पहली तारीख को पत्नी के हाथ में अपनी तनख्वाह देकर निश्चिंत हो जाता था महीने भर के लिए।

ऐसी ही शुरुआत करके वह हमेशा के लिए पेइंग गेस्ट बनकर रह गया। गाँव लौटने के बाद पहले उसने खाना बनाने के लिए एक आदमी रखा था। लेकिन जब से हरि मास्टर उसके घर में किराये पर रहने लगे, देवनाथ ने उनसे कोई पैसा नहीं लिया। बल्कि वह हरि मास्टर को कुछ और रुपए देना चाहता था, किंतु उन्होंने साफ-साफ मना कर दिया लेने से।

इस वक्त शराब की दुकान के सामने खुले में हल्की धूप में बैठकर गिलास से थोड़ी-थोड़ी पीते समय वह अपनी गृहस्थी की पिछली बातें नहीं सोच पा रहा था। उसे उसके व्यक्तिगत जीवन की स्मृतियाँ जितनी याद नहीं आ रही थीं, उतनी याद आ रही थीं कविता की पंक्तियाँ। ऐसे समय मानो उसके मन पर छाये रहते थे रवि ठाकुर। वह आसमान की ओर ताकते हुए ढूँढ़ रहा था प्रथम दिवस का सूर्य और दिवस के आखिरी सूर्य के बीच का जिज्ञासु नक्षत्र, जिस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। एक बार गुरुदेव की याद आ जाने पर मन खुल जाता है। सब कुछ लगने लग जाता है सामान्य से ऊपर; महामानव का सागर, अंतर को विकसित करता अंतरतम, जगत के पारावार किनारे खेलता मानव शिशु!

देवनाथ निराश हो गया था जब गुरुदेव ने अंतिम समय में कविताओं में लिखा कि रहे कुत्तों, मरे चूहों, कढ़ाई के खौलते तेल में कउ मछलियों, गंदी जुराबों और वीभत्स मक्खियों के समूह के बारे में। एक समय जो सोचते थे कि भाप से रेलगाड़ी के चलने में कोई खास बात नहीं है और इसीलिए यह कविता के योग्य नहीं है, उसी विश्व कवि ने आगे चलकर लिखी; रात की गाड़ी और स्टेशन जैसी कविता। किंतु देवनाथ रुक गया था विश्वदर्शन के स्तर पर। जीवन और कविता से सारे नीरस गद्य निकालकर वह डूबा रहा प्रेम, समय, मृत्यु, अमरत्व, संबंध जैसे अपार्थिव तत्वों में। कविता लिखने में उसने अपने जीवन का पूरा सार निचोड़ दिया।

उसे स्वीकृति और सम्मान भी मिले इसके लिए। कवि होने के प्रभामंडल का उसने निश्चित ही भोग किया था। हालाँकि उसने एक छोटी-सी नौकरी की थी, पर उसका सामाजिक सम्मान था उससे कहीं ऊँचा। पत्र-पत्रिकाओं के संपादक उसे चाहते थे। कविता-पाठ के लिए उसके पास निमंत्रण आते थे। उसके मित्र थे लेखक और विदग्ध पाठक। वह मानो आलंकारिक लिखने वाले कवि की दैनंदिन जीवन सारणी के अनुसार जी रहा था : कवि छह घंटा सोएगा, सुबह उठकर प्रातःकृत्य और नित्यकर्म आदि खत्म करके तीन घंटे पढ़ेगा, तीन घंटे लिखेगा, पिछले दिन के लेखन में संशोधन करेगा, अपराह्न में साहित्यिक मित्रों की मदद से अपनी रचना की चर्चा में भाग लेगा और उसके बाद उसमें आवश्यक सुधार करेगा। जीवन जीने की उस प्रणाली में कुछ ही वर्षों में देवनाथ के दो कविता-संग्रह प्रकाशित हो गए, कविता संचयिता में उसकी कविताएं शामिल की गईं और अन्य भाषाओं में उसके अनुवाद प्रकाशित हुए। एक समानांतर प्रवाह में उसके बेटे की उम्र बढ़ी, उसकी पत्नी अधिक रोगी, धार्मिक और चिड़चिड़े स्वभाव की हो गई। परिवार को लेकर और भी ज्यादा गैरजिम्मेदार हो गया देवनाथ।

धूप थोड़ी और बढ़ जाने पर वह बरामदे में चला जाएगा। पर अभी यहीं ठीक है। समय बढ़ने की वजह से इस वक्त ग्राहकों की संख्या भी बढ़ गई है। यहाँ पर वह एक पहचाना चेहरा है; शायद सभी जानते हैं कि वह पढ़ा-लिखा आदमी है। इसीलिए लोग यहाँ उसका लिहाज करते हैं, उसके लिए निश्चित स्थान पर बैठने और कोई नहीं आता। गिलास उठाकर उसने एक छोटी-सी घूँट पी। यहाँ ज्यादा समय तक बैठने के कारण वह धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा पीता है। सभी उसे गैरजिम्मेदार समझते हैं; लेकिन वह पीने को लेकर चौकस है। एक बार अधिक पीकर घर लौटते समय रास्ते में गिर गया था। ऐसी हालत में वह रिक्शा ले लेता है, किंतु काफी दिनों से वह घर से बाहर नहीं निकल पाया था। हरी मास्टर जी उसके लिए परेशान हुए। उसे दो बार पास के शहर वाले अस्पताल ले गए, उसे दवा दिला लाए, खाने की व्यवस्था की।

उसी दिन से सतर्क हो गया देवनाथ। दूसरों को परेशान करने का कोई अधिकार नहीं उसे। अपने मन में दुनियाभर की चाहे जितनी विशृंखलता अव्यवस्थाएँ क्यों न हों, बाहरी दुनिया में वह सतर्क रहेगा, अपने स्वास्थ्य का यथासंभव ध्यान रखकर, दूसरों को सम्मान देकर। ऐसा वह अवश्य कर सकता है, भले ही उसका मन कहीं भी डोलता फिरे। परंतु मन पर लगाम नहीं है। इस क्षण मानों हठात् दो पंक्तियाँ उसके मस्तिष्क में जबरत घुसती चली आ

रही हैं : नक्षत्र-लोक से जो है बाहर, उज्ज्वल प्रकाश है उसका सारा। जीवन के सृजनशील समय में वह इन शब्दों को लेकर एक पूरी कविता लिख सकता था। दोनों पंक्तियों को अलग-अलग रूप से सजाकर, उसके आगे-पीछे और भी शब्द जोड़कर अपनी चिंता को एक निर्दिष्ट उपसंहार की ओर खींच ले जा सकता था एक स्वयंसंपूर्ण रूपअलंकृत शेष पंक्ति में। कागज पर एक छमछम संबद्ध कविता आकर खड़ी हो जाती उसके सामने, अपनी पर्याप्ति की स्पर्धा से। इस वक्त सिर्फ उन्हीं उर्वर दिनों की मीठी-मीठी यादें ही रह गई हैं।

जिस तरह एक दिन किसी ने उससे कहा कि एक जाने-माने आलोचक ने उसकी कविताओं की प्रशंसा की है किसी लेख में। या किसी दूसरे लेखक ने अपने उपन्यास के अग्रलेख के रूप में उद्धृत किया है उसकी कविता की चार पंक्तियाँ। यहाँ तक कि एक बार यह भी पता चला कि किसी कहानीकार ने उस पर एक पूरी कहानी लिखी है। उस कहानी को लाकर पढ़ा देवनाथ ने। वह एक पागल कवि पर थी। देवनाथ को उसके दोस्त क्या पागल समझते थे; इसीलिए इस कहानी में उसके जीवन की समानता देख पा रहे थे। हालाँकि कहानी के कवि का नाम उसके नाम से मिलता जुलता था, देवनाथ को और कोई एकरूपता नहीं मिली उस आदमी के साथ। उसकी कविताएँ अलग तरह की थीं, काल्पनिक कवि कुँआरा था जबकि वह गृहस्थी वाला। कविता की परिभाषा भी दोनों की अलग-अलग थी। पर इतने तरह की नकारात्मक तर्कों के बावजूद कभी-कभी उसे लगता था कि कहानी के नायक भवनाथ से मानों उसकी कोई गहरी आत्मीयता है।

उसे याद आया कि काफी तलाशने के बाद कुसुम ने ही उसे वह पत्रिका दी थी जिसमें वह कहानी छपी थी। कुसुम की याद आने पर उसके सीने में आदर और स्नेह की फलगू उछल पड़ती है। पत्नी के बारे में सोचने पर मन में उसकी तसवीर नहीं उभरती, उसका नाम होंठों पर नहीं आता। किंतु कुसुम की याद आते ही मन में जप करने की तरह कुसुम-कुसुम-कुसुम कहने की इच्छा होती है। आँखें बंद करने पर उसका वही पुराना चेहरा दिखने लग जाता है। किसी लड़की को देखने से उसके चेहरे से कुसुम की तुलना करने की इच्छा होती है। कुसुम याद आने पर कविता याद आ जाती है।

वह चाहता था एक सहज आम जीवन जीना, जो संभव नहीं हुआ। कवि कहने से लोग समझते हैं उच्छृंखल बोहेमियन जीवन जीने वाला एक रोमांटिक जीव, जिससे समाज और कुछ भी उम्मीद नहीं करता सिवाय छंद में

बँधी कुछ काल्पनिक पंक्तियों के। पर देवनाथ स्वयं ऐसा स्वप्नविलासी नहीं था। वह आम लोगों-सा जीवन जी रहा था, दफ्तर का काम ठीक से करता था, समय का पाबंद और एकपत्नीव्रता था। यदि वह समाज से कटा हुआ था, उसका कारण यह था कि वह अपना सारा बचा हुआ समय लिखने-पढ़ने में बिताता था, बिना किसी से कोई संपर्क रखे। उसने खुद को वंचित कर रखा था खेल, सिनेमा, मेला, दोस्त-यार हँसी-मजाक से। कहा जाए तो उसने खुद ही खुद को समाज से अलग कर रखा था कविता के लिए। किंतु जिस कविता के लिए उसने सबकुछ छोड़ दिया था, अंत में वह कविता ही उसे छोड़कर चली गई। फिर लौटकर नहीं आई।

धूप तेज होने लगी थी, उसी वक्त एक हल्का बादल आकाश में बह गया। खुले में बैठना अब कष्टदायी नहीं था। वक्त क्या हुआ होगा, यह अंदाजा लगाने की कोशिश करने लगा देवनाथ। आजकल वह कलाई में घड़ी नहीं बाँधता। क्या हो जाएगा सही समय जानकर? बगलवाले टेबुल पर जब लोग ढाबा से खाना लाकर खाने बैठ जाते हैं, वह समझ जाता है कि खाने का वक्त हो गया है। कमरे में उसके लिए खाना रखा होगा। पहले जब वह खाने के समय घर नहीं पहुँचता था, वे लोग चिंतित हो जाते थे; अब जान गए हैं कि वह ढाबा में खाकर शाम को ही लौटेगा। पहचान वाला रिक्शाचालक उस वक्त खाली होने पर उसे घर जाने के लिए बुला लेता था। आज शायद कहीं और निकल गया है। सिर के ऊपर आकाश की ओर देखकर देवनाथ ने सोचा कि अब घर न जाकर यहीं रुक जाएगा। सुबह से एक ही जगह पर बैठे-बैठे वह उकता गया था; उसने तय किया कि उधर घेरे में जो छोटी-छोटी घास है, वहीं जाकर बैठेगा। हाथ में गिलास और चादर संभालते हुए वह वहाँ गया और बैठना कैसा, घास पर आराम से लेट गया।

वह जगह उसे अच्छी लगती थी, मानो उस पुराने रेडियो स्टेशन के पीछे वाली गली में शराबखाने के किनारे छोटी-छोटी घास। आज का बड़ा शहर तब था छोटे-छोटे गाँवों का समूह; एक टूटा मकान था गली में। ऐसी ही किसी जगह देसी शराब बना करती थी और वे लोग साथ मिलकर वहाँ पहुँच जाते थे काम खत्म होने पर।

उन दिनों वहाँ काँच की बोतलें और गिलास नहीं होते थे। हाँड़ी में शराब लाकर बेची जाती थी मिट्टी के कुल्हड़ों में। वे लोग हाथ में एक-एक कुल्हड़ लेकर घास पर बैठ जाते थे; मदहोशी में बातें करते हुए पूरा दिन बीत जाता था।

देवनाथ ने सपने में भी नहीं सोचा था कि वह कभी शराब पीएगा या कविता लिखना छोड़कर सिनेमा के लिए गीत लिखेगा। बीच-बीच में वह पुरानी बातें याद करता, किंतु तय नहीं कर पाता कि क्या वह इस रूपांतरण को टाल सकता था? साहित्य के आदि पर्व में गीत ही था, गीतकार ही थे कवि। बाद में दो अलग धाराएँ बन गईं। जिन लोगों ने सिर्फ गीत लिखे, उन्हें फिर कवि का सम्मान नहीं मिला। इसलिए जब कोई रेडियो गायक उसके पास जाकर गीत लिखने का अनुरोध करता, वह कुछ अपमानित महसूस करता। शायद इस बारे में उसने साफ-साफ कुछ कह दिया। गायक ने उससे कहा, आप तो खुद को रवींद्र भक्त कहते हैं; गीतांजलि क्या है? इस प्रश्न ने उलझन में डाल दिया देवनाथ को। फिर भी उसने तर्क करने-सा कहा, गीतांजलि की अधिकांश कविताओं को अभी तक सुर नहीं दिया गया है और वे सब कविताएँ गीतिवितान में स्थान पाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

उस दिन वे गायक लौट गए, लेकिन जब उससे उस समय के सबसे प्रसिद्ध, सबसे सफल और लोकप्रिय गायक ने आकर गीत मांगा, और कहा कि अगर उन्होंने गीत लिखकर नहीं दिया तो वे उसकी कविता को ही सुर लगाकर गाएँगे, वह मना नहीं कर सका। उनकी आवश्यकतानुसार उनके द्वारा वांछित पंक्तियों की लंबाई, पदों के मेल और शब्दों की अनुमानित संख्या इत्यादि इत्यादि का हिसाब लगाकर देवनाथ ने अपना प्रथम गीत लिखा। उसने सोचा था वह उसका प्रथम और आखिरी फरमाइशी गीत है। किंतु उसके दुर्भाग्य से संगीत निर्देशक के सुर और गायक के कंठ से वह एक अति सुंदर गीत बनकर निकला एवं कुछ ही दिनों में उसका वह छिछले प्रेमवाला गीत सर्वजनविदित होकर रास्ता-घाट में सुनने को मिला।

यह था देवनाथ के लिए एक विस्मयपूर्ण अनुभव। कितने लोग पढ़ते हैं कविता? लेकिन गीत सबके होंठों पर होता है। शब्दों के अर्थ भले ही खो जाएँ, सुर कम से कम याद रह जाते हैं। जब गीत के लिए और भी मांगें आईं, कविता छोड़कर गीत लिखने में मन लगाया देवनाथ ने। गीत लिखने में एक अलग तरीके का उत्साह होता था। शब्दों को मनाना पड़ता था कविता में, जबकि गीत में उन्हें बाध्य करना पड़ता था। कविता में जो बात कहनी होती थी, उन्हें कई तरीकों से ढक लिया जाता था, जिससे कि पाठक उसे दुबारा पढ़कर उसमें से अपने अनुसार अर्थ निकाल ले। गीत होता था श्रोता से सीधे-सीधे बातचीत; प्रथम उच्चारण से ही मानो छू लेगा उसे। कविता के अवलंबन होते हैं केवल

शब्द; गीत में शब्द का मददगार होता है सुर, अथवा सुर का सहायक शब्द। कई बार संगीतकार उसे गुनगुनाते हुए एक स्वर सुनाता था, देवनाथ की जिम्मेदारी थी उस सुर को मिलाकर एक गीत लिखना।

कविता होती है एकांत का काम : अकेले में बैठकर खुद से खुद ही बातचीत और समझौता करके कागज पर लिखी जाती है कविता। किंतु गीत एक सामूहिक चीज है; गीतकार, गायक और संगीतकार मिलकर वह अंतिम चीज बनाते हैं जो श्रोता तक पहुँचती है। इसीलिए इतने दिनों तक एकाकी रहने वाले देवनाथ को एक वृहत्तर परिवार में घुसना पड़ा। यह दायरा बढ़ते-बढ़ते जा पहुँचा रेडियो से रेकॉर्ड कंपनी और अंततः सिनेमा तक।

इसके साथ एक और समस्या भी आ गई। समय को व्यवस्थित करना। पहले वह सुबह बैठकर पढ़ता था, लिखता था, दफ्तर का समय होने पर कॉपी किताब बंद करके घर से निकल जाता था। लेकिन गीत की मांग थी अलग तरह की; कभी-कभी तुरंत चाहिए और कभी तो उसमें पुनः फेरबदल करना पड़ता था। गीत के लिए दूसरों के समय के साथ तालमेल करना पड़ता था। लेकिन धीरे-धीरे देवनाथ को इस संगीत की दुनिया में रहना बुरा नहीं लगा। इस दुनिया के अधिकांश लोग देर रात तक जगकर सुबह देर से उठते थे। उनसे अधिकतर दफ्तर के समय में ही मिलना होता था देवनाथ को। अब तक कभी भी अपने काम के प्रति लापरवाही नहीं करने वाला देवनाथ आजकल दफ्तर के समय में ही बाहर चला जाता था। इसके लिए दफ्तर ने उसे आगाह भी किया था। अंत में अपने काम के प्रति लापरवाही बरतने के लिए उससे कैफियत भी मांगी गई।

जब उसने यह बात अपने मित्रों से बताई, उनमें से एक ने कहा, अब आप वह सस्ती-सी नौकरी छोड़ दें। देखिएगा, गीत लिखकर आप उससे अधिक कमाएँगे। वास्तव में गीत से आज कल कुछ-कुछ पैसे भी मिलते थे। स्वीकृति प्राप्त गीतकार के रूप में उसके जितने गीत प्रसारित होते थे, उसके लिए उसे पैसे भी मिलते थे। रेकॉर्ड कंपनी का भुगतान कुछ बुरा नहीं था। उसके ऑफिस की समस्या के बारे में सुनकर उसके एक-दूसरे मित्र ने कहा, आप नौकरी क्यों छोड़ेंगे? सरकारी नौकरी है, आप काम कीजिए या न कीजिए, आपका कुछ नहीं होगा। वे लोग आपको पत्र लिखते रहेंगे। इस तरह लिखते-लिखते आपके रिटायरमेंट का समय आ जाएगा। आप अपनी पेंशन क्यों गँवाएंगे?

देवनाथ को यह उपदेश ठीक लगा। वह ऑफिस में दूसरों को देखता था कि नौकरी की शुरुआत से रत्तीभर भी काम न करके महीने के महीने रुपए खींच लेते थे। जबकि उसने कभी भी अपने काम के प्रति लापरवाही नहीं बरती थी। बीच-बीच में दफ्तर से बाहर चले जाने पर भी लौटकर वह अपना काम पूरा कर लेता था। हालाँकि वह भी अधिक दिनों तक संभव नहीं हुआ। उसका मुख्य कारण था उसकी शराब की लत।

कलाकार एक उच्छृंखल जीवन जिएगा, यह नियम था विशेष रूप से संगीत साधकों के लिए। सिर्फ पोशाक आदि के लिए नहीं, आचार-व्यवहार में भी उन्हें वही खुलापन दिखाना पड़ता था, और उसका एक अंग था शराब पीना। गीतकार के रूप में हालाँकि देवनाथ को हमेशा मौजूद नहीं रहना पड़ता था ऐसे समूह में, पर अचानक कब जरूरत पड़ जाए, इस बहाने उसने खुद को इस समूह में शामिल कर लिया था। रेडियो स्टेशन के एक परित्यक्त इलाके में हारमोनियम की आवाज के बीच पूरे दिन उनकी आवाजाही लगी रहती थी और फुरसत पाने पर वे लोग चले जाते थे पास वाली चाय की दुकान पर, या अधिकांश समय निकट ही शराबखाने में। शुरू-शुरू में देवनाथ उनके साथ चाय की दुकान पर जाता था। उसके बाद अपना चाय का गिलास लिए हुए उनके साथ-साथ शराबखाने तक चला गया। अंत में एक दिन शराब चखने के बाद थू-थू किया।

इसी क्रम में शराब के कुछ-कुछ घूँट पीने के बाद अब वह उसे खराब नहीं लगती थी और मन-मस्तिष्क पर उसका जो सुखद प्रभाव पड़ा, देवनाथ उसका भक्त बन गया। इस वक्त घास पर लेटे होने के समय ये सारी बातें उसे याद आ रही थीं। आँखें बंद करने पर अतीत, वर्तमान और भविष्य अलग नहीं रहते, सब मिलकर धुँधले हो जाते हैं। उस जैसा सीमित स्वभाव, समय के साथ चलने वाला, समाज के प्रति सचेत रहने वाला व्यक्ति भी कभी शराबी बन जाएगा और समाज से कट जाएगा, इस बात की कभी कल्पना तक नहीं कर सकता था देवनाथ। किंतु खूब धीरे-धीरे यह रूपांतरण हुआ था उसके जीवन में।

इसके साथ ही जो एक अन्य परिवर्तन हुआ था, वह है पाठक और आलोचकों की नजरों में उसके कवि से गीतकार के रूप में पदावनति। गीत पत्र-पत्रिकाओं में या पुस्तक के रूप में न छपने की वजह से उसके कोई पाठक-वर्ग नहीं था, थे सिर्फ श्रोता। इसके अलावा नए-नए गीत जल्दी-जल्दी बाजार में आने के कारण एक ऐसी धारणा बन जाती थी कि एक ओर जहाँ कविता शाश्वत होती है, वहीं दूसरी ओर गीत एक सामयिक चमक है, जिसकी आयु महज आठ दिन होती

है। इस बात में कोई तर्क नहीं है, जिस तरह कोई तर्क नहीं है यह कहने में कि लोकप्रिय साहित्य उत्तम साहित्य नहीं है। जब देवनाथ ने पत्र-पत्रिकाओं में छपने के लिए कविता के बदले गीत भेजे, संपादक उन्हें छापने से हिचकने लगे। गीतों की किताब छपवाने की संभावना नहीं थी। उसने मान लिया कि अब कविता उसके लिए नहीं है, वह एक गीतकार ही है।

यह निर्णय लेने के बावजूद उसे जो कष्ट दे रहा था वह यह था कि वह किस विषय में लिखे, वह अक्सर खुद पर निर्भर नहीं करता था। सिनेमावाले उसे दृश्य समझा देते थे, श्मशान से लौटकर नायक एकाकी झरना किनारे बैठा है, या नायिका अभी-अभी लौटी है स्टेशन अपने गुप्त प्रेमी को विदा करके, या दो लड़कियाँ गाने में एक-दूसरे की बात काट रही हैं, इत्यादि। उसे इस परिस्थिति के लिए गीत लिखना होगा। इस तरह उसने रेडियो, रिकॉर्ड कंपनी और सिनेमा के लिए ढेरों गीत लिखे और उनमें से कई लोकप्रिय भी हुए। कवि के तौर पर वह जितना नहीं जाना जाता था, उससे कहीं अधिक गीतकार के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

किंतु एक बार नियम से समझौता कर लेने के बाद फिर सीमा में बँधकर नहीं रहा जाता। कविता को छोड़कर गीत लिखने के बाद उसे अनुरोध आया सिनेमा के संवाद लिखने के लिए। वह मना करना चाहता था, लेकिन फिल्म निर्माता ने कहा कि इस काम की जिम्मेवारी जिस सज्जन की थी, वे बिना बताए कहीं चले गए और यदि देवनाथ ने उसकी मदद नहीं की तो उसे बहुत नुकसान उठाना पड़ेगा। वह इस काम के लिए अच्छा भुगतान करने को भी राजी था एवं इच्छा न होने के बावजूद देवनाथ ने उसके लिए हामी भर दी और रुपए पाकर खुश हुआ।

बात इतने में ही खत्म नहीं हो गई। उसे निर्माता से अनुरोध आया अश्लील गीत लिखने का। हालाँकि उसने देवनाथ को सीधे-सीधे अश्लील वाली बात नहीं कही थी, कहा था कि गीत द्वैर्थक हो, जिससे कि शिक्षित लोगों के साथ-साथ आम आदमी भी उसका मज़ा ले सकें। लेकिन उसने देवनाथ को जो उदाहरण दिए, वे गीत ऊपर से ठीक-ठाक लगने पर भी उसके अंदर से हर पंक्ति में निकल रहा था नारी के अंग-प्रत्यंगों का अशालीन वर्णन और एक-एक क्रियापद में यौन संबंध की कुत्सित सूचना। देवनाथ ने पहले मना कर दिया। किंतु काफी कहने के बावजूद उसने जो गीत लिखकर दिया उसमें दैहिक प्रेम का कुछ रंगरस था, पर अश्लीलता नहीं थी। लेकिन निर्माता ने उसके गीत में काटछाँट करके फिल्म

में जो गीत दर्शकों को दिया वह अश्लीलता की पराकाष्ठा था। वह गीत बेहद सफल हुआ और कैसेट पर उसके नाम के साथ उसकी बिक्री होने के बाद फिर देवनाथ को अश्लील गीत लिखने में कोई संकोच नहीं हुआ।

उसके सिनेमा के दिनों की एक यादगार घटना यह थी कि उसने जिस फिल्म के लिए गीत लिखे थे, उसकी शूटिंग के समय पहली बार कोलकाता जाना था। काफी दिनों से उसकी इच्छा थी कि कोलकाता जाकर वहाँ के कुछ कवि-लेखकों से मिले और गुरुदेव का घर देखे। किंतु निर्माता ने उसे अपने साथ ले जाने का नाम तक नहीं लिया। अंत में वह अपने एक टीटी मित्र के साथ बिना टिकट कोलकाता पहुँच गया और अपने एक अन्य मित्र के साथ एक सस्ते से होटल में टिक गया। अगले दिन टॉलीगंज पहुँचकर देखा कि उस फिल्म यूनिट के सभी लोग अपने-अपने काम में व्यस्त हैं, उसकी ओर देखने तक की फुरसत नहीं थी किसी को। उसने अपने मित्र के साथ स्टूडियो से बाहर आकर एक युवक से सड़क वगैरह के बारे में पूछा। उस युवक को जोड़ासांको क्या है या कहाँ है, इस बात की जानकारी शायद नहीं थी, पर उसने बताया कि उसका नाम सोमेन है और वह एक लिटिल मैगजीन चलाता है। उसने कहा कि वह उन लोगों को कोलकाता घुमा देगा। उसके नाम, चेहरा, पोशाक और सुबह-सुबह कुछ पिए होने इत्यादि से वह युवक कवि होगा, इसमें कोई संदेह नहीं रह गया था। उन दोनों ने पूरे दिन उसके साथ रहना तय किया। दो बार बस बदलकर सोमेन उन्हें जहाँ ले गया था, वह खलासी टोला था।

कूड़ा करकट और गंदगी के बावजूद रेडियो स्टेशन के पास वाली शराब की दुकान की तुलना में यह शराब का ठेका साफ और समृद्ध था और शराब भी बुरी नहीं थी।

दो गिलास पी लेने के बाद देवनाथ ठाकुर घर न देख पाने का दुख भूल गया और चारों ओर बैठे ग्राहकों को देखने लगा। अधिकतर मजदूर तबके के लोग थे, किंतु कुछ दूरी पर एक टेबुल में चार साफ-सुथरे युवक बैठे थे। क्या ये ही लोग रात को बारह बजे के बाद कोलकाता पर राज करते हैं? सोमेन को पूछने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि इस वक्त वह नशे की हालत में तुरीय अवस्था में था।

शाम को सोमेन उन दोनों को जबरन काली मंदिर ले गया। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि उस घुमक्कड़ युवक का डेरा वहीं मंदिर के सामने पेड़ के नीचे चबूतरे पर है, क्योंकि वहाँ सभी उसे जानते थे और वहाँ पहुँचने के बाद सोमेन

उनकी पकड़ में नहीं आ रहा था। उस वक्त मंदिर बंद था, इसलिए अब सोमेन के भरोसे न रहकर उन दोनों ने राह पकड़ी उसके बताए हाड़कटा गली के पते की ओर। यह देवनाथ के लिए वेश्यालय का पहला परिचय था और पहले से उसने जैसा सोच रखा था वैसा अप्रीतिकर नहीं था। दोनों देर रात होटल लौटे और अगले दिन घर लौटने के लिए ट्रेन पकड़ी।

देवनाथ को जो आशंका थी कि वह बीमार हो जाएगा, घर लौटने के कुछ दिनों के भीतर वह भय मिट गया। बल्कि उसने मन ही मन सोचा कि कैसे फिर से कोलकाता जाएगा, सिनेमावाले जाएं या न जाएँ। इस बार वह जरूर जोड़ासांको जाएंगा। हाड़कटा लेन की उस लड़की का नाम वह इतने दिनों में भूल गया था। आज यकायक याद आया, तिलोत्तमा। रेडियो स्टेशनवाली लड़की का नाम था कुसुम। उसकी पत्नी का नाम था बासंती। उसकी प्रेयसी का नाम कविता।

उसके जीवन में ये जो फेरबदल हो रहे थे, अति मृदु और मंथर थे, किंतु थे निश्चित और अनिवार्य। उसका ऑफिस आना-जाना अति अनियमित हो गया। घर लौटने का अब कोई निश्चित समय नहीं था। खाने-पीने का भी कोई ठीक ठिकाना नहीं था। घर-खर्च के लिए जितने रुपए देता था, अब वह अव्यवस्थित हो गया और उससे घर में अशांति बढ़ गई। अंत में एक दिन बासंती अपने चौदह साल के बेटे और अपनी चीजें लेकर मायके चली गई। इस अविरत मदहोशी के मोह में पड़कर जिंदगी का इस तरह बर्बाद होते चले जाना देवनाथ समझ नहीं पाया।

उसके बाद तेजी से काफी कुछ घटित हो गया। दफ्तर से उससे कैफियत मांगी गई, जिसका जवाब उसने नहीं दिया। कुछ महीनों बाद उसे नौकरी से सस्पेंड कर दिया गया। यह उसे एक वरदान जैसा लगा, क्योंकि इसके बाद उसे फिर ऑफिस से बुलावा नहीं आया, लेकिन घर या दारू की भट्ठी में बैठकर उसे आधी तनख्वाह मिलती थी। कविता उसे काफी दिन पहले छोड़कर चली गई थी, उसे लगा कि गीत भी अब उसे छोड़ने वाले हैं। गीत की चार लाइनें लिखने में अब उसे काफी कुशती-कसरत करनी पड़ती थी, और अंत में वह जो कुछ लिखता था, वह अक्सर ग्राहकों के मन को नहीं छूता था। वह दिनोंदिन उजड्ड और गुस्सैल स्वभाव का हो गया और लोगों से बेवजह झगड़ा-झाँसा करने लगा।

इसी तरह एक दिन उसका झगड़ा हो गया रेडियो स्टेशन के बिल बनाने वाले क्लर्क से। गीत लिखने के लिए जो मानदेय मिलता था, उसे पाने के लिए न सिर्फ अधिक दिन लगते थे, बल्कि कई बाबुओं की खुशामद भी करनी पड़ती थी। पहले

देर होने से वह परेशान नहीं होता था, किंतु आजकल फॉर्म भरकर जमा कराने के बाद वह पैसों के लिए तगादा करने लग जाता था। उस दिन क्लर्क अड़ गया कि रसीदी टिकट लाकर उस पर दस्तखत न करने पर उसे भुगतान नहीं करेगा। पहले ऐसा होता था कि वे सभी मिलकर क्लर्क के पास कुछ रसीदी टिकट जमा करवा देते थे, ताकि हर बार टिकट के लिए परेशानी न हो। लेकिन उस दिन क्लर्क ने उससे टिकट मांग लिया, देवनाथ ने पहले जमा किए गए टिकटों का हिसाब उससे मांगा और शोर-शराबा बढ़ने लगा। जब बातचीत हाथापाई तक पहुँच गई, कुसुम ने एक टिकट लाकर क्लर्क के टेबुल पर रख दिया। कृतज्ञ होने के बदले देवनाथ उलटे कुसुम पर गर्म होने लगा। बहरहाल वह झगड़ा उतने में खत्म हो गया और क्लर्क ने उसका भुगतान कर दिया।

उस घटना के कुछ दिन बाद देवनाथ कुसुम को ढूँढ़ते हुए उसकी सीट पर गया। अपने उस दिन के व्यवहार के लिए क्षमा मांगते हुए उसकी मदद करने हेतु उसे धन्यवाद दिया। जब उसने कुसुम को चाय पीने के लिए बुलाया, जानता था कि वह मना कर देगी। लेकिन कुसुम ने तुरंत हामी भर दी और उसके साथ चाय की दुकान पर चली आई। बेंच पर उसके पास बैठकर उसने चाय पी। देवनाथ समझ गया कि वह लड़की उसकी कविता या गीत पसंद करती है, इसीलिए उसकी मदद करने के लिए आगे आई थी उस दिन। वह अपने साथ कविता की जो किताब लाया था, वह कुसुम को देकर पूछा, क्या तुमने मेरी कुछ कविताएँ पढ़ी हैं? कुसुम ने सिर हिलाकर मना किया। तो फिर मेरे गीत? इस सवाल का उत्तर भी था 'नहीं'। कुसुम ने उस किताब के पन्ने उलटते हुए कुछ पढ़ा, फिर किताब को बंद करके रखते हुए बोली, इन्हें पढ़ने से मुझे रोना आता है।

ऐसी प्रतिक्रिया किसी ने नहीं दी थी उसकी कविताएँ पढ़कर, क्योंकि रुलाई आने जैसी कोई बात नहीं थी उसकी कविताओं में। कुछ भी हो, देवनाथ को अच्छा लगा उस लड़की से बातें करके। प्रौढ़ उम्र में उसकी मुलाकात होनी थी इस कम उम्र की लड़की से, यह एक विडंबना थी। काश! कई साल पहले उससे मुलाकात हुई होती! यह सब सोचता रहा देवनाथ, लेकिन उस लड़की से फिर बातचीत या संपर्क बढ़ाने की चेष्टा नहीं की उसने। परंतु सोच लिया था कि उस लड़की पर एक कविता लिखेगा, पत्रिका में छपवाने के लिए नहीं, गाने के लिए नहीं, सिर्फ उसके पढ़ने के लिए।

ऐसा नहीं हो पाया। आखिर उसे इस्पात पर कविता लिखनी पड़ी। उन दिनों इस्पात कारखाना लगाने की मांग को लेकर माहौल गर्म था। केंद्र में दूसरी

पार्टी की सरकार थी और उसके विरुद्ध नारेबाजी एवं जुलूस निकाले जाते रहे कुछ दिनों तक। उसके कुछ मित्र बड़े उत्साह से इस आंदोलन में शामिल हो गए और उस पर दबाव डाला एक ओजस्वी कविता या गीत लिखने के लिए। तमाम कोशिशों के बावजूद जब उसकी कलम से एक पंक्ति तक नहीं निकली, मित्रों ने उसे ले जाकर किसी अकेले रह रहे मित्र के घर में बंद कर दिया, कहा, कविता नहीं दोगे तो शराब बंद। ऐसी परिस्थिति में जनमी थी उसकी सबसे जानी-पहचानी कविता।

धीरे-धीरे जब राज्य में इस्पात कारखानों का काम शुरू हो गया, देवनाथ ने सोचा कि अब उसकी इस्पात कविता का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। किंतु इतनी नाटकीयता में बनी चीज की क्या इतनी आसानी से मौत हो जाती है? हालाँकि उसने उससे भी अच्छी कविताएँ लिखी थीं, लोग उसे इस वक्त जानते थे इस स्लोगन मुखर कुछ पंक्तियों के लिए। यदि कविता-संग्रह प्रकाशित होता तो उसमें यह इस्पात कविता अवश्य शामिल होती। गनीमत थी कि किसी ने अब तक उसे इस्पाती कवि की पदवी नहीं दी थी। एक दिन दफ्तर के बड़े बाबू ने उसे बुलवाकर कहा, तुम्हारी नौकरी को लेकर जो जाँच चल रही थी, अब पूरी होने वाली है। तुमने तो उन्हें अपना जवाब लिखकर नहीं दिया, अब तुम्हारी नौकरी चली जाएगी। तुम्हारी जितने साल की नौकरी है, उसके लिए पेंशन मिलेगी। नौकरी से क्यों निकाले जाओगे, बल्कि मेरी राय है कि इस्तीफा देकर पेंशन ले लो। इसी बड़े बाबू के साथ देवनाथ ने काफी दिनों तक काम किया था और मन लगाकर काम किया था। वे उसे काफी चाहते थे और कई बार उसकी मदद भी की थी। लेकिन अपनी नई जिंदगी जीने के बाद उसने उनसे संपर्क काट लिया था। आज उनसे यह उपदेश सुनकर उसका मन कृतज्ञता से भर गया। उसने और कुछ सोचे-समझे बिना उनसे एक सादा कागज मांगकर उनके कहे अनुसार दरख्वास्त लिख दी और पत्नी के घर छोड़कर चले जाने के बाद पारिवारिक बंधन से मुक्त हो जाने की तरह नौकरी की बेड़ियों से मुक्त हो गया।

तब कोई-कोई उसका साक्षात्कार लेते समय उससे सवाल करता था, क्या आपने कविता लिखने के लिए नौकरी छोड़ दी? यह एक औपचारिक प्रश्न था, क्योंकि सभी जानते थे कि वह काम-धाम नहीं करता था तभी नौकरी से निकाल दिया गया है। जिस तरह सभी जानते थे कि कवि के रूप में वह मर चुका है। उसके साक्षात्कार का कोई साहित्यिक मूल्य नहीं था, था शायद कोई मनोरंजक विवरण

प्रसारित करने का आग्रह। जिस तरह गाँव में जीप लेकर पहुँच गए थे टीवी चैनल के दल-बल। हालाँकि इसमें एक अच्छी बात यह थी कि वे लोग साहित्य के एक युवा प्राध्यापक को उसका इंटरव्यू लेने के लिए साथ लाए थे। गाँव में भीड़ इकट्ठी हो गई थी उन लोगों के गाड़ी से उतरते ही। संभवतः देवनाथ का सम्मान भी कुछ बढ़ गया था गाँववालों की नजरों में। कार्यक्रम के प्रस्तुतकर्ता, कैमरामैन, साउंड डिजाइनर सबने मिलकर उसके घर पर अधिकार जमा लिया। जब देवनाथ ने कैमरे का सामना करने से पहले कुछ अच्छे कपड़े पहनना चाहा, उन लोगों ने मना कर दिया; कहा, वे लोग फिल्म बनाएँगे यथार्थ और सत्यनिष्ठ, जो कुछ जैसा है।

देवनाथ में कोई आग्रह नहीं था उस फिल्म के लिए। परंतु कुछ दिन पहले चैनल के लोग आकर उसे भारत में बनी तीन बोतल शराब देकर मना गए थे। युवा प्राध्यापक ने उससे तरह-तरह के साहित्यिक सवाल पूछे थे, जैसे : वह किस सौंदर्यतत्व में विश्वास करता है; एक कविता में उसने प्रेम के जो तीन शपथ लिखे थे, वे क्या हैं; किसी निर्दिष्ट कविता से यदि उसकी अंतिम पंक्ति हटा दी जाए, तो क्या वह और सुंदर नहीं हो जाएगी; इत्यादि इत्यादि। देवनाथ के पास इन सवालों का कोई उत्तर नहीं था, पर उन लोगों ने उसके इधर-उधर के सकपकाए हुए से जवाब की लंबी फिल्म बना ली। जब वे लोग उसे साथ लेकर शराब की दुकान में गए, देवनाथ समझ गया कि उनका असली लक्ष्य था वहाँ उसकी अनौपचारिक तसवीर खींचना। निर्माता ने उससे कहा कि वह बेंच पर बैठकर पीता रहे और प्राध्यापक के साथ सामान्य तौर पर बातें करता रहे; भूल जाए कि कैमरा का रुख उसकी ओर है।

डेढ़ गिलास पीने के बाद देवनाथ वाकई भूल गया कि वह एक अनुप्रवेशकारी कैमरा के निशाने पर है। वह प्राध्यापक शांत स्वभाव का और साहित्यिक रुचि संपन्न था। उसने देवनाथ की सारी कविताएँ पढ़ रखी थी। वह चाहता था कि देवनाथ पुनः लौट जाए अपने सक्रिय सृजनशील समय में, वह और भी कविताएँ लिखे। देवनाथ की कुछ पुरानी कविताओं की मन से आवृत्ति करके उसने उनमें कई गंभीर अर्थ निकाले और कहा कि उसने इस वृत्तचित्र का नाम 'दीर्घजीवी बनो कवि' रखने को कहा है। इसमें वह यह कामना करेगा कि देवनाथ और भी लंबी उम्र पाकर माँ सरस्वती की साधना करें।

उस कार्यक्रम के प्रति देवनाथ का तिलभर भी आग्रह नहीं था और वह प्राध्यापक से बातचीत बंद करके चुपचाप पीने लगा। निर्माता ने आकर कहा,

अब वे देवनाथ का बेंच से नीचे गिर जाने वाला एक दृश्य खींचेंगे। यह सुनकर देवनाथ ने खीझते हुए कहा कि अब वह उनकी कोई मदद नहीं करेगा। निर्माता ने उसे करारनामे की याद दिलाई, देवनाथ ने और भी ऊँची आवाज में अपना जवाब दिया, आसपास और भी काफी लोग इकट्ठे हो गए। निर्माता ने उसे चिढ़ाने के लिए और भी कई बातें कही। इन सबके बीच कैमरा चल रहा था और देवनाथ समझ गया कि उसकी ऊँची आवाज में बात करने वाली तसवीर खींचना ही उनका उद्देश्य था। इसलिए वह फिर से चुपचाप बेंच पर बैठ गया। टेलीविजन वाले अपना सामान इकट्ठा करके जाने को तैयार हो गए। निर्माता ने मुस्कराते हुए आकर देवनाथ को धन्यवाद दिया और जाने की इजाजत मांगी। प्राध्यापक ने पुनः उससे कविता लिखने का अनुरोध किया और चलते समय नाटकीय मुद्रा में बोला : कविता दीर्घजीवी रहे!

सभी उससे उसकी कविता की चर्चा करते, मानो उसका पूरा वजूद उसके लेखन से ही था; कविता से परे वह कुछ भी नहीं। उसके परिचितों में सिर्फ कुसुम ही ऐसी थी जिसे उसकी कविताओं के प्रति कोई आग्रह नहीं था। संभवतः साहित्य को लेकर वह पूरी तरह उदासीन थी। बसंती के चल बसने के बाद एक दिन सुबह कुसुम खुद ही उसके घर आई थी। उस वक्त घर पर देवनाथ का रसोइया भी था। देवनाथ से कुछ पूछे बिना पूरा कमरा और बिखरे पड़े सामान वगैरह देखने के बाद उसने देवनाथ से कहा, यह क्या हाल बना रखा है आपने कमरे का? जरा उधर खिसककर बैठिए, मैं इधर की चीजें ठीक से रख देती हूँ। उतना करने के बाद कुसुम ने रसोई में जाकर रसोइये को खाना बनाने में मदद की। देवनाथ तय नहीं कर पाया कि कुसुम को धन्यवाद दे अथवा बिन बुलाए आकर उसकी चीजों को सजाने-सँवारने के लिए खीझ प्रकट करे। अंत में वह चुपचाप बिस्तर पर लेटकर किताब पढ़ने लगा, कुसुम ने घर की चीजें करीने से लगाकर रसोइये को आगाह करके विदा लेकर चले जाने तक। कुसुम इसी तरह बीच-बीच में आती थी, भले ही देवनाथ उससे बहुत बातचीत नहीं करता था और अपनी ओर से उसके प्रति कोई आग्रह नहीं दिखाता था। जिस दिन देवनाथ की तबीयत खराब थी, कुसुम दफ्तर से पूरे दिन की छुट्टी लेकर उसके घर पर रुक गई और उसकी देखभाल करने लगी। सब अतिशयता देवनाथ ने स्वीकार कर ली, किंतु शाम को जब कुसुम ने कहा कि वह रात को रुक जाएगी, देवनाथ ने उसे तुरंत मना कर दिया। लेकिन जाने से पहले कुसुम ने सारी व्यवस्था जमा दी और रसोइये को रात में देवनाथ के पास रुकने को कह गई।

पिछली बातें सोचने पर देवनाथ को लगा कि वह ज़िंदगी भी कोई बुरी नहीं थी। आजकल अब ऑफिस नहीं जाना होता था। गाँव से दाल-चावल आ जाता था। अकेले आदमी का घर चलाने का कोई अधिक झंझट भी नहीं था। माह-दर-माह पेंशन का पैसा मिलता था, उससे उसके पीने समेत मोटा मोटी खर्च चल जाता था। बीच-बीच में वह एकाध गीत भी लिख देता था, भले ही उसकी पसंद का हो या न हो। आज गीत की मांग आते ही वह अपनी पसंद ना पसंद नहीं देखता था। यह नहीं देखता था कि उसमें शालीनता होगी या नहीं और गीत का इस्तेमाल कहाँ किया जाएगा। इसके अलावा उसे सिनेमा के संवाद लिखने का काम भी मिल जाता था कभी-कभी। देवनाथ जानता था कि उसके कविता न लिख पाने के बावजूद उसकी कलम में कम से कम ऐसा कुछ है जिसके लिए लोग उसे ढूँढ़ते रहते हैं और बीच-बीच में काम भी मिल जाता है।

ऐसे सरल जीवनयापन में पहला विघ्न तब उपजा जब किराये के मकान के मालिक ने उसे घर खाली करने को कहा। नौकरी की शुरुआत से देवनाथ उस मकान में रहता था और समय बढ़ने के बावजूद किराया काफी कम था। इस समय चारों ओर किराया बढ़ गया था। देवनाथ के लिए संभव नहीं था कि बढ़े हुए किराये में कहीं और मकान ले सके। इसके अलावा बेरोजगार, समय का कोई ठीक-ठिकाना न होने वाले शराबी को मकान मिलने की संभावना कम थी। शुरू-शुरू में उसने मकान मालिक की बात टाल दी, वह दूसरी जगह मकान ढूँढ़ रहा है; मिलते ही वह उसका मकान खाली कर देगा। हालाँकि उसने दूसरा मकान ढूँढ़ने की कोई चेष्टा नहीं की और उधर मकान मालिक का तगादा बढ़ता चला गया। इस तरह की परेशानी में होने के दौरान सौभाग्य से गाँव में रहने वाले देवनाथ के बूढ़े पिता अचानक चल बसे।

देवनाथ था माँ-बाप का बड़ा बेटा। उसके भाई-बहन उसका काफी सम्मान करते थे और जब कवि व गीतकार के रूप में वह प्रसिद्ध हुआ, उससे संबंध और भी प्रगाढ़ हो गए थे। लेकिन आगे चलकर जब देवनाथ बुरी हालत में था, तब उन लोगों ने धीरे-धीरे उससे दूरी बना ली थी और आजकल उनका रिश्ता बीच-बीच में एकाध पत्र व विवाह जैसे अनुष्ठान में निमंत्रण-पत्र तक सीमित हो गया था। अपनी हालत देखकर देवनाथ उनके घर विवाह आदि उत्सव में नहीं जाता था, और वे लोग भी इससे प्रसन्न थे।

पिताजी के मरने के बाद अलग-अलग जगहों से आकर सभी भाई गाँव में इकट्ठा हुए और यह प्रस्ताव रखा कि देवनाथ गाँव लौट आए और खेती-बाड़ी संभाले।

कुसुम थी देवनाथ की एक और समस्या। भले ही कुसुम ने अपनी ओर से उससे कभी भी प्यार भरी बात नहीं की थी, फिर भी न जाने कैसे उसने देवनाथ को अपने वश में कर लिया था। कुसुम का स्वभाव अच्छा था, वह देवनाथ का ध्यान रखती थी। देवनाथ के दोस्त उसे मजाक में नहीं बल्कि गंभीरता से कहते थे कि कुसुम से शादी कर ले। हँसी में उड़ा देता था वह उनकी बातें। इस उम्र में और अपनी ऐसी हालत में भला वह शादी करेगा! कुसुम ने कभी उसे इस बारे में नहीं कहा, यहाँ तक कि कोई संकेत भी नहीं दिया था। सिर्फ उसे सम्मान देना, उसका ध्यान रखना ही कुसुम का धर्म था, बिना किसी प्रतिदान की अभिलाषा के। देवनाथ को अच्छी लगती थी वह लड़की, किंतु वह कभी भी कुछ अधिक नहीं सोचा था उसके बारे में। एक दिन जब कुसुम शादी करके शहर छोड़कर चली गई, देवनाथ कुछ उदास रहने लगा। मन ही मन कहा, अच्छा हुआ; सुखी रहे कुसुम।

गाँव लौट जाने का फैसला लेने के बाद खुद को और ज्यादा हल्का महसूस करने लगा देवनाथ। स्कूल के समय से लेकर अब तक उसका पूरा जीवन शहर में ही बीता था। पर उसके जीवन का कितना हिस्सा जुड़ पाया था इस शहर से? वह शहर के एक निर्दिष्ट इलाके में निर्दिष्ट दोस्तों के साथ एक सीमित परिधि में जीवन बिताता था। अब गाँव के खुले परिवेश में चला जाएगा वह। गाँव की बात सोचने पर उसके मन में उभर आती थी एक सरल, हरी-भरी, सुंदर, निष्कपट जीवनयापन की तसवीर। कविता का गाँव। छोटा-सा मेरा गाँव और रूपसी बांग्ला। किंतु वहाँ पहुँचकर उसने देखा, अब वह गाँव उसकी कल्पना जैसा नहीं रह गया था। गर्मियों का गाँव अत्यंत रुक्ष और श्रीहीन दिखता था, बारिश के बाद हो जाता था पिचपिचा और गंदगी पूर्ण। इसके साथ ही गाँव के लोगों की बातचीत का मूल विषय होता था रुपया पैसा और जमीन जायदाद। वह कितने रुपए कमाता है, जमीन से कितनी फसल आती है और उसके मरने के बाद वह मकान किसके हिस्से में जाएगा इत्यादि के बारे में उसे विस्तृत विवरण देना पड़ता था सभी को। इसलिए उसने आहिस्ता-आहिस्ता गाँव के लोगों से दूरी बना ली। उसकी दुनिया और भी सिमट गई हरी मास्टर के परिवार और शराब

के ठेके के बीच। बाहर से संपर्क था—बैंक जाकर पेंशन के रुपए लाना और कभी-कभार डाक से मिलने वाले एकाध पत्र।

गाँव के लोग बीच-बीच में आकर यह पूछ-पूछकर परेशान किया करते थे कि टीवी वालों ने जो फोटों खींचे थे, वह सिनेमा कब दिखाया जाएगा। देवनाथ के पास इस बात का कोई जवाब नहीं था। इसी बीच उसे उस प्राध्यापक से पत्र मिला : प्रिय कवि, दुख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि आप पर बन रहे जिस वृत्तचित्र से मैं जुड़ा था, उसकी अकाल मृत्यु हो गई कहना गलत नहीं होगा। इस समय उन लोगों ने जो फिल्म बनाई है, उसमें मैंने आपका जो इंटरव्यू लिया था वह हटा दिया गया है। और भी क्षोभ का विषय यह है कि उस वृत्तचित्र को वे लोग साहित्यिक पत्रिका विभाग के अंतर्गत न दिखाकर सामाजिक व्याधि विभाग में दिखाने जा रहे हैं। इसलिए मैंने फिल्म निर्माता से असहमति प्रकट करने का निश्चय किया है। मैं सोचता हूँ, आपके लिए भी यह उचित होगा कि आप उन लोगों से कोई संपर्क न रखें। परंतु आप लिखना जारी रखें। माँ सरस्वती की कृपा आप पर बनी रहे। कविता दीर्घजीवी रहे।

देवनाथ ने अनमने रूप से पढ़ी उस चिट्ठी को, जिस तरह उसने काफी दिनों पहले पढ़ी थी कुसुम की चिट्ठी। अब कोई लाभ नहीं, जीवन के किसी संपर्क या कार्यकलाप को आगे बढ़ाने से। बाकी की जितनी जिंदगी बची है, उस लंबी लग रही जिंदगी को किस तरह बिना शारीरिक-मानसिक-आर्थिक समस्या और पीड़ा के बिताना है, उस बारे में सोचना है। मकान, हरी मास्टर, शराब की दुकान की छोटी-सी दुनिया में अच्छी तरह बिताया जा सकता है बाकी का समय। यह ज़िंदगी समाज से परे है; पर उसकी कवि की जिंदगी भी तो थी समाज से परे ही।

आसमान में अब धूप नहीं थी। जाड़े के दिनों की शाम शीघ्र उतर रही है घास पर। आज वह दोपहर का खाना भूल गया। हरि मास्टर के घर पर कुछ देर इंतजार करके वे समझ गए होंगे कि अब वह नहीं आएगा। बहुत भले लोग हैं वे लोग। गाँव के लोग, यहाँ तक कि उसके भाई भी उसे हरि मास्टर के विरुद्ध भड़काने की चेष्टा करते रहते हैं। कहते हैं, मास्टर की नजर उसके घर-द्वार पर है। देवनाथ सब सुनता; चुप रहता। वह क्यों किसी को समझाने की चेष्टा करे कि उसे कितना स्नेह मिलता है उन लोगों से, जिसके लिए वह पूरी जिंदगी उनका ऋणी रहेगा। लोगों को जो सोचना हो सोचें; जिसे जो कुछ कहना हो कहे। उसे कोई आपत्ति नहीं है किसी विषय पर, किसी के विरुद्ध। उसने एक कवि का एकाकी जीवन चाहा था, मिल गया। जानबूझकर बाकी की सारी चीजें छोड़ दी उसने।

कुसुम ने लिखा था : आज तुम्हारी बेहद याद आने पर तुम्हें अपने जीवन का यह पहला पत्र लिख रही हूँ। बेटा बड़ा होने लगा है और मेरी गृहस्थी अच्छी चल रही है। किंतु कई बार तुम्हारी याद आती है। पर जानते हो, यदि तुम कभी मुझसे कहोगे कि मेरे पास चली आओ, मैं उसी पल सब कुछ छोड़-छाड़कर तुम्हारे पास लौट आऊँगी।

देवनाथ जाने को उठा। शराब की दुकान के घेरे के बाहर पहचाना-सा रिक्शा दिखाई दे रहा है। अब वह घर लौट जाएगा। अब न तो उसके पास गीत है न कविता, न शब्द है न सुर। न जाने कितने पीछे छूट गए सब। पर अपने लिए वह जिस कविता की अलग दुनिया बना रहा था किसी वक्त वह उसके पास रह गई है। और उसे मालूम है कि उसी सीमित दायरे में वह स्वच्छंद हो बिता लेगा अपनी ज़िंदगी के बाकी बचे दिन।

मुद्रकः चंदू प्रेस, नई दिल्ली–110092

ओड़िआ कहानी को भावुकता से मुक्त करके संयत, वस्तुनिष्ठ और आधुनिक बनाने के क्षेत्र में जगन्नाथ प्रसाद दास (1936) की भूमिका उल्लेखनीय है। आवेगमुक्त निर्मोही दृष्टि और मननधर्मी विश्लेषण करते हुए उन्होंने आधुनिक जीवन को अपने छंद में रूपायित किया है। एक दुर्बोध जगत में पीड़ित अस्तित्व के अर्थ की तलाश उनकी कहानियों का अंतःस्वर है। जगन्नाथ प्रसाद एक सिरे से कवि, कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार, शोधकर्ता और चित्रकार हैं। कला-इतिहास में पीएच.डी. डिग्री प्राप्त डॉ. दास की पारंपरिक ओड़िशी चित्र-कला में शोध के क्षेत्र में एक विशेष पहचान है। भारतीय प्रशासनिक सेवा से स्वैच्छिक अवकाश लेकर कला और साहित्य में खुद को समर्पित करने वाले डॉ. दास अखिल भारतीय स्तर पर एक जाना-माना नाम है। उनकी अनेक रचनाएँ अंग्रेजी, हिंदी और विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हैं। अपनी साहित्यिक कृतियों के लिए वे सरस्वती सम्मान, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, सरला पुरस्कार आदि अनेक महत्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

इस संग्रह की कहानियों के चयनकर्त्ता और संपादक गुरुचरण बेहेरा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में समकालीन साहित्य के प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं। ब्रिटिश नाटककार हैरोल्ड पिंटर पर शोध करके पीएच.डी. प्राप्त करने वाले डॉ. बेहेरा के अनेक शोधपरक लेख देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। 'अनेक आधुनिकता' उनकी एक उल्लेखनीय आलोचना पुस्तक है। ओड़िआ से अंग्रेजी और अंग्रेजी से ओड़िआ में अनुवाद के लिए प्रख्यात हैं।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र (1955) ओड़िआ भाषा से हिंदी में अनुवाद करने में विशेष रुचि। अब तक ओड़िआ से हिंदी में अनूदित नब्बे पुस्तकें प्रकाशित। हिंदी अनुवाद के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार (1998), विश्व हिंदी सम्मान (2012 : जोहांसबर्ग) सहित बीस से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित। विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस में महासचिव, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी अनुवाद), एनटीपीसी लिमिटेड में महाप्रबंधक (राजभाषा) एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में कुलसचिव रह चुके हैं।



राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA


₹ 335.00
ISBN 935491109-9
9789354911095
21221997